श्री अभय जैन ग्रन्थमाला ग्रन्थाङ्क—२२

रत्न परीक्षा

सम्पादक
अगरचन्द नाहटा
भँवरलाल नाहटा

प्रकाशक
नाहटा ब्रदर्स
४, जगमोहन मल्लिक लेन,
कलकत्ता-७

प्रथमावृत्ति]   मूल्य :

मुद्रक :
सुराना प्रिन्टिग वर्क्स,
४०२, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता-७

दो शब्द

रत्नगर्भा भारतभूमि रत्नों के लिए विश्वविख्यात है। अगणित रत्नों की जन्मदात्री भारतभूमि में अभी तक रत्नों के शोध पूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थों का अभाव सा ही रहा है।

मैंने "रत्नप्रकाश" नामक पुस्तक लिखकर रत्नों की उपयोगिता प्रामाणिकता तथा अन्य आवश्यक विषयों पर प्रकाश डालने का यथाशक्य प्रयास किया है। हमारे प्राचीन साहित्य के एतद्विषयक ग्रन्थों की शोध होकर प्रकाश में लाना नितान्त आवश्यक था। श्री अगरचन्दजी, भंवरलालजी नाहटा की शोध से फेरू ग्रन्थावली की ६०० वर्ष प्राचीन पाण्डुलिपि प्रकाश में आई और उसका पुरातत्वाचार्य पद्मश्री मुनि जिनविजयजी द्वारा मूल रूप में प्रकाशन हो गया है।

इस सन्दर्भ में ठक्कुर फेरू की रत्नपरीक्षा के हिन्दी अनुवाद के साथ-साथ अन्य दो ग्रन्थ व विद्वानों के इस विषय के विविध ज्ञानवर्द्धक लेख जौहरी भाइयों के लिए अत्यन्त उपयोगी व मार्गदर्शक सिद्ध होंगे। आशा है जौहरी लोग व अन्य इस विषय के जिज्ञासुवर्ग इन ग्रन्थों को अपनाएंगे और लाभान्वित होकर इसे प्रकाश में लाना सार्थक करेंगे।

—राजरूप टांक

अनुक्रमणिका

—❀❀—

भूमिका

रत्न परीक्षा सम्बन्धी भारतीय साहित्य

रत्न बहुत मूल्यवान वस्तु को कहा जाता है। साधारणतया उच्च कोटि के खनिज-पाषाणादि, जो बहुत अल्प परिमाण में मिलता हो, सार गुण युक्त, सुन्दर और तेजस्वी हो उसको 'रत्न' सज्ञा दी जाती है। यद्यपि कई ग्रन्थो में रत्नो के प्रकार (सख्या) ८४ बतलाये गये हैं पर उनमें से ९ ग्रहों के ९ रत्न प्रधान हैं, अवशिष्ट उपरत्न हैं। इन ९ रत्नों की प्रधानता एव ९ की संख्या के महत्त्व के कारण ही सम्राट विक्रम की सभा के नवरत्न, अकबरी दरबार के नवरत्न आदि प्रधान पुरुषों की सख्या एव सज्ञा पायी जाती है। किसी विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति एवं पदार्थ की उपमा भी 'रत्न' के रूप में दी जाती है क्योंकि रत्न शोभा बढाने वाला और तेजस्वी होता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में विभिन्न प्रकार के रत्नों के नाम वेदादि बहुसख्यक ग्रन्थों में उल्लिखित मिलते हैं। प्राचीन जैन आगमों में अनेक मणि रत्नो के नाम प्रसंग प्रसग पर दिये गये हैं, जिसमें से कुछ के उल्लेख यहाँ दिये जाते हैं।

१—पन्नवणा सूत्र में—

गोमेज्जए य रुयए अंके फलिहेय लोहियक्खेय।
मरगय मसारगल्ले भुयमोयग इंदनीलेय ॥३॥
चंदण गेरूय हंसगब्भ पुलए सोगंधिए य बोद्धव्वे।
चंदप्पभ वेरुलिये जलकंते सूरकंते य ॥४॥

२—तीर्थंकरों की माताएं १४ महास्वप्न देखती हैं, उनमें १३ वां स्वप्न रत्न राशि है। उस राशि के कुछ रत्नों के नाम ये हैं—

पुलग वरिंदनील सासग कक्केयण लोहियक्ख मरगय मसारगल्ल पवाल फलिह सोगंधिय, हसगब्भ अंजण चदप्पह वररयणेहिं।

(कल्पसूत्र)

अर्थात्—पुलक, वज्रहीरा, नीलम, ससाक, कर्केतन, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, प्रवाल स्फटिक, सौगन्धिक, हंसगर्भ, चन्द्रकान्तादि श्रेष्ठ रत्न।

अतः आगमों मे भी रत्नों के नाम दिये हैं। पन्नवणामे वैडूर्य मणि मौक्तिकादि २४ प्रकार के रत्नों का भी उल्लेख[1] मिलता है। यों चक्रवर्ती के १४ रत्न माने गये हैं पर वहाँ रत्न का अर्थ है—स्वजातीय में सर्वोत्तम वस्तु (स्वजातीय मध्येसमुत्कर्षयति वस्तुनि)।

रत्नों के सम्बन्ध मे भारतीय साहित्य बहुत ही विशाल है। स्वतन्त्र ग्रन्थों के अतिरिक्त अर्थशास्त्र, राजनीति, ज्योतिष, वैद्यकादि अनेकों ग्रन्थों में रत्नों का विवरण मिलता है जिनकी संक्षिप्त जानकारी यहाँ देनी अभीष्ट है। पुराणों आदि में तो रत्न परीक्षा विषयक पर्याप्त विवरण पाया जाता है। अग्नि पुराण (२४६) गरुड़ पुराण (१,६८-८०)

१—रयणाणि चउव्वीस सुवण्ण तउ तव रयय लोहाइ।
सीसग हिरण्ण पासाण वइरमणि मोतिय पवालं ॥२५४॥
संखो तिणि साऽगुरुचदणाणिवत्थामिलाणि कट्टाणि।
तह चम्मदन्तवाला गंधा दव्वोसहाइंच ॥२५५॥

देवी भागवत (८, ११-१२) और महाभारत (१०) विष्णु धर्मोत्तर धृत भाव प्र० तन्त्रसार में रत्न विषयक चर्चा है।

रत्न परीक्षा सम्बन्धी स्वतन्त्र ग्रन्थों में अगस्त्य ऋषि का अगस्तिमत व अगस्तीय 'रत्न परीक्षा' ग्रन्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध रहा है। इस ग्रन्थ के अनेक अनुवाद गद्य और पद्य में राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में होते रहे हैं। संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थकारों ने भी रत्न परीक्षा सम्बन्धी जो ग्रन्थ लिखे हैं उनमें भी इसी ग्रन्थ को प्रधान आधार माना है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुक्रनीति आदि ग्रन्थों में भी रत्न परीक्षा की चर्चा है। बुद्धभट्ट और सुरमिति रत्न विज्ञान के पारंगत मनीषी थे। ठक्कुर फेरू ने अपनी प्राकृत रत्नपरीक्षा में 'अगस्ति, बुद्धभट और सुरमिति की रचनाओं के आधार से मै यह ग्रन्थ बना रहा हूँ' लिखा है। कल्याणी के चालुक्य राजा सोमेश्वर (११२८-३८ ई०) रचित नवरत्न परीक्षा, रत्नसंग्रह, रत्नसमुच्चय, लघु रत्नपरीक्षा, मणिमहात्म्य प्रकाशित है। चण्डेश्वर की रत्नदीपिका भी अच्छी प्रसिद्ध रही है। रत्न परीक्षा समुच्चय और अप्पय दीक्षित की रत्नपरीक्षा भी इस विषय के अच्छे ग्रन्थ हैं। वराहमिहर की वृहत् संहिता (अध्याय ८० से ८३) आदि ज्योतिष एवं कई वैद्यक आयुर्वेद ग्रन्थों में भी रत्नों का विवरण पाया जाता है।

महाराणा राजसिंह के नाम से [illegible] रचित राज रत्नाकर ग्रन्थ भी इस विषय का उल्लेखनीय ग्रन्थ है। [illegible] पंडित का नवरत्न परीक्षा और मानतुंगसूरि कृत [illegible] अपर नाम '[illegible]' आदि और भी बहुत से [illegible] ग्रन्थ इस सम्बन्ध में रचे गये [illegible]

से कई ग्रन्थो के रचयिताओं के नाम नहीं मिलते। गोंडल के भुवनेश्वरी पीठ से प्रकाशित भुवनेश्वरी कथा के प्रथम अध्याय में रत्नो के प्रकारों का अच्छा वर्णन है।

जयपुर के दिगम्बर जैन तेरापन्थी भडार में एक सर्व-रत्न-परीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थ भी है, जो अपूर्ण मिला है। इसी भण्डार में पंच रत्न परीक्षा नामक एक अपभ्रंश ग्रन्थ की प्रति है। कोटा भण्डारादि में भी दि० विरचित रत्नपरीक्षा की प्रतियाँ हैं पर कई ग्रन्थ ऐसे हैं जिनके नाम उनके रत्नपरीक्षा सम्बन्धी होना सूचित करते हैं पर वास्तव में वे ग्रथ ज्योतिष आदि अन्य विषयों के भी निकल सकते है, अतः जहाँ तक उन ग्रन्थों की प्रतियों को देख न लिया जाय वहाँ तक निश्चित नहीं कहा जा सकता।

रत्नों के फलाफल के साथ ज्योतिष का भी गाढ सम्बन्ध है इसलिये ज्योतिष के भी कई ग्रन्थ रत्नों की पर्याप्त जानकारी देते हैं।

अनूप सस्कृत लायब्रेरी में नाराग्रण पण्डित कृत नवरत्नपरीक्षा, मानतुग रचित मणि स्थान लक्षण, अज्ञात रचित मधुकर परीक्षा, महुरा परीक्षा एव रत्नपरीक्षा राजस्थानी टीका सहित की प्रतियाँ है। मद्रास ओरिएण्टल सीरीज से 'रत्नदीपिका रत्नशास्त्रं च' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।

प्राकृत भाषा में रत्नपरीक्षा का एक मात्र ग्रन्थ ठक्कुर फेरू रचित उपलब्ध हैं जिसकी उन्होंने अपने पुत्र हेमपाल के लिए स० १३७२ में अलाउद्दीन के विजय राज्य में रचना की थी। ठक्कुर फेरू अलाउद्दीन का भण्डारी था। फलतः उसने तत्कालीन मुद्राओं के सम्बन्ध में जो

द्रव्य परीक्षा ग्रन्थ लिखा है, वह तो भारतीय साहित्य में एक अजोड़ और अपूर्व ग्रन्थ हैं। उनका रत्नपरीक्षा भी केवल पुराने ग्रन्थों पर ही आधारित नहीं है पर ग्रन्थकार का अपना अनुभव भी उसमें सम्मिलित है। इसीलिए इस ग्रन्थ का महत्त्व रत्नपरीक्षा सम्बन्धी ग्रन्थों में सबसे अधिक है। दूसरे ग्रन्थकारों ने तो अधिकाश अगस्ति की रत्नपरीक्षा, रत्नदीपिका, रत्नपरीक्षा समुच्चय आदि प्राचीन ग्रन्थों के आधार से ही अपने ग्रन्थ लिखे हैं। ग्रन्थकारक स्वयं जौहरी नहीं थे, इसीलिये उनमें स्वानुभव क्वचित् ही मिलेगा। राजाओं और जौहरियों के लिये ही उन ग्रन्थों की रचना हुई है।

रत्नपरीक्षा सम्बन्धी हिन्दी साहित्य भी उल्लेखनीय है, यहाँ उनमें से ज्ञात ग्रन्थों का विवरण दिया जाता है।

हिन्दी भाषा में रत्नपरीक्षा सम्बन्धी ग्रन्थों में सं० १५६८ में लिखित रत्नपरीक्षा और रत्नपरीक्षा समुच्चय के राजस्थानी (गुजराती-प्रधान) गद्यानुवाद सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद के संग्रहालय में उसकी ८२ पत्रों की प्रति है। कविवर दलपतराम हस्तलिखित पुस्तक नी सूची के पृष्ठ २१८ में उसका विवरण निम्नप्रकार पाया जाता है।

७४७ रत्नपरीक्षा (ग्रन्थ गद्य माछे) सं० १५६८, १ थी १७।१६.४४।

आरम्भ—सविश्र मुनिश्वरि विहुहाथ जोडी नमस्कार करी ×× शुक ऋषीश्वर इसिउ पूछिउ ××

अंत—× जे रतन (?) दोष सहित हुइ तेहनु थोड़ु मूल कहीउ।

जे सुगुणनि देखि हुई तेहनु घणु मूल कहीउ। कार्य लक्ष्मी सुख नु देहि—हुई २० इति श्री अगस्ति मुनि प्रणीता रत्नपरीक्षा समाप्त।

७४७ अ० रत्नपरीक्षा समुच्चय स० १५६८। ४५ थी ८२

(ग्रंथ गद्य माछे)

आरभ—× × × पद्मराग मणि करी श्री सूर्य प्रसन्न हुई। मोतीइ करी चन्द्रमा प्रसन्न हुई। परवाले मंगल प्रसन्न हुइ, मरकत मणि बुध प्रसन्न हुई × × इति मौक्तिक परीक्षा समाप्त × × स० १५६८ मार्गशीर्ष वदि ५ बुधे। उदीच्यदेव विद्याधर सुतई लिखत कल्याणमस्तु।

अन्तः— + सर्व लक्षण संपूर्ण कृते धन धान्य करइ। अनइ विष भयनु विनास करसे। ३ इति विद्रुम परीक्षा। इति श्री रत्नपरीक्षा। समुच्चय समाप्त। सं० १५६८ वर्षे माघ सुदि २ अनन्तर ३ तिथौ · · वासरे अद्य श्री पत्तनवास्तव्य उदीच्य ज्ञातीय दुवे विद्याधरसुतइ (प्र) ती लिखत रत्नपरीक्षा ग्रन्थ। (सानु पृ० ८२)

अगस्ति की रत्नपरीक्षा के गद्यानुवाद की स० १७३५ में लिखित प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी में एव हमारे संग्रह में है। यह गद्यानुवाद १७ वी शताब्दी में बनाये गये होंगे।

सं० १६६१ में राजस्थान के सुप्रसिद्ध प्रेमाख्यानी हिन्दी कवि जान ने 'पाहन परीक्षा' हिन्दी और तुर्की दोनों मतों के अनुसार बनाया इसलिये इस ग्रंथ का अपना विशिष्ट महत्व है।

पाहन की परीक्षा कहु, जैसे ग्रंथ वखान,
को मुहरो किन काम को, प्रगट कहत कवि जान।
हिन्दी तुर्की मति मथौ, कथो खण्ड वखानि,
कहत जान जानत नहीं, सोऊ लहत सुजानि॥

बीकानेर भण्डार की प्रति में इस ग्रन्थ का नाम 'रत्नपरीक्षा' भी लिखा है। उसमें इस ग्रन्थ के ४६ पद्य है। रचनाकाल की सूचना वाला पद्य इसमें नहीं है। कलकत्ता के स्व० बाबू पूरणचन्दजी नाहर के गुटका नं० ३९ में रचनासमयोल्लेख वाला पद्य भी है।

इसके बाद रत्नसागर[1] नाम के कवि ने सं० १७५५ के पौष वदि ४ शनिवार को रत्नपरीक्षा ग्रंथ का प्रारम्भ किया। इस ग्रंथ को भ्रम-वश सन् १९०५ की खोज रिपोर्ट में गुरुप्रसाद रचित और रत्नसागर ग्रन्थ का नाम बतला दिया है। वास्तव में ग्रन्थ के अन्तमें जो 'गुरु प्रसाद' शब्द आता है उसका अर्थ गुरु के प्रसाद से रचा गया ही अभिप्रेत है।

औरो रत्न अनेक है, असुर देह संजात।
कछु कहे लखि ग्रंथ मति, 'गुरुप्रसाद' अवदात॥

इस गुरु प्रसाद शब्द को गुरयदास पढ़कर खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई ने सं० १९६९ में इस ग्रन्थ को छपाया तब उसे गुरुदास विरचित लिख दिया गया। थोडी सी भूल में ग्रन्थ का नाम कुछ का कुछ प्रसिद्धि में आ गया। हमने जब इस ग्रन्थ की सं० १८४० लिखित

१—इसी (रत्नसागर) नाम से इसका सर्व प्रथम प्रकाशन सं० १९६२ में मनीषि समर्थदान ने राजस्थान यंत्रालय, अजमेर से किया था राजस्थान समाचार पत्र में भी इसका कुछ अंश छपा होगा। ग्रन्थ में १५ तरग है। वेंकटेश्वर प्रेस से यह संस्करण शुद्ध और सस्ता था। इसका मूल्य ≡) मात्र था।

जे सुगुणनि देखि हुई तेहनु घणु मूल कहीउ। कार्य लक्ष्मी सुख नु देहि—हुई २० इति श्री अगस्ति मुनि प्रणीता रत्नपरीक्षा समाप्त।

७४७ अ० रत्नपरीक्षा समुच्चय स० १५६८। ४५ थी ८२

(अथ गद्य माछे)

आरभ—× × × पद्मराग मणि करी श्री सूर्य प्रसन्न हुई। मोतीइ करी चन्द्रमा प्रसन्न हुई। परवाले मंगल प्रसन्न हुइ, मरकत मणि बुध प्रसन्न हुई × × इति मौक्तिक परीक्षा समाप्त × × स० १५६८ मार्गशीर्ष वदि ५ बुधे। उदीच्यदेव विद्याधर सुतई लिखत कल्याणमस्तु।

अन्तः—+ सर्व लक्षण संपूर्ण कृते धन धान्य करइ। अनइ विष भयनु विनास करसे। ३ इति विद्रुम परीक्षा। इति श्री रत्नपरीक्षा। समुच्चय समाप्त। सं० १५६८ वर्षे माघ सुदि २ अनन्तर ३ तिथौ वासरे अद्य श्री पत्तनवास्तव्य उदीच्य ज्ञातीय दुवे विद्याधरसुतइ (प्र) ती लिखत रत्नपरीक्षा ग्रन्थ। (सांनु पृ० ८२)

अगस्ति की रत्नपरीक्षा के गद्यानुवाद की स० १७३५ में लिखित प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी में एव हमारे संग्रह में है। यह गद्यानुवाद १७ वी शताब्दी में बनाये गये होंगे।

सं० १६६१ में राजस्थान के सुप्रसिद्ध प्रेमाख्यानी हिन्दी कवि जान ने 'पाहन परीक्षा' हिन्दी और तुर्की दोनों मतों के अनुसार बनाया इसलिये इस ग्रंथ का अपना विशिष्ट महत्व है।

पाहन की परीक्षा कहु, जैसे ग्रंथ वखान,
को मुहरो किन काम को, प्रगट कहत कवि जान।
हिन्दी तुर्की मति मथौ, कथो खण्ड वखानि,
कहत जान जानत नहीं, सोऊ लहत सुजानि॥

बीकानेर भण्डार की प्रति में इस ग्रन्थ का नाम 'रत्नपरीक्षा' भी लिखा है। उसमें इस ग्रन्थ के ४६ पद्य है। रचनाकाल की सूचना वाला पद्य इसमें नहीं है। कलकत्ता के स्व० बाबू पूरणचन्दजी नाहर के गुटका नं० ३६ में रचनासमयोल्लेख वाला पद्य भी है।

इसके वाद रत्नसागर[1] नाम के कवि ने सं० १७५५ के पौष वदि ४ शनिवार को रत्नपरीक्षा ग्रंथ का प्रारम्भ किया। इस ग्रंथ को भ्रम-वश सन् १६०५ की खोज रिपोर्ट में गुरुप्रसाद रचित और रत्नसागर ग्रन्थ का नाम बतला दिया है। वास्तव में ग्रन्थ के अन्तमें जो 'गुरु प्रसाद' शब्द आता है उसका अर्थ गुरु के प्रसाद से रचा गया ही अभिप्रेत है।

> **औरो रत्न अनेक है, असुर देह संजात।**
> **कछु कहे लखि ग्रंथ मति, 'गुरुप्रसाद' अवदात॥**

इस गुरु प्रसाद शब्द को गुरयदास पढ़कर खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई ने सं० १९६६ में इस ग्रन्थ को छपाया तब उसे गुरुदास विरचित लिख दिया गया। थोडी सी भूल में ग्रन्थ का नाम कुछ का कुछ प्रसिद्धि में आ गया। हमने जव इस ग्रन्थ की सं० १८४० लिखित

१—इसी (रत्नसागर) नाम से इसका सर्व प्रथम प्रकाशन सं० १९६२ में मनीषि समर्थदान ने राजस्थान यंत्रालय, अजमेर से किया था राजस्थान समाचार पत्र में भी इसका कुछ अंश छपा होगा। ग्रन्थ में १५ तरग है। वेंकटेश्वर प्रेस से यह संस्करण शुद्ध और सस्ता था। इसका मूल्य ≡) मात्र था।

प्रति को जयपुर से पं० भगवानदासजी से मंगाकर देखा और मिलान किया तब इस भ्रम का संशोधन हो सका। इस ग्रन्थ में १५ तरंग है। प्रत्येक तरग के अन्त में "इतिश्री रत्नपरीक्षाया रत्नसागर विरचिताया अमुक तरंगः" ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। इसलिये इस ग्रथ का रचयिता गुरुदास नही रत्नसागर ही समझना चाहिये।

यह ग्रन्थ भी अगस्ति के रत्नपरीक्षा पर ही आधारित है। स० १६०५ के खोज विवरण में यह ग्रन्थ 'भीषम परीक्षा' तक में ही समाप्त हो जाता है और उसे १४ वीं तरग बतलाया गया है पर वास्तव में छपे हुए ग्रन्थानुसार इस में पीछे और भी पाठ रह जाता है और ग्रन्थ १५ तरंगों में पूरा होता है। प्रारम्भ के चार पद्य इस प्रकार है—

मनसा वाचा कर्मणा, यथाशक्ति भजु तोइ।
मथि सागर रत्नहि कयो, दे चंडी मति मोहि॥
सतरहसौ पचपन भनौ, मन आई तजि दंभ।
चौथ शनिश्चर पोष बदि, पुष्य करु' आरम्भ॥
एक समय सब ऋषिन मिलि, ऋषि अगस्त पे आइ।
हाथ जोड़कैं पूछीयो, करि बन्दन मन भाइ॥
रत्नपरीक्षा करि कृपा, कहिये सुमति सुजान।
जाते सबही रत्न को, जाने नर परवान॥

विवरण में इन पद्यों से पहिले दंडक और दिया है।

जैनों का भी रत्नादि जवाहरात के व्यापार में बहुत बड़ा हाथ रहा हुआ है। गत कई शताब्दियों से शासकों और मुस्लिम बादशाहों के वे ही विशिष्ट जौहरी रहे हैं। इसलिये उनकी आवश्यकता पूर्ति के

लिये दो ग्रन्थ जैन यतियों ने व एक जैनेतर कवि कृष्णदास ने बनाया है। विवरण इस प्रकार है।

१—सं० १७६१ मिगसर सुदि ५ गुरुवार को सूरत में अंचलगच्छीय वाचक रत्नशेखर ने ५७० पद्यों का हिन्दी में रत्नपरीक्षा ग्रन्थ बनाया। उसकी रचना भीमसाहि के पुत्र शंकरदास के लिये की गई है। इसकी प्रति बीकानेर के वृहत् ज्ञानभडार में है।

२—सं० १८४५ में खरतर गच्छीय तत्वकुमार मुनि ने श्रावण वदि १० सोमवार को बगदेशवर्ती राजगज के चडालिया गोत्रीय आशकरण के लिए इसकी रचना की है। इन दोनों रचनाओं को इसी ग्रन्थ में प्रकाशित किया जा रहा है।

तृतीय ग्रन्थ स० १९०४ कार्तिक वदि २ को बीकानेर के बोथरा गोत्रीय जोहरी कृष्णचन्द्र जो दिल्ली में रहते थे, उनके लिये कृष्णदास नामक कवि ने रचा है। इसकी पद्य संख्या १३७ है। यह कवि श्रीकृष्ण जी का भक्त था। इसकी एकमात्र हस्तलिखित प्रति स्व० पूरणचन्दजी नाहर के संग्रहस्थ गुटके में है।

इन तीनों ग्रन्थों का विवरण मेरे सपादित राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के द्वितीय भाग के पृष्ठ ५६ से ५९ में दिया गया है।

रत्नपरीक्षा सम्बन्धी अन्य चार ग्रथ मिलते हैं, जिनमें से एक की रचना रामचन्द्र नामक कवि ने रत्नदीपिका के आधार से की है। यह अज्ञात रचना काल का ७० पद्यों का ग्रन्थ है। सा० दामोदर के वंशज धारीमल्ल के लिए इसकी रचना हुई है।

दूसरा ग्रन्थ नवलसिंह कवि रचित जोहरिन तरग है। यह २६६ छन्दों में स० १८७५ में रचा गया। इसका विशेष परिचय मुनि कान्तिसागरजी ने नवलसिंह कृत जोहरिन तरग लेख में दिया है जो ब्रजभारती एवं नागरी प्रचारणी पत्रिका के वर्ष ५६ अंक १ में प्रकाशित हुआ है।

तीसरे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का परिचय प० मोतीलाल मेनारिया सम्पादित राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के भाग १ पृ० १०४ में दिया गया है। एतद्विषयक उपलब्ध हिन्दी ग्रन्थों में यह सबसे बड़ा है। सं० १८५५ में लिखित १४८ पत्रों की प्रति उदयपुर के सज्जन वाणी विलास सग्रहालय में सुरक्षित है। यह ग्रन्थ २६ अध्यायों में विभक्त हैं। रचना में रत्न-मणियों के विवरण प्राप्ति का प्रसग इस प्रकार दिया है—

एक दिन स्नान करने के पश्चात् राजा अम्बरीष जब वस्त्राभूषण धारण करने लगते हैं तब उनके मन में यह विचार उठता है कि इन सुन्दर-सुन्दर रत्न मणियों की उत्पत्ति कैसे हुई होगी। राजा अपनी सभा आते हैं और अपने पडितों से इस विषय में पूछताछ करते हैं। इसे पाराशर ऋषि कहते हैं महाराज! मैंने वेदपुराण आदि को गाया है और रत्न मणियों के नाम भी सुने हैं पर उनका भेद मुझे अभी तक नही मिला। हाँ, व्यास मुनि इस भेद को अवश्य जानते हैं आप यदि उनके पास चलें तो आपके प्रश्नों का उत्तर मिल सकता है। इस पर राजा अम्बरीष और पाराशर दोनों व्यासजी के आश्रम में पहुॅचते हैं। वहाँ पर वही प्रश्न अम्बरीष व्यासजी से करते हैं। व्यासजी राजा के

वचनों को सुनकर बहुत प्रसन्न होते हैं और कहते हैं राजन् ! रत्ननिधि के रहस्य को शिवजी ने ब्रह्मा और विष्णु के सामने पार्वती को बतलाया था वह तुम्हें स्मरण है, सुनाता हूँ। तदनन्तर मन में शिवजी का ध्यान कर व्याडजी रत्न निधियों का वर्णन प्रारम्भ करते हैं।

चौथे ग्रंथ की सूचना मात्र ही डा० मोतीलाल मेनारिया ने बहुत वर्ष पूर्व दी थी उसकी अपूर्ण प्रति ही उन्हें मिली है विशेष विवरण प्राप्त न हो सका।

शिल्पसंसार ३० अप्रेल १९५५ के अंक में निम्नोक्त ग्रंथ और बतलाये हैं :—

१—रत्नप्रदीप—हीरे; माणक, मोती वगैरह की जानकारी मराठी लेखक पु० ल० खोवेटे जलगांव (खानदेश) खोवेटेजी का इस विषय पर और भी एक ग्रन्थ है।

२—रस प्रकाश सुधारक अध्याय

३—पदार्थ वर्णन खनिज पदार्थ (मराठी) ले० बालाजी प्रभाकर— (१८९१) रत्नोप० पृ० ५३ से ७१

४—मणि मोहरा विधान अर्थात् रत्नपरीक्षा ले० अभयचन्द्र गाधू

५—रत्नपरीक्षक—घासीराम जैन, सुदर्शन यन्त्रालय, मथुरा

६—रत्नदीपक—ले० लक्ष्मीनारायण वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

७—वैदिक मैगिजन लाहोर से कोनेरी राव साहब का नोलेज सिरागोनस् दिसम्बर १९२३

८—उद्यम १९२५ में प्र० रत्नोपरत्न व उनके उपयोग लेख (नागपुर)

इस प्रकार रत्नपरीक्षा सम्बन्धी भारतीय साहित्य का संक्षिप्त परिचय देनेके पश्चात् प्रस्तुत ग्रन्थ की जन्म कथा कही जाती है।

हमने १८ वर्ष पूर्व कलकत्ता की नित्य-विनय-मणि-जीवन जैन लायब्रेरी से प्राप्त फेरू ग्रन्थावली की स० १४०३-४ में लिखित प्रति से सम्पादित कर पुरातत्त्वाचार्य पद्मश्री मुनि जिनविजयजी को प्रकाशनार्थ भेजी थी जिसे मूलरूप उन्होंने राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के ग्रन्थाङ्क ६० में ३ वर्ष पूर्व प्रकाशित की। उस समय हमने द्रव्यपरीक्षा, रत्न-परीक्षादि ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद भी किया और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प० भगवानदास जैन और डा० मोतीचन्दजी आदि को निरीक्षणार्थ भेज दिया।

कन्नाणा निवासी श्रीमाल धाधिया गोत्रीय परम जैन चन्द्राङ्गज ठक्कुर फेरू सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के मन्त्रिमण्डल में एक विशिष्ट अनुभवी और बहुश्रुत विद्वान थे। उन्होंने ज्योतिष, गणित, वास्तुशास्त्र, रत्नशास्त्र, धातूत्पत्ति और मुद्राविषयक विज्ञान पर विशिष्ट ग्रन्थों की रचना की थी। इनकी सर्वप्रथम रचना 'युगप्रधान चतुष्पदिका' है जो स० १३४७ में वाचनाचार्य राजशेखर के समीप कन्नाणा में कलिकाल केवली श्रीजिनचन्द्रसूरि के समय में रची गई थी। इसके पश्चात् ये दिल्ली में सुलतान अलाउद्दीन के मन्त्रिमंडल में खजाने-रत्नागार, टंकशाल आदि में काम करते रहे। सं० १३७२ विजयादशमी के दिन इन्होंने वास्तुसार की रचना कन्नाणापुरमें की और इसी वर्ष दिल्ली में स्वपुत्र हेमपाल के लिए शाही खजाने के रत्नों के विशाल अनुभव से रत्नपरीक्षा रचना हुई। ठक्कुर फेरू ने स० १३७५ में अपने भाई और पुत्र के लिए टकशाल के विशिष्ट अनुभव से द्रव्यपरीक्षा नामक मुद्रा विषयक अनुपम ग्रन्थ की रचना की और सं० १३८० में दिल्ली से श्रीमाल सेठ रयपति

द्वारा दादासाहब श्रीजिनकुशलसूरिजी के नेतृत्व में निकले हुए महातीर्थ शत्रुञ्जय के सघ में सम्मिलित हुए थे। ठक्कुर फेरू की प्राकृत रत्नपरीक्षा को हम अनुवाद सहित इस ग्रन्थ में दे रहे हैं। प० भगवानदासजी प्रकाशित वास्तुसार प्रकरण में रत्नपरीक्षा की गाथा २३ से १२७ तक छपी है, जिसके बीच की ६१ से ११६ तक की गाथाए धातोत्पत्ति की हैं, पाठ भेद भी प्रचुर है। इसके अनुसार रत्नपरीक्षा ग्रन्थ १२७ गाथाओं का होता है पर इसकी बीच की बहुत सी गाथाएं छूट गई हैं और १३२ गाथाएं होती हैं। पाठान्तरों को यथास्थान गाथांक सहित कोष्टक में दे दिया गया है।

इसके पश्चात खरतर गच्छीय सागरचन्द्रसूरि शाखा के दर्शनलाभ गणि शिष्य मुनि तत्त्वकुमार कृत रत्नपरीक्षा (सं० १८४५ रचित) फिर अचल गच्छीय अमरसागरसूरि शिष्य वाचक रत्नशेखर कृत रत्नपरीक्षा भी दी गई है। परिशिष्ट में नवरत्न परीक्षा, मोहरा परीक्षा (राजस्थानी गद्य में) देकर कृत्रिम रत्नों और नवरत्नरस का नोट दिया गया है। हमारी प्रार्थना पर सुप्रसिद्ध विद्वान डा० मोतीचन्दजी ने कृपा करके ठक्कुर फेरू की रत्नपरीक्षा का परिचय बड़े ही परिश्रम पूर्वक और विस्तार से लिख भेजा था जिसे हमने रत्नपरीक्षादि-सप्त-ग्रन्थ सग्रह में प्रकाशित करवा दिया था पर हिन्दी पाठकों को विशेष लाभ मिले इस दृष्टिकोण से हम उसे इस ग्रन्थ में भी दे रहे हैं। हीरे की उत्पति स्थानों में बुद्धभट्ट, मानसोल्लास, रत्नसंग्रह, और ठक्कुर फेरू की रत्नपरीक्षा में जिस मातग स्थान का उल्लेख है, इसका ठीक पता नहीं चलता पर बेलारी जिले के हम्पी स्थान में रत्नकूट में से संलग्न मातग पर्वत की ओर संकेत हो तो

आश्चर्य नहीं। क्योंकि जनश्रुतियां हमें ऐसा अनुमान करने को प्रेरित करती हैं।

जयपुर निवासी जौहरी श्री राजरूपजी टाक ने रत्नपरीक्षा विषयक इस ग्रंथ को प्रकाशित करने की इच्छा व्यक्त की। आप जवाहिरात के अच्छे अनुभवी और सुयोग्य ज्ञाता हैं। आपने "रत्नप्रकाश" नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हिन्दी भाषा में प्रकाशित कर जौहरी भाइयों बड़ा उपकार करने के साथ-साथ हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण कमी की पूर्ति की है। इस ग्रंथ के प्रकाशन के लिये भी आप अनेकशः साधुवादार्ह हैं। पद्मभूषण प० सूर्यनारायणजी व्यास का रत्नों की वैज्ञानिक उपादेयता और परिचय" तथा राधाकृष्णजी नेवटिया का चिकित्सा में रत्नों का उपयोग नामक लेख भी साभार प्रकाशित किया जा रहा है। इस सामग्री से ग्रथ की उपयोगिता में अवश्य ही अभिवृद्धि हुई है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० मोतीचन्द्र और प० भगवानदास जैन आदि ने भी ग्रंथ के विषय में सत्परामर्शादि द्वारा जो आत्मीयता दिखाई है, अविस्मरणीय है।

अगरचंद नाहटा,
भँवरलाल नाहटा

ठक्कुर फेरूकृत रत्नपरीक्षाका परिचय

—·—·—

लेखक—डॉ. मोतीचन्द्र, एम. ए. पीएच्. डी.
(क्युरेटर, प्रिन्स ऑफ वेल्स मुजिअम, बम्बई)

***

अमरकोश (२।१।३—४) में पृथ्वी के अडतीस नामो मे वसुधा, वसुमती और रत्नगर्भा नाम आये हैं जिनसे इस देश के रत्नों के व्यापार की ओर ध्यान जाता है। प्लिनी ने (नेचुरल हिस्ट्री ३७। ७६) भी भारत के इस व्यापार की ओर इशारा किया है। इसमे जरा भी सदेह नही कि १८ वी सदी पर्यंत जब तक कि, ब्राजिल की रत्नो की खानें नही खुली थी, भारत ससार भर के रत्नो का एक प्रधान बाजार था। रत्नो की खरीद विक्री के बहुत दिनो के अनुभव से भारतीय जौहरियो ने रत्नपरीक्षा शास्त्र का सृजन किया। जिसमें रत्नों के खरीद, बेच, नाम, जाति, आकार, घनत्व, रग, गुण, दोष, कीमत तथा उत्पत्तिस्थानों का सांगोपांग विवेचन किया गया। बाद में जब नकली रत्न बनने लगे तब उन्हे असली रत्नो से विलग करने के तरीके भी बतलाये गये। अत में रत्नों और नक्षत्रो के सम्बन्ध और उनके शुभ और अशुभ प्रभावो की ओर भी पाठकों का ध्यान दिलाया गया।

रत्नपरीक्षा का शायद सबसे पहला उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र (२। १०। २६) में हुआ है। इस प्रकरण में अनेक तरह के रत्न, उनके प्राप्तिस्थान तथा गुण और दोष की विवेचना है। कामसूत्र की चौंसठ क

की तालिका मे (कामसूत्र, १ । ३ । १६) रूप्य-रत्न-परीक्षा ' और मणिरागाकर ज्ञान विशेष कलाएं मानी गई है । जयमगला टीका के अनुसार रूप्य-रत्न-परीक्षा के अन्तर्गत सिक्को तथा रत्न, हीरा, मोती इत्यादि के गुण दोषो की पहचान व्यापार के लिये होती थी । मणिरागाकर ज्ञान की कला में गहनो के जडने के लिये स्फटिक रगने और रत्नो के आकारो का ज्ञान आ जाता था । दिव्यावदान (पृ० ३) मे भी इस बात का उल्लेख है कि व्यापारी को आठ परीक्षाओ मे, जिन में रत्नपरीक्षा भी एक है, निष्णात होना आवश्यक था । पर इस रत्नपरीक्षा ने किस युग में एक शास्त्र का रूप ग्रहण किया इसका ठीक-ठीक पता नही चलता । कौटिल्य के कोश-प्रवेश्य रत्नपरीक्षा प्रकरण से तो ऐसा मालूम पडता है कि मौर्य युग में भी किसी न किसी रूप में रत्नपरीक्षा शास्त्र का वैज्ञानिक रूप स्थिर हो चुका था । रोम और भारत के बीच में ईसा की आरम्भिक सदियों में जो व्यापार चलता था उसमें रत्नो का भी एक विशेष स्थान था । इसलिये यह अनुमान करना शायद गलत न होगा कि भारतीय व्यापारियो को, रत्नो का अच्छा ज्ञान रहा होगा और किसी न किसी रूप में रत्नपरीक्षा शास्त्र की स्थापना हो चुकी होगी । जो भी हो, इसमें जरा भी सदेह नही कि ईसा की पाचवी सदी के पहले रत्नपरीक्षा का सृजन हो चुका था ।

यह समझ लेना भूल होगा कि रत्न-परीक्षा शास्त्र केवल जौहरियो की शिक्षा के लिये ही बना था । इसमें शक नही कि, जैसा दिव्यावदान में कहा गया है, व्यापारियो के पुत्र पूर्ण और सुप्रिय (दिव्यावदान, पृ०२६, २६) को और और विद्याओं के साथ साथ रत्नपरीक्षा भी पढना पडा था । हमें इस बात का पता है कि प्राचीन भारत में राजा और रईस रत्नों के पारखी होते थे ।

यह आवश्यक भी था क्योकि व्यापारियों के सिवा वे ही रत्न खरीदते थे और सग्रह करते थे । यह जैसा कि हमें साहित्य से पता चलता है, काव्यकारो को भी इस रत्नशास्त्र का ज्ञान होता था और वे बहुधा रत्नो का उपयोग रूपको और उपमाओ में करते थे, गो कि रत्न सम्बन्धी उनके अलकार कभी कभी अति-रजित होकर वास्तविकता से बहुत दूर जा पहुचते थे । जैसा कि हमें मृच्छ-कटिक के चौथे अक से पता चलता है, कि जब विदूषक वसतसेना के महल में घुसा तो उसने छठे परकोटे के आंगन के दालानो मे कारीगरो को आपस में वैडूर्य, मोती, मूगा, पुखराज, नीलम, कर्केतन, मानिक और पन्ने के सम्बन्ध में बातचीत करते देखा । मानिक सोने से जडे (बध्यन्ते) जा रहे थे, सोने के गहने गढे जा रहे थे, शख काटे जा रहे थे, और काटने के लिये मूगे सान पर चढाये जा रहे थे । उपर्युक्त विवरण से इस बात का पता चल जाता है कि शूद्रक को रत्नपरीक्षा का अच्छा ज्ञान रहा होगा । कलाविलास के आठवें सर्ग में सोनारों के वर्णन से भी इस बात का पता चलता है कि क्षेमेन्द्र को उनकी कला और रत्नशास्त्र का अच्छा परिचय था ।

रत्नपरीक्षा शास्त्र का जितना ही मान था, उतना ही वह शास्त्र कठिन माना जाता था । इसीलिये एक कुशल रत्नपरीक्षक का समाज में काफी आदर होता था । रत्नपरीक्षा के ग्रन्थ उसका नाम बडे आदर से लेते है । अगस्तिमत[१] (६७–६८) के अनुसार गुणवान मण्डलिक जिस देश में होता है, वह धन्य

१—देखिये, लेलेपिदर आदिया, श्रीलुई फिनो, पारी १८९६ । मैंने इस भूमिका को लिखने मे श्री फीनो के ग्रन्थ से सहायता ली है जिस का मैं आभार मानता हूँ । श्री फीनो ने अपने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में उपलब्ध रत्न शास्त्रो को एक जगह इकठ्ठा कर दिया है ।

है। ग्राहक को उसे बुलाकर आसन दे देकर तथा गंध मालादि से सत्कार करना चाहिये। बुद्धभट्ट (१४–१५) के अनुसार रत्नपरीक्षकों को शास्त्रज्ञ एवं कुशल होना चाहिये। इसीलिये उन्हें रत्नो के मूल्य और मात्रा के जानकार कहा गया है। देश काल के अनुसार मूल्य न आकने वाले तथा शास्त्र से अनभिज्ञ जौहरियों की विद्वान कदर नहीं करते। ठक्कुर फेरू (१०६—१०७) का भाव भी कुछ ऐसा ही है। *उसके अनुसार मण्डलिक को शास्त्रज्ञ, आंखवाला,* अनुभवी, देश, काल और भाव का ज्ञाता और रत्नो के स्वरूप का जानकार होना आवश्यक था। हीनाग, नीच जाति, सत्यरहित और बदनाम व्यक्ति जानकार और मान्य होने पर भी असली जौहरी कभी नही हो सकता। अगस्तिमत (६५) ने भी यही भाव प्रकट किये है ।

अगस्तिमत (५४—६६) के अनुसार चतुर जौहरी को मंडलिन् कहा गया है। यह नाम शायद इसलिए पडा कि जौहरी अपना काम करते समय मडल में बैठता था। यह भी सभव है कि यहां मडल से मडली यानी समूह का मतलब हो। अगस्ति मत (६१—६६) के अनुसार जौहरी रत्नो का मूल्य आकता था। उसे देश में मिलनेवाले आठ खानो तथा विदेशी और द्वीपों से आए हुए रत्नो का ज्ञान होता था। उसे रत्नों की जाति, राग रग, र्वात, तौल, गुण, आकर, दोष, आव (छाया) और मूल्य का पता होता था।। वह आकर (पूर्वी मध्यभारत), पूर्वदेश, कश्मीर, मध्यदेश, सिंहल तथा सिंधु नदी की घाटी में रत्न खरीदता था तथा रत्न वेचने और खरीदने वाले के बीच मध्यस्थ का काम करता था। अगस्तिमत (७२ के अनुसार वह रत्न विक्रेता से हाथ मिलाकर अगुलियो के इशारे से उसे रत्न के मूल्य का पता दे देता था। उसी के एक क्षेपक (१३-२३) के अनुसार १, २, ३, ४ सख्याओ का क्रमश तर्जनी से दूसरी अगुलियो को पकडने से

बोध होता था। अगूठे सहित चारो अगुलियां पकडने से ५ की संख्या प्रकट होती थी। कनिष्ठा आदि के तलस्पर्श से क्रमश: ६, ७, ८ और ६ की सख्याओ का बोध होता था, तथा तर्जनी से १० का। फिर नखो के छूने से क्रमशः ११, १२, १३, १४ और १५ का बोध होता था। इसके बाद हथेली छूने पर कनिष्ठादि से १६ से १९ तक की सख्याओं का बोध होता था। तर्जनी आदि का दो, तीन, चार और पांच बार छूने से २० से ५० तक की सख्याओ का बोध होता था। कनिष्ठा आदि के तलो को को ६ बार तक छूने से ६० से ६० तक अको की ओर इशारा हो जाता था, तथा आधी तर्जनी पकडने से १००, आधी मध्यमा पकडने से १०००, आधी अनामिका पकडने से अयुत, आधी कनिष्ठिका से १०००००, अगूठे से प्रयुत, कलाई से करोड। मुगलकाल में तथा अब भी अगुलियो की सांकेतिक भाषा से जौहरी अपना व्यापार चलाते है।

प्राचीन साहित्य मे भी बहुधा जौहरियो के सम्बन्ध में उल्लेख मिलते है। दिव्यावदान (पृ० ३) में कहा गया है कि किसी रत्न की कीमत आकने के लिए जौहरी बुलाये-जाते थे। अगर वे रत्न की ठीक ठीक कीमत नही आंक सकते थे तो उसका मूल्य वे एक करोड कह देते थे। बृहत्कथाश्लोकसग्रह (१८, ३६६) से पता चलता है कि सानुदास ने पांड्य मथुरा में पहुंच कर वहा का जौहरी बाजार देखा और वहा एक क्रेता और विक्रेता को, एक जौहरी, से, एक रत्नालकार का मूल्य आकने को कहते सुना। सानुदास को उस गहने की ओर ताकते हुए देखकर उन्होने समझा कि शायद यह निगाहदार था। उससे पूछने पर उसने गहने की कीमत एक करोड बता कर कह दिया कि बेचने और खरीदनेवाले की मर्जी से सौदा पट सकता था। वे दोनो एक दूसरे जौहरी के पास पहुचे जिसने कहा कि गहने की कीमत सारा ससार था पर नासमझ

मोल एक छदाम था। सानुदास की जानकारी से प्रसन्न होकर राजा ने उसे अपना रत्नपरीक्षक नियुक्त कर दिया।

प्राचीन साहित्य में अनेक ऐसे उल्लेख आए है जिनसे पता चलता है कि रत्नों के व्यापार के लिए भारतीय जौहरी देश और विदेश की बराबर यात्रा करते थे। दिव्यावदान (पृ० २२९—२३०) की एक कहानी मे बतलाया गया है कि रत्नो के व्यापारी मोती, वैडूर्य, शख, मूगा, चादी, सोना, अकीक, जमुनिया, और दक्षिणावर्त्त शख के व्यापारी के लिए समुद्र यात्रा करते थे। निर्यामक प्रायः उन्हें सिंहलद्वीप मे बनने वाले नकली रत्नो से होशियार कर देता था तथा उन्हें आदेश दे देता था कि वे खूब समझ कर माल खरीदें। ज्ञाताधर्म कथा (१७) और उत्तराध्ययन सूत्र की टीका (३६।७३) से भी रत्नो के इस व्यापार की ओर सकेत मिलता है। उत्तराध्ययन टीका में एक ईरानी व्यापारी की कहानी दी गई है जो ईरान से इस देश में सोना, चादी, रत्न और मूगा छिपा कर लाना चाहता था। आवश्यक चूर्णि (पृ ३४२) में रत्नव्यापार के लिए एक बनिए का पारसकूल जाने का उल्लेख है। महाभारत (२।२७।२५–२६) के अनुसार दक्षिण समुद्र से इस देश मे रत्न और मूगे आते थे। ईसा की प्रारभिक सदियों में तो भारत से रोम को हीरे, सार्ड, लोहिताक, अकीक, सार्डोनिक्स, बाबागोरी, क्राइसाप्रेस, जहर मुहरा; रक्तमणि, हेलियोट्राप, ज्योतिरस, कसौटी पत्थर, लहसुनियां, एवेंचुरीन, जमुनिया, स्फटिक, बिल्लौर, कोरंड, नीलम, मानिक, लाल-लाजवर्द, गार्नेट, तुरमुली, मोती इत्यादि पहुचते थे (मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ० १२८-१२९)

—.२.—

प्राचीन रत्नपरीक्षा का क्या रूप रहा होगा यह तो ठीक-ठीक नही कहा जा

सकना, पर उस सम्बन्ध के जो ग्रंथ मिले हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

१–अर्थशास्त्र—कौटिल्य ने कोश-प्रवेश्य रत्नपरीक्षा (अर्थशास्त्र, २-१०-२९) में रत्नपरीक्षा के सम्बन्ध की कुछ जानकारिया दी है। कोश मे अधिकारी व्यक्तियो के सलाह से ही रत्न खरीदे जाते थे। पहले प्रकरण में मोती के उत्पत्ति स्थान, गुण, दोष तथा आकार इत्यादि का वर्णन है। इसके बाद मणि, सौगंधिक, वैडूर्य, पुष्पराग, इन्द्रनील, नदक, स्रवन्मध्य, सूर्यकान्त, विमलक, सस्यक, अजनमूल, पित्तक, सुलभक, लोहितक, अमृताशुक, ज्योतिरसक, मैलेयक, अहिच्छत्रक, कूर्प, पूतिकूर्प, सुगन्धिकूर्प, क्षीरपक, सुक्तिचूर्णक, सिलाप्रवालक, चूलक शुक्रपुलक तथा हीरा और मूगा के नाम आए हैं। इनमें से बहुत से रत्नों की ठीक-ठीक पहचान भी नही हो सकती क्यो कि बाद के रत्नशास्त्र उनका उल्लेख तक नही करते।

२—रत्नपरीक्षा— बुद्धभट्ट की की रत्नपरीक्षा का समय निश्चित करने के पहले वराहमिहिर की बृहत्सहिता के ८० से ८३ अध्यायों की जानकारी जरूरी है। इन अध्यायों में हीरा, मोती और मानिक के वर्णन हैं। पन्नेकावर्णन तोकेवल एक श्लोक में है। बुद्धभट्ट की रत्नपरीक्षा और बृहत्सहिता के रत्नप्रकरण की छानबीन करके श्री फिनों (वही पृ० ७ से) इस नतीजे पर पहुचते हैं कि दोनों की रत्नों की तालिकाओ तथा हीरे और मोती का भाव लगाने की विधि इत्यादि में बडी समानता है। इसमे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनो ग्रंथों ने समान रूप से किसी प्राचीन रत्नशास्त्र से अपना मसाला लिया। गरुडपुराण ने भी बुद्धभट्ट का नाम हटाकर ६८ से ७० अध्यायो में रत्नपरीक्षा ग्रहण कर लिया। बहुत सभव है कि शायद बुद्धभट्ट का समय ७—८ वीं सदी या इसके पहले भी हो सकता है।

३—अगस्तिमत—अगस्तिमत और रत्नपरीक्षा का विषय एक होते हुए भी दोनो में इतना भेद है कि दोनो एक ही अनुश्रुति की बहुत दिनोसे अलग हुई शाखा जान पडते हैं। श्री फिनो (पृ० ११) के अनुसार अगस्तिमत का समय बुद्धभट्ट के बाद यानी छठी सदी के बाद माना जाना चाहिए। शायद उसका लेखक दक्षिण का रहनेवाला जान पडता है। सभव है कि अगस्तिमत का आधार कोई ऐसा रत्नशास्त्र रहा हो जिसकी ख्याति दक्षिण में बहुत दिनो तकथी। ग्रथ के अनेक उल्लेखो से ऐसा पता चलता है, कि रत्नशास्त्र के प्राचीन सिद्धान्तो को निबाहने हुए भी ग्रथकार ने अपने अनुभवो का उल्लेख किया है। अभाग्य वश ग्रथकार के व्याकरण और शैली में निष्णात न होने से उसके भाव समझने में बडी कठिनाई पडती है।

४—नवरत्नपरीक्षा—नवरत्नपरीक्षा के दो सस्करण मिलते हैं। छोटे सस्करण में सोम भूभूज् का नाम तीन जगह मिलता है जिसके आधार पर यह माना जा सकता है कि इसके रचयिता कल्याणी का पश्चिमी चालुक्य राजा सोमेश्वर (११२८-११३८, ई०) था। इस कथन की सचाई इस बात से भी सिद्ध होती है कि मानसोल्लास के कोशाध्यायमे (मानसोल्लास, भा० १, पृ० ६४ से।) जो रत्नो का वर्णन है, वह सिवाय कुछ छोटे मोटे पाठभेदो के नवरत्न जैसा ही है। नवरत्नपरीक्षा का दूसरा सस्करण बीकानेर और तजोरकी हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है। इसमें धातुगद, मुद्राप्रकार और कृत्रिम रत्नप्रकार प्रकरण अधिक है। सभव है कि स्मृतिसारोद्धार के लेखक नारायण पडित ने इन प्रकरणो को अपनी ओर से जोड दिया हो।

५—अगस्तीय रत्नपरीक्षा—अगस्तीय रत्नपरीक्षा वास्तव में अगस्ति

मत का सार है। पर विस्तार में कही-कही नई बातें आ गई हैं। अभाग्यवश इसका पाठ बहुत भ्रष्ट और अशुद्ध है।

उपर्युक्त ग्रंथो के सिवाय रत्नसग्रह, अथवा रत्नसमुच्चय, अथवा समस्तरत्नपरीक्षा २२ श्लोकों का एक छोटासा ग्रंथ है। लघुरत्नपरीक्षा में भी २० श्लोक हैं जिनमें रत्नो के गुण दोषो का विवरण है। मणिमाहात्म्य में शिव पार्वती सवाद के रूप में कुछ उपरत्नो की महिमा गाई गई है।

६–फेरू रचित रत्नपरीक्षा—ठक्कुर फेरू रचित रत्नपरीक्षा का कई कारणो से विशेष महत्त्व है। पहली बात तो यह है कि यहर त्नपरीक्षा प्राकृत में है। ठक्कुर फेरू के पहले भी शायद प्राकृत में रत्नपरीक्षा पर कोई ग्रंथ रहा हो, पर उसका अभी तक पता नही। दूसरी बात यह है कि ग्रंथकार श्रीमाल जाति में उत्पन्न ठक्कुर चद के पुत्र ठक्कुर फेरू का सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६—१३१६) के खजाने और टक्साल से निकटतर सम्बन्ध था। उसका स्वय कहना है कि उसने बृहस्पति, अगस्त्य और बुद्धभट्ट की रत्नपरीक्षाओ का अध्ययन करके और एक जौहरी की निगाह से अलाउद्दीन के खजाने मे रत्नो को देख कर, अपने ग्रंथ की रचना की (३—५), उसके इस कथन से यह बात साफ मालूम पड जाती है कि कम से कम ईसा की १३ वी सदी के अत में बुद्धभट्ट की रत्नपरीक्षा, वराहमिहिर के रत्नो पर के अध्याय और अगस्तिमत, रत्नशास्त्र पर अधिकारी ग्रंथ माने जाते थे और उनका उपयोग उस युग के जौहरी बराबर करते रहते थे। जैसा हम आगे चल कर देखेगे, ठक्कुर फेरू ने रत्नपरीक्षा की प्राचीन परम्परा की रक्षा करते हुए भी तत्कालीन मूल्य, नाप, तोल तथा रत्नों के अनेक नए स्रोतो का उल्लेख किया है जिनका पता हमे फारसी इतिहासकारों से भी नही चलता।

— ३ —

प्राचीन रत्नशास्त्रों में खानोंसे निकले रत्नों के सिवाय मोती और मूगा भी शामिल है जो वास्तव में पत्थर नही कहे जा सकने। साधारणत जवाहरात के लिए रत्न और मणि और कभी-कभी उपल शब्द का व्यवहार किया गया है । सस्कृत साहित्य में रत्न शब्द का व्यवहार कीमती वस्तु और कीमती जवहरात के लिए हुआ है। वराहमिहिर (वृ० स० ८०।२) के अनुमार रत्न शब्द का व्यवहार हाथी, घोडा, स्त्री इत्यादि के लिए गुणपरक है, रत्नपरीक्षा में इसका व्यवहार केवल कचनादि रत्नो के लिए हुआ है। मणि शब्द का व्यवहार कीमती रत्नो के लिए हुआ है, पर वहुधा यह शब्द मनिया, गुरिया अथवा मनके लिए भी आया है।

वेदो मे रत्न शब्द का प्रयोग कीमती वस्तु और खजानो के अर्थ में हुआ है। ऋगूवेद में तीन जगह (फिनो, पृष्ट १५) सप्त रत्नो का उल्लेख है। मणि का अर्थ ऋग्वेद में तावीज की तरह पहननेवाले रत्नो से है (ऋग्वेद, १।३। ८, अ० वे० १।२९२, २।४।१ इत्यादि) मणि तागे में पिरोकर गले में पहनी जाती थी। (वाजसनेयी स० ३०।७, तैत्तिरीयम ३।४।३।१) इसमें भी सदेह नही कि वैदिक आर्यो को मोती का भी ज्ञान था। मोती (कृशन) का उपयोग शृङ्गार के लिये होता था [ऋग्वेद, २।३५।४, १०।६८।१, अथर्ववेद ४।१०।१-३]

सुव्यवस्थित रत्नशास्त्रो के अनुसार नव रत्नो में पाच महारत्न और चार उपरत्न है। वज्र, मुक्ता, माणिक्य, नील और मरकत महारत्न है। गोमेद, पुष्पराग, वैडुर्य (लहसनिया] और प्रवाल उपरत्न है। मानिक और नीलम के कई भेद गिनाये गये है। वराहमिहिर (८२।१) तथा वुद्धभट्ट (११४)

के अनुसार मानिक के चार भेद यथा—पद्मराग, सौगधि, कुरुविंद और स्फटिक है। अगस्तिमत (१७३) क अनुसार मानिक के तीन भेद हैं, यथा-पद्मराग, सौगधिक, कुरुविंद। नवरत्नपरीक्षा (१०६-११०) में इनके सिवाय नीलगधि भी आ गया है। अगस्तीय रत्नपरीक्षा में (४६ से) मानिक का एक नाम मासपिंड भी है। ठक्कुर फेरू के अनुसार (५६) मानिक के साधारण नाम माणिक्य और चुन्नी है, अब भी मानिक के ये ही दो नाम सर्वसाधारण में प्रचलित हैं। मानिक के निम्नलिखित भेद गिनाए गए हैं-पद्मराय (पद्मराग), सोगधिय (सौगधिक), नीलगध, कुरुविन्द और जामुणिय।

रत्नपरीक्षाओं में नीलम के तीन भेद गिनाये गये है-नील साधारण नीलम के लिये व्यवहृत हुआ है तथा इन्द्रनील और महानील उसकी कीमती किस्में थी। ठक्कुर फेरू ने (८१) नीलम की केवल एक किस्म महिंदनील (महेन्द्रनील) बतलाया है।

प्राचीन रत्नपरीक्षाओं में पन्ने के मरकत और तार्क्ष्य नाम आये हैं। पर ठक्कुर फेरू [७२] ने पन्ने के निम्नलिखित भेद दिये है—गरुडोदार, कीडउठी बासउती, मूगउनी, और धूलिमराई।

उपर्युक्त नव रत्नो की तालिका प्राय सब रत्नशास्त्रो में आती है पर अगस्तिमत [३२५-२६] मे स्फटिक और प्रभ जोडकर उनकी सख्या ग्यारह कर दी गयी है। बुद्धभट्ट ने उस तालिका में पांच निम्नलिखित रत्न जोड दिये हैं—यथा शेब [ओनेक्स] कर्केतन [थ्राइ सोब न्याल] भीष्म, पुलक [गार्नेट] रुधिराक्ष [कर्निलियल] शेष का ही अरबी जज रूपान्तर है। यह पत्थर भारत और यमन से आता था। इसके बहुत से रग होते है जिनमें सफेद और काला प्रधान है। भारत में इस पत्थर का पहनना अशुभ माना जाता था। भीष्म

घू (चू) लिमरकत, [१५] भस्मांग, [१६] जबुकान्त, [१७] स्फटिक, [१८] कर्क्कतर, [१९] पारिपात्र, [२०] नन्दक, [२१] अच (तु) नक, [२२] लोहितक, [२३] शैलेयक, [२४] शुक्तिचूर्ण, [२५] पुलक, [२६] तुत्य (त्थ) क, [२७] शुकग्रीव [२८] गुरुत् (ड) पक्ष, [२९] पीतराग, [३०] वर्णरस (सर), [३१] कप्पूर्रक, [३२] काच।

उपमणियो की उपर्युक्त तालिका में कुछ मणियो पर घ्यान दिलाना आवश्यक है। इसमें कूर्म और महाकूर्म तो मणियो की श्रेणी में नही आते। कछुए की खपडियो का व्यापार बहुत पुराना है और इसका उल्लेख पेरिप्लस में अनेक बार हुआ है (शाफ, पेरिप्लस आफ दि एरीथ्रियन सी, पृ० १३ इत्यादि) अहिछत्रक का उल्लेख हमारा ध्यान कौटिल्य (२ । १ । २९) के आहिच्छत्रक रत्न की ओर ले जाता है। घूलिमरकत से यहा शायद पन्ने के खड से मतलब है और इस तरह वह ठक्कुर फेरू की घूलिमराई भी शायद खड हो। भस्मांग से यहां शायद भीष्म से मतलब हैं। जम्बुकान्त से शायद जमुनियां का मतलब है। अजन, पुलक, नदक और शुक्तिचूर्णक के नाम भी अर्थशास्त्र में आए हैं। कर्क्कतर से यहा कर्क्कतन का तथा लोहितक से लोहितांक का मतलब है। तुत्यक से हमारा ध्यान कौटिल्य के तुत्थोद्गत चादी की ओर खीच जाता है (१२ । १४ । ३२)। काच से काच मणि की ओर इशारा है।

सन् १४२१ में लिखित पृथ्वीचन्द्र चरित्र (प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह पृ० ९५, बडोदा, १९२०) मे रत्नो और उपरत्नो की निम्नलिखित तालिका दी गयी है—पद्मराग, पुष्यराग(पुखराज) माणिक, सीघलिया, गरुड़ोद्गार, मणि; मरकत, कर्क्केतन, वज्र, वैडूर्य चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, जलकान्त, शिवकान्त, चन्द्रप्रभ, साकरप्रभ, प्रभनाथ, अशोक, वीतशोक, अपराजित, गगोदक, मसारगल्ल

हंसगर्भ, पुलिक, सौगधिक, सुभग, सौभाग्यकर, विषहर, धृतिकर, पुष्टिकर, शत्रुहर, अजन ज्योतिरस, शुभरुचि, शूलमणि, अशुकालि, देवानन्द, रिष्टरत्न, कीटपख, कसाउला, धूमराइ, गोमूत्र, गोमेद, लसणीया, नीला, तृणधर, खगराइ, वज्रधार, षट-कोण, कणी, चापडी, पिरोजा, प्रवाला, मौक्तिक ।

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से इस बात का पता चलता है कि ग्रन्थ-कार ने उसमें रत्नो और उपरत्नो के सिवाय उनके भेद, गुण, दोष इत्यादि की भी गिनती कर ली है। जैसे पद्मराग, माणिक, सीधलिया और सौगधिक मानिक के भेद हैं। मरकत के भेद में ही गरुडोद्गार, मणि, मरकत, धूमराइ और कीटपख आ जाते है। स्फटिक के भेदो में चन्द्रकान्त, जलकान्त, शिवकान्त; चन्द्रप्रभ, साकरप्रभ, प्रभानाथ, गगोदक, हसगर्भ, कसाउला (कापाय) आजाते हैं। पुखराज, कर्क्केतन, वज्र, वैडूर्य, अशोक, वीतशोक पुलक, अजन, ज्योतिरस, अशुकालि, मसारगल्ल, रिष्टरत्न, गोमूत्र, गोमेद, लहसनिया, नीला; पिरोजा, मोती, मूगा अलग अलग रत्न या उपरत्न है। अपराजित, सुभग, सौभाग्यकर, विषहर, धृतिकर, पुष्टिकर, शत्रुहर, देवानन्द, तृणधर, रत्नो के गुण से सम्बन्ध रखते हैं। वज्रधर, षट्कोण, कर्णी और चापडी रत्नो की बनावट से सम्बन्धित हैं।

यहां बौद्ध और जैन शास्त्रों में आई रत्नो की तालिकाओं की ओर भी ध्यान दिला देना आवश्यक मालूम होता है। चुल्लवग्ग[3] (६।१।३) में मुत्ता, मणि, वेलूरिय, शख, शिला, पवाल, रजत, जातरूप, लोहितक और मसारगल्ल के नाम आए है। मिलिन्द प्रश्न (पृ० ११८) मे इदनील, महानील, जोतिरस, वेलुरिय, उम्मापुप्फ, सिरीस, पुप्फ, मनोहर, सूरियकन्त, चन्दकन्त, वज्र, कज्जोपमक, फुस्सराग, लोहितक और मसारगल्ल के नाम आये है। सुखावती

व्यूह (५६) में वैडूर्य, स्फटिक सुवर्ण रूप अश्मगर्भ लोहितिका और मुसारगल्ल नाम आये है। दिव्यावदान मे रत्नो की दो तालिकाएं है। एक में (पृ० ५१) मुक्ता, वेडूर्य, शख, शिला, प्रवालक, रजत, जातरूप, अश्मगर्भ, मुसारगल्ल, लोहितिका और दक्षिणावर्त के नाम हैं, और दूसरी में (पृ० ६७) पुष्पराग, पद्मराग, वज्र, वैडूर्य, मुसारगल्ल, लोहितिका, दक्षिणावर्त शंख, शिला और प्रवाल के नाम हे। जैन प्रज्ञापना सूत्र (भगवानदास हर्षचन्द्र द्वारा अनूदित १ पृ० ७७, ७८) मे वद्दूर जग (अजण) पवाल; गोमेज्ज, रुचक, अक, फलिह, लोहियक्ख, मरकथ, मसारगल्ल, भुयमोयग, इदनील, हसगब्भ, पुलक, सौगधिक, चन्द्रप्रभ, वैडूर्य, जलकान्त और सूर्यकान्त के नाम आये हैं। चुल्लवग्ग की तालिका मै शिलासे शायद स्फटिक से मतलब है। मिलिंद पश्न की तालिका में उम्मपुष्फ से शायद जमुनिया का, शिरीषपुष्पक से (अ० शा० २। ११। २९) शायद किसी तरह के वेडूर्य का बोध होता है। कज्जोपमक से शायद चिन्तामणि रत्न की ओर इशारा है जो सब काम पूरा करता था। वराहमिहिर का (बृ० स० ८०। ५) ब्रह्ममणि भी शायद चिन्तामणि ही हो। सुखावती व्यूह के अश्मगर्भ से शायद पन्ने का मतलव हो (अमरकोश २। ९। ९२)। प्रज्ञापनासूत्र में भुयगमोचक से शायद जहर मुहरे का और हसगर्भ से किसी तरह के स्फटिक का बोध होता है।

अर्थशास्त्र (२। ११। २९) में जैसा हम पहले देख आये हैं, अनेक रत्नो के उल्लेख है। इन मे मोती, हीरा पद्मराग, वैंडूर्य, पुष्पराग, गोमदक, नीलम, चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त इत्यादि रत्नो की श्रेणी में आ जाते है। कौट मौलेयक और पारसमुद्रक से मणियों की उत्पत्ति स्थान का बोध होता है। कूट पर्वत तो का पता नही पर मौलेयक रत्न का नाम शायद वलूचिस्तान में झालावन

में वहनेवाली मूलानदी से पडा हो (मोतीचन्द्र जे० यू० पी० एच० एस० १७ भा० १, पृ० ६३)

लगता है कि प्राचीन साहित्य मे रत्नो की तालिका देने की कुछ रीति सी चल गयी थी। तामिल के सुप्रसिद्ध काव्य शिलप्पदिकारम् में भी एक जगह रत्नो का उल्लेख आया है (शिलप्पदिकारम् १४। १८०-२०० ・श्री दीक्षिनार द्वारा अंग्रेजी अनुवाद मद्रास १९३९) मथुरे मे घूमता, घामता कोवलून जोहरी बाजार में पहुचा। वहा उसने चार वर्ण के निर्दोष हीरे, मरकत, पद्मराग, माणिक्य, नीलविंदु, स्फटिक, पुष्पराग, गोमदक और मोती देखे।

—: ३ —

प्राय. रत्नशास्त्रो में (अगस्तिमत ४, ६३ बुद्धभट्ट ११ का पाठ भेद) रत्नो की परख आठ तरह से, यथा—(१) उत्पत्ति (२) आकर (३) वर्ण अथवाछाया (४) जाति (५) गुण—दोष (६) फल (७) मूल्य और (८) विजाति (नकल) के आधार पर की गयी है। इस का विस्तार नीचे दिया जाता है।

(१) **उत्पत्ति**—यहा उत्पत्ति से रत्नो की वास्तविक अथवा पारलौकिक उत्पत्ति से तात्पर्य है। रत्नो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राय· सब शास्त्रों का मत है कि वे एक वज्राहत असुर से पैदा हुए। बुद्धभट्ट (२, १२) के अनुसार एक पराक्रमी त्रिलोक विजेता दानवराज बलि था। एक समय उसने इन्द्र को जीत लिया। खुली लडाई में उससे पार न पा सकने के कारण देवताओ ने उससे यज्ञ में वलि-पशु बनने का वर माँगा। उसके एवमस्तु कहने पर सौत्रामणि यज्ञ में देवताओ ने उसे स्तम्भ से वाँध दिया। उसकी विशुद्ध जाति और कर्म से उसके शरीर के सारे अवयव रत्नो में परिणित हो गए। ऐसा होने पर देव

नागों में यज्ञ सिद्ध रत्नो के लिए छीनाझपटी होने लगी। इस छीनाझपटी में समुद्र, नदी, पर्वत, वन इत्यादि में रत्न गिरकर आकर रूप में परिवर्तित हो गये। इन रत्नो से राक्षस, विष, सर्प और व्याधियो से तथा पाप लग्न में जन्म तथा दुर्दिन से रक्षा होती है। अगस्तिमत (१—९) में भी कहानी का यही रूप है। केवल फरक इतना है कि यज्ञ में असुर के सिर पर इन्द्र ने वज्र मारा और वज्राहत सिर से ही रत्नो की सृष्टि हुई। उसके सिर से ब्राह्मण, भुजाओ से क्षत्रिय, नाभि से वैश्य और पैरो से शूद्र रत्नो की उत्पत्ति हुई। नवरत्न परीक्षा (८ से) में दैत्य का नाम वज्र दिया गया है। वज्रासुर को हराने के लिए इन्द्र ने उससे उसके शरीरदान का वर माँगा। ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार कर लेने पर यह जानकर कि उसका शरीर अभेद्य है, इन्द्र ने उसके मस्तक पर वज्र से प्रहार किया। उसके शरीर से तरह तरह के रत्न निकले। देव, नाग, सिद्ध, यक्ष, राक्षस और किन्नरों ने तो वह रत्न जाल ग्रहण कर लिया, बाकी रत्न पृथ्वी पर फैल गए।

ठक्कुर फेरु (६-१९) की रत्नोत्पत्ति सबधी अनुश्रुति का रूप भी बुद्धभट्ट वाली जनश्रुति जैसा ही है। एक दिन असुर बलि इन्द्रलोक को जीतने गया। वहां देवताओं ने उससे यज्ञ-पशु बनने की प्रार्थना की, जिसे उसने स्वीकार कर लिया। उसकी हड्डियो से हीरे, दातो से मोती, लहू से माणिक, पित्त से पन्ना, आँखो से नीलम, हृत्‌रस से वैडूर्य, मज्जा से कर्केतन, नखो से लहसुनिया, मेद से स्फटिक, माँस से मूगा, चमडेसे पुखराज तथा वीर्य से भीष्म पैदा हुए। असुर बल के शरीर से निकले रत्नों में से सूर्य ने पद्मराग, चन्द्र ने मोती मगल ने मूगा, बुद्ध ने पन्ना, बृहस्पति ने पुखराज, शुक्र ने हीरा, शनि ने नीलम, राहु ने गोमेद और केतु ने वैडूर्य ग्रहण कर लिए और इसीलिए इन रत्नो को

धारण करने वाले उपर्युक्त ग्रहों से पीडा नही पाते। चोखे रत्न ऋद्धिदायक और सदोष रत्न दरिद्रता देने वाले होते हैं।

पर रत्नों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उपर्युक्त मत ही प्रचलित नहीं था, इसका निराकरण वराहमिहिर (८०—३) ने कर दिया है। उनके अनुसार एक मत से रत्न दैत्य बल से उत्पन्न हुए, दूसरों का कहना है कि दधीचि से। कुछ इस मत के हैं कि उनकी उत्पत्ति पत्थरो के स्वभाववैचित्र्य से है। ठक्कुर फेरू (१२) के अनुसार भी कुछ लोग ऐसे थे जिनका मत था कि रत्न पृथ्वी के विकार हैं। जैसे सोना, चाँदी, ताबा आदि धातु हैं वैसे ही रत्न भी।

एक दूसरे विश्वास के अनुसार मनुष्य, सर्प तथा मेंढक के सर में मणि होती थी। (अगस्तिमत, ६३—६७) वराहमिहिर, (८५—५) के अनुसार सर्पमणि गहरे नीले रग की और बडी चमकदार होती थी।

(२)आकर—रत्नों की खान को आकर कहा गया है। वराहमिहिर (८०—१७) के अनुसार नदी, खान और छिटफुट मिलने की जगह आकर हैं। बुद्धभट्ट (१०) ने आकरों में समुद्र, नदी, पर्वत और जगल गिनाए हैं।

(३)वर्ण,छाया—प्राचीन ग्रन्थो में रत्नों के रग को छाया कहा गया है। पर बाद के शास्त्रो में वर्ण के लिए छाया शब्द का व्यवहार हुआ है। बहुधा शास्त्रकार रत्नो को छाया की उपमा जानी पहचानी वस्तुओं से देते हैं।

(४)जाति—रत्नशास्त्रों में इस शब्द का तीन अर्थों में प्रयोग हुआ है। यथा असली रत्न, रत्न की किस्म और जाति। अन्तिम विश्वास के अनुसार रत्नो में भी जातिभेद होता था। यह विश्वास शायद पहिले पहल हीरे तक ही सीमित था। इसके अनुसार ब्राह्मण को सफेद हीरा, क्षत्रिय को लाल, वैश्य को पीला

और शूद्रो को को काला हीरा पहनने का विधान था। बाद में यह विश्वास और रत्नों के सम्बन्ध में भी प्रचलित हो गया ×।

(५)गुण, दोष—रत्नों के सम्बन्ध में इन शब्दो का प्रयोग उनकी शुद्धता और चमत्कार लेकर हुआ है। पहिले अर्थ में वे रत्न के गुण और दोष-परक है। दूसरे अर्थ में वे रत्न के बुरे और भले प्रभाव के द्योतक है।

रत्नो के गुण निम्नलिखित है--महत्ता(भारीपन) गुरुत्व, गौरव(घनत्व) काठिन्य, स्निग्धता, राग-रग, आब(अर्चिस, द्युति, कांति, प्रभाव) और स्वच्छता।

(६)फल—सभी रत्नो के फल की विवेचना की गयी है। अच्छे रत्न स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, धन और गौरव देने वाले, सर्प, जगली जानवर, पानी, आग, बिजली, चोट, बिमारी इत्यादि से मुक्ति देने वाले तथा मैत्री कायम रखने वाले माने गए है। उसी तरह खराब रत्न दुख देने वाले माने गए है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि रत्नो के बिमारी अच्छा करने के गुणो का रत्न शास्त्रों में उल्लेख नही है। रत्नों के फलो की जाँच पडताल से यह भी पता चलता है कि उनके लिखने में दिमागी कसरत को अधिक प्रश्रय दिया गया है। पर इसमें सदेह नही कि शास्त्रकारो ने रत्न-फल के सम्बन्ध में लोकविश्वासो की भी चर्चा कर दी है। हीरे का गर्भस्रावक फल और पन्ने का सर्पविष हरन इसी कोटि के विश्वास है।

× यहा यह बात उल्लेखनीय है कि दिव्य शरीर का रत्नो में परिणत होजाने का विश्वास वैदिक है (जे० आर० एस० १८९४, पृ० ५५८–५६०)। ईरानियों का भी कुछ ऐसा ही विश्वास था (जे० आर० एस० १८९५, पृ० २०२–२०३)।

(७)रत्नों के मूल्य-उनके तौल और प्रमाण पर आश्रित होते थे। प्राचीन ग्रंथो में रत्नों का मूल्य रूपको और कार्षापणो में निर्धारित किया गया है। यह पता नहीं चलता कि रत्नो का मूल्य सोना अथवा चांदी के सिक्को मे निर्धारित होता था, पर कार्षापण के उल्लेख से इनका दाम चांदी के सिक्को ही मे मालूम पड़ता है। अगस्तिमत के एक क्षेपक(१२) से पता चलता है कि गोमेद और मूगे का दाम चांदी के सिक्को मे होता था, तथा वैडूर्य और मानिक का सोने के सिक्कों में। ठक्कुरफेरु (१३७) ने बडे हीरे, मोती, मानिक और पन्ने का मूल्य स्वर्णटकोमे बतलाया है।आधे मासे से चार मासे तक के लाल, लहसुनिया, इन्द्रनील और फिरोजा के दाम भी स्वर्णमुद्राओ मे होते थे (१२१--२३)। एक टांक में १० से १०० तक चढनेवाले मोतियो का दाम रूप्य टको में होता था (१२४-१२६)। उसी तरह एक रत्ती में १ से दो धान चढने वाले हीरे का मूल्य भी चांदी के टको में कहा गया है (१२७-२८)। गोमेद, स्फटिक, भीष्म, कर्कतन, पुखराज, वैडुर्य–इन सब के मूल्य भी द्रम्म में होते थे (१३०)।

मानसोल्लास (१,४५७-४६४) मे रत्न तोलने की तुला का सुन्दर वर्णन है। उसके तुलापात्र कांसे के बने होते थे। उनमें चार छेद होते थे। जिनमें डोरिया पिरोई जाती थी। कासे की डाडी १२ अंगुल की होती थी। जिसके दोनो बगल मुद्रिकायें होती थी। डाडी के ठीक बीचोबीच पाँच अगुल का कांटा होता था। जिसका एक अगुल छेद में फसा दिया जाता था। कांटे के दोनो ओर तोरण की आकृति बनाई जाती थी। जिसके सिर पर कुण्डली होती थी। उसी मे डोरी लगती थी। तराजू साधने के लिए एक कलंज तोल का माल एक पलडे में और पानी दूसरे पलडे में भरा जाता था। जब कांटा तोरण के ठीक बीचमे [illegible] था तो तराजू सध गई मानी जाती थी।

(८) विजाति—इस शब्द से कृत्रिम रत्नो का तथा कीमती रत्नों की तरह दिखने वाले उपरत्नो से अभिप्राय है । ऐसे नकली रत्न भारत ओर सिंहल में बहुतायत से बनते थे। नवरत्न परीक्षा (१७४-१८३) के अनुसार सम भाग जले शंख और सिंदूर को सद्य प्रसूता गाय के दुग्ध में सान कर फिर उसे तृण से बाध कर बांस में भर कर मिट्टी के बरतन मे चावल के साथ पका कर फिर उसे निकाल कर धीमी आच पर रख देते थे, फिर उसे तेल में बोरते थे। इससे बांस के भीतर नकली मूगा बन जाता था । इन्द्रनील बनाने के लिए एक कुप्पे में एक पल नील का चूर्ण और दो पल शंख का चूर्ण मिलाकर खूब हिलाते थे। फिर पूर्वोक्त विधि से नकली इन्द्रनील बना लेते थे । नकली मरकत बनाने के लिए मंजीठ, ईंगुर और नील समभाग में लेकर उसे शीशे की कुप्पी में खूब मिलाते थे । फिर उनके रवे अलग करके उन्हें आग में पकाया जाता था। मानिक शख के चूर्ण और ईंगुर के मेल से उपर्युक्त विधि से बनता था ।

—·४·—

इस प्रकरण में रत्न-परीक्षाओं के आधार पर उनमें आए रत्नो के उपर्युक्त आठ विशेषताओं की जांच पडताल करके यह बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि ठक्कुर फेरू ने अपनी रत्नपरीक्षा में कहां तक प्राचीनता का उपयोग किया है और कहां उसने रत्न सम्बन्धी अपने अनुभवों का ।

हीरा—हीरा रत्नो में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । उसकी विशेषता यह है कि वह सब रत्नो को काट सकता है । उसे कोई रत्न नही काट सकता प्राय सब शास्त्रो के अनुसार हीरे की उत्पत्ति असुरबल की हड्डियो से हुई । उसका नाम वज्र इसलिए पडा कि इन्द्र से वज्राहत होने पर ही वह निकला ।

प्रधान रत्नशास्त्र हीरेकी खानें आठ या दस मानते हैं । पर कौटिल्य (अनुवाद, पृ० ७८) में हीरे की खानो के कुछ दूसरे ही नाम हैं । यथा सभाराष्ट्रक (विदर्भ या वरार) में मध्यम राष्ट्रक (कोसल यानी दक्षिण कोसलमें) काश्मक (शायद अश्मक) [हैदराबाद की गोलकुण्डा की खान] इन्द्रवानक (कलिंग, ओडीसा) की तो पहचान टींकाकारो ने की है । काश्मक की पहचान टीकाकारने बनारसी हीरे से की है । जिससे बनारस के हीरे तराशों का अड्डा होंने की ओर सकेत हो सकता है । श्रीकटनक हीरा वेदोत्कट पर्वत में मिलता था । श्रीकटनक का ठीक पता नहीं चलता पर शायद इससे; धनकटक (धरणीकोट) जो प्राचीन अमरावती का नाम था, बोध होता है । अगर यह पहचान ठीक है तो यहा कृष्णा नदी की घाटी में मिलने वाले हीरो की ओर सकेत हो सकता है । मणिमतक हीरा मणिमत् अथवा मणिमन्त पर्वत के पास पायाजाता था । इस मणिमत् पर्वत की पहचान श्रीपार्जिटर ने (मारकण्डेय पुराण, पृ०३७०) में कश्मीर के दक्षिण की पहाडियों से की है । यहां अब हीरा मिलने का पता नहीं चलता । रत्नशास्त्रों में दी गई हीरे की खानों का पता निम्नलिखित तालिका से चल जायेगा ।

बुद्धभट्ट	वराहमिहिर	अगस्तिमत	मानसोल्लास	अगस्तीय	रत्नसग्रह	ठक्कुर फेरू रत्नपरीक्षा
सुराष्ट्र	.	.	.	.	.	हेमन्त
हिमालय	.	.		...	. .	हिमवन्त
मातग		बग	मातग	मगध	मानग	
पौंड्र	.		.	...		पड्र.(पौड्र)
कोमल	..	. .			...	...
वैण्णातट	वेणातट	वेणु	वैरागर	+	आरव	वेणु
सूर्पार	...	.	सौपार	+	...	

यहा यह निश्चित कर लेना कठिन है कि उपर्युक्त यन्त्र में कितने भौगोलिक नाम वास्तविकता लिए हुए हैं और कितने काल्पनिक है। पर इसमे सदेह नही की यन्त्र मे खानो और बाजारो के नाम मिल गये है। यह भी सम्भव है कि बहुत सी प्राचीन खाने समाप्त हो गयी हो और उनकी खुदाई बहुत प्राचीन काल में बन्द कर दी गयी हो। सुराष्ट्र यानी आधुनिक सौराष्ट्र में हीरे-की किसी खान का पता नही चलता पर यह सभव है कि यहा से रत्न बाहर भेजे जाते हों। यहां एक उल्लेखनीय बात यह है कि प्राचीन साहित्य में जैसे महानिद्देस और वसुदेवहिण्डी में सुराष्ट्र एक बन्दर का नाम भी आया है जो शायद सोमनाथ पट्टन हो। यही बात सूर्पारक यानी बम्बई के पास सोपारा बन्दरगाह के बारे में भी कही जा सकती है। आर्यशूर की जातकमाला में तो इस बन्दर में रत्नो के लाए जाने का उल्लेख भी है। हिमालय मे हीरे का होना जो उस अनुश्रुति का द्योतक है जिसके अनुसार मेरू, हिमालय और समुद्र रत्नों के आकर माने गए है। यह बात ठीक है कि शिमला के पास कुछ हीरे मिले थे पर हिमालय में हीरे की खान होने का पता नही चलता। मातग से यहां किस प्रदेश से तात्पर्य है इसका भी ठीक पता नही चलता। श्री फिनो (पृ० २६) चालुक्यराज मगलीश के एक लेख के आधार पर मातगो का निवास स्थान गोलकुण्डा का प्रदेश स्थिर करते है। हरिषेण (बृहत्कथा कोश ७५।१-३) के अनुसार मातग पांड्य देश तथा उसके उत्तर में पर्वत की सधि पर रहते थे। शायद यहा सेलम जिलेके चीवरै पर्वत श्रेणी से मतलब है, पर यहां हीरे का पता नही चला है। पौण्ड्र देश से मालदह, कोसी के पूर्व पुर्निया जिले का कुछ भाग तथा दीनाजपुर और राजशाही जिले के कुछ भाग का बोध होता है। तथा पौण्ड्रवर्धन से बोगरा जिले के महास्थान से मतलब है। शायद कलिंग के हीरे से कडपा, बेलारी, कर्नूल, कृष्णा, गोदावरी इत्यादि के तथा

सम्भलपुर के पास ब्राह्मणी, सक तथा दक्षिणी कोयल नदियो से मिलने वाले हीरे से है। जहांगीर युग की खोखरा की हीरे की खान भी इस बात की पुष्टि करती है। जहांगीर ने स्वय अपने राज्य के दसवे वर्ष के विवरण (तुजूक, अग्रेजी अनुवाद, भा० १, ३१६) में इस बात का उल्लेख किया है कि बिहार के सूबेदार इब्राहीमखा ने खोखरा को फतह करके वहा के हीरे की खान पर कब्जा कर लिया। हीरे वहा की एक नदी से निकलते थे। इसमें सदेह नही कि कोसल से यहां दक्षिण कोशल से मतलब है। जिसकी पहचान आधुनिक महाकोसल से है। शायद वैरागर और वेणातट या वेणु के हीरे कौसल ही के अन्तर्गत आ जाते है। वेणा नदी जो आजकल की वेन गगा है चादा जिले से होकर बहती है और उसी पर स्थित बैरागढ में हीरे मिलते है। मानसोल्लास के वैरागर(स० वज्राकर) की पहचान इसी वैरागढ से ठीक उतर जाती है। शायद यही स्थान चीनी यात्रियो का कोस्सल और टाल्मी का कौसल रहा हो। अगस्तीय रत्नपरीक्षा में आये मगध से भी शायद छोटा नागपुर की खानो का बोध होता है।

रत्न शास्त्रो में हीरे के अनेक रग बताये गये हैं। इनके अनुसार सुराष्ट्र का हीरा लाल, हिमालय का तमैला, मातग का पीला, पुड्र का भूरा, कलिंग का सुनहरा, कोसल का सिरीस के फूल के रग वाला, वेणा का चन्द्र की तरह सफेद, तथा सुपारा का सफेद होता था। ठक्कुर फेरू (२२) ने हीरे का रग तमैला सफेद, नीला, मटमैला, हरताल की तरह पीला, तथा सिरीस के फूल जैसा बतलाया है। ये रग खान-परक थे। हीरे के वर्णों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया है। सफेद हीरा ब्राह्मण, लाल क्षत्रिय, पीला वैश्य और काला शूद्र पहनने का अधिकारी था। पर राजा को चारो वर्ण के हीरे पहनने का अधिकार था। पर बाद के लेखकों ने सफेद, लाल, पीले और काले हीरे को ही क्रमश ब्राह्मण, क्षा

वैश्य और शूद्र जाति में बांट दिया है। ठक्कुर फेरू (२६) भी इसी मत के हैं। उनकी राय में सफेद चोखा हीरा मालवी अर्थात मालवे का कहलाता था।

जिनके घरों में निर्दोष हीरे होते हैं उनको विघ्न, अकाल मृत्यु और शत्रुभय से सुरक्षा होती है। लाल और पीले हीरे पहनने से राजा को विजयश्री हाथ लगती थी। पुरुष लपलपाते हीरे में भूत, प्रेत, वृक्ष, मदिर, इन्द्रधनुष इत्यादि देख सकते थे (३०)।

हीरे का आरभिक रूप अठपहला होता था और हीरे के इसी आकार को रत्नशास्त्रों में सब से अच्छा माना है। प्राचीन रत्नशास्त्रों के अनुसार अच्छे हीरे में छ या अष्ट कोण, बारह धाराए, आठदल पार्श्व या अग कहे गए हैं। हीरे की चोटी को कोटि तल को विभाजित करने वाली रेखा को अग्र, चोटी की उठान को उत्तुग तथा नुकीली विभाजन रेखाओ को तीक्ष्ण कहते थे। तौल में कम, स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल और भास्कर-ये हीरे के गुण माने गए है। ठक्कुर फेरू (२४) ने हीरे के आठ गुण कहे है-सम फलक, उच्च कोणी, तीक्ष्ण धारा, पानी (वारितक), अमल, उज्ज्वल, अदोष और लघुतोल।

रत्नशास्त्रो में हीरे के अनेक दोष भी उल्लिखित है। जिनमें टूटी चोटी या पहल, एक की जगह दो कोण, दल दीनता, वर्तुलता, दलहीनता, चपटापन, लबोदरपन्, भारीपन, बुलबुलापना, और कातिहीनता मुख्य हैं। ठक्कुर फेरू २५) ने नौ दोष यथा--काकपद, विंदुर (छीटा) रेखा, मैलापन, चिकट, एक शृगता, वर्तुलता, जोका आकार, तथा हीन अथवा अधिक कोण बतलाया है। उसके अनुसार (३१-३२) अत्यन्त चोखी तीखी धारा पुत्रार्थी स्त्रियो के लिए हानिकर थी। पर इसके विपरीत चिपटा, मलिन और तिकोना हीरा रमणियो

को इसलिए सुखकर होता था कि पुत्ररत्नों की जननी होने से वे अपने को प्रथम रत्न मानती थी, भला फिर उनका सदोष रत्न क्या कर सकता था।

हीरे का मूल्य प्राचीन रत्नशास्त्रों में तौल के आधार पर निश्चित किया जाता था। इस सम्बन्ध में दो मत थे एक बुद्धभट्ट और वराहमिहिर का और दूसरा अगस्तिमत का। पहिली व्यवस्था में तौल तडुल और सर्षप (१ तडुल=८ सर्षप) में थी तथा मूल्य रूपकों में। हीरे की सबसे अधिक तौल बीस तंडुल और दाम दो लाख रूपक निश्चित की गई थी। तौल के इस क्रम में हर घटाव या चढाव दो इकाइयों के बराबर होता था। २० तडुल हीरे का दाम दो लाख था और एक तडुल के हीरे का दाम एक हजार। देखने में तो यह हिसाब सीधा साधा मालूम पडता है, पर श्री फिनो ने हिसाब लगाकर बतलाया है कि २० तंडुल यानी चार केरट के हीरे का दाम इस रीति से बहुत अधिक बैठ जाता है।

अगस्तिमत के अनुसार तौल्य और स्थौल्य के आधार पर पिंड से हीरे का दाम निश्चित किया जाता था। पिंड का माप १ यव स्थौल्य और १ तंडुल तौल्य मान लिया गया है। इस तरह एक पिंड के हीरे का दाम ५०, दो का ५० गुणा ४, चार का ५०गुणा १२, पाँच का ५० गुणा १६····इस तरह बढ़ते बढते २० पिंड का दाम ३८०० तक पहुच जाता है। पर इस मूल्यांकन में एक ही घनत्व के हीरे आते हैं. उनके हलके होने पर उनका दाम बढ जाता था तथा भारी होने पर घट जाता था। इष तरह एक हीरा एक पिंड के घनत्व का होते हुए भी १।४ हलके होने पर उसका दाम १८ गुना होता था, १।२ हलके होने पर ३६ गुना तथा ३।४ हलके होने पर ७२ गुणा हो जाता था। इसी तरह एक हीरा एक पिंड घनत्व का होते हुए भी भारी हो तो उसका दाम १।४ भारी [illegible]गर आधा हो जाएगा इत्यादि। श्री फिनो की राय में [illegible] तब वास्तविक मालूम पडता है।

ठक्कुर फेरू ने हीरे का मूल्यांकन अलग न देकर मोती, मानिक और पन्ने के साथ दिया है। पर हीरे का मूल्य निर्धारण करते समय उसे अगस्तिमत का ध्यान अवश्य रहा होगा। उसके अनुसार (३३) समपिंड हीरे का भारी होने पर कम दाम और फार तथा हलके होने पर ज्यादा दाम होता था।

अलाउद्दीन के समय जौहरियों की तौल का वर्णन ठक्कुर फेरू ने इस तरह से किया है —

३ राई	—	१ सरसो
६ सरसो	—	१ तडुल
२ तडुल	—	१ जौ
१६ तडुल या ६ गुजा(रत्ती)	—	१ मासा
४ मासा	—	१ टाक

टाक के उपर्युक्त तौल में कई बाते उल्लेखनीय है। श्री नेल्सन राइट ने (दि कॉयन्स एण्ड मेट्रालोजी आफ दि सुलतान्स् आफ देहली, पृ ३९१ से) अपनी खोज से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सुलतान युग के टांक में ९६ रत्तिया होती थी। रत्ती का वजन १०८ ग्रेन मान कर उन्होने टांक की तौल १७२ ग्रेन निर्धारित की है। पर ठक्कुर फेरू के हिसाब से तो २४ रत्ती एक टाक यानी १७२ ८ ग्रेन के बराबर हुई यानी एक रत्ती का वजन करीब ६ ३५ ग्रेन के करीब हुआ। अब यहा प्रश्न उठता है कि गुजा से यहां साधारण गुजा का ही अर्थ है अथवा यह कोई तौल थी जिसका वजन आधुनिक रत्ती से करीब करीब पाँचगुना अधिक था।

ठक्कुर फेरू (१११) ने स्वय इस बात को स्वीकार किया है कि रत्नो का मूल्य बधा हुआ न होकर अपनी नजर पर अवलम्बित होता है, फिर भी

अलाउद्दीन के समय रत्नो के जो दाम थे उनकी तौल के साथ उसने वर्णन किया है और यह भी बतलाया है कि चार रत्न यानी हीरा, मोती, मानिक और पन्ने का दाम सोने के टके में लगाया जाता था। इन रत्नो की बडो से बडो तौल एक टाक और छोटी तौल एक गुंजा मान ली गई है। पर एक टांक में १० से १०० तक चढने वाले मोतो तथा एक गुंजा में १ से १२ थान तक चढने वाले हीरे का मूल्य चांदी के टाक में होता था। उपर्युक्त रत्नों के तौल और मूल्य दो यन्त्रों में समझाये गए है —

कीमती रत्न सम्बन्वी यन्त्र—

गुंजा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१५	१८	२१	२४
हीरा	५	१२	२०	३०	५०	७५	११०	१६०	२४०	३२०	४००	६००	१४००	२८००	५६००	११२००

मोती	०॥	१	२	४	८	१५	२५	४०	६०	८४	११४	१६०	३६०	७००	१२००	२०००
मानिक	२	५	८	१२	१८	२६	४०	६०	८५	१२०	१६०	२२०	४२०	८००	१४००	२४००
पन्ना	०।	०॥	१	१॥	२	३	४	५	६	८	१०	१३	१८	२७	४०	६०

उपर्युक्त यन्त्र की जाच से कई बातो का पता लगता है। सबसे पहली बात तो यह है कि अलाउद्दीन के काल में और युगो की तरह हीरे की [illegible] सब रत्नो से अधिक थी। हीरा जैसे जैसे तौल में बढता जात[illegible]

पात में उसकी कीमत बढती जाती थी। बारह रत्ती तक तो उसका दाम क्रमश बढता था पर उसके बाद हर तीन रत्ती के वजन पर उसका दाम दुगुना हो जाता था। अगर चांदी और सोने का अनुपात १०:१ मान लिया जाय तो एक टांक के हीरे का मूल्य १,२०००० चादी के टाक के बराबर होता था। इसके विपरीत एक टांक के मोती का मूल्य २००० और मानिक का २४०० सुवर्ण टका था। पन्ने का दाम तो वहुत ही कम यानी एक टक पन्ने का दाम ६० सुवर्ण टका था।

छोटे मोती और हीरो के तौलऔर दाम का यन्त्र—

मोती(टक १)	१०	१२	१५	२०	२५	३०	४०	५०	६०-७०	७०-१००	–	–
रुप्यटक	५०	४०	३०	२०	१५	१२	१०	८	५	३	–	–
वज्रगुजा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
रुप्यटक	३५	२६	२०	१६	१३	१०	८	७	६	५	४	३

उपर्युक्त यत्र से यह पता चलता है कि मोती और हीरे जितने अधिक एक टांकमें चढते थे उतना ही उनका दाम कम होता जाता था और इसीलिए उनका दाम सोने के टकों में न लगाया जाकर चादी के टको मे लगाया जाता था।

रत्न शास्त्रो के अनुसार नकली हीरा लोह, पुखराज, गोमेद, स्फटिक, वैडूर्य और शीशे से बनता था। ठक्कुर फेरू (३७) ने भी इन्ही वस्तुओ को नकली हीरा बनाने के काम में लाने का उल्लेख किया है। नकली हीरे की पहचान अम्ल तथा दूसरे पत्थरों के काटने की शक्ति से होती थी। ठक्कुर फेरू (४८)-के अनुसार नकली हीरा वजन में भारी जल्दी बिधने वाला, पतली धार वाला तथा सरलतापूर्वक घिस जाने वाला होता था।

मोती—महारत्नों में मोती का स्थान दूसरा है। भारतीयो को शायद

इस रत्न का बहुत प्राचीनकाल से पता था। मोती को जिसे वैदिक साहित्य में कृशन कहा गया है, सबसे पहला उल्लेख ऋग्वेद (१।३५।४,१० ।६८।१) में आता है। अथर्ववेद मे वायु, आकाश, बिजलो, प्रकाश तथा सुवर्ण, शख और मोती से रक्षा की प्रार्थना की गयी है। शख और मोती राक्षसो, राक्षसियाँ और बीमारियो से रक्षा करने वाले माने जाते थे। उनकी उत्पत्ति आकाश, समुद्र, सोना तथा वृत्र से मानी गयी है।

रत्नशास्त्रों के अनुसार मोती के आठ स्रोत—यथा सीप, शख, बादल, मकर और सर्प का सिर, सूअर की दाढ, हाथी का कुम्भस्थल तथा बांस की पोर माने गये है। यह विश्वास भी था कि स्वाती की बूदे सीपियो में पड कर मोती हो जाती थी। असुरबल के दातों से भी मोती बनने का उल्लेख आता है।

मोती के उत्पत्ति सम्बन्धी उपर्युक्त विश्वासो की जाच पडताल से पता चलता है कि अथर्ववेद वाली अनुश्रुति से उनका खासा सम्बन्ध है। उसके वृत्र-जात मानने से असुरबल वाली अनुश्रुति की ओर ध्यान जाता है। इस तरह हम देख सकते है कि मोती सम्बन्धी प्राचीन विश्वासों की जड वैदिक युग तक पहुच जाती है।

ठक्कुर फेरू ने भी मोती के उत्पत्तिस्थान, रत्नशास्त्रो की ही तरह कहे है। उसके अनुसार शखजन्य मोती छोटे, सफ़ेद तथा लाल होते हैं और उनमें मगल का आवास होता है। मच्छ से उत्पन्न मोती काला, गोल तथा हलका होता है और उसके पहनने से शत्रु और भूत प्रेतों से रक्षा होती है। वांस में पैदा मोती गुंजे के इतने वडे तथा राज देने वाले होते हैं। सूअर की दाढ से पैदा मोती गोल चिकना तथा साखू के फल इतना वडा होता है। उसको पहनने वाला अजेय हो जाता है। सांप से निकला मोती नीला तथा इलायची इतना होता है। उसके पहनने से सर्पोपद्रव, विप ,तया विजली स

वादल में पैदा मोती तो देवता लोग पृथ्वी पर आने ही नही देते, गिरने क पहिले ही उन्हें रोक लेते है। चिन्तामणि मोती वह है जो वरसने पानी की एक वूद हवा से सूख कर मोती हो जाय। सीप के मोती छोटे और मूल्यवान होते है।

रत्नशास्त्रो में मोती के आकरों की सख्या भिन्न भिन्न दी हुई है। एक अनुश्रुति के अनुसार आठ आकर है तो दूसरी के अनुसार चार। अर्थशास्त्र (३।११। २९) के अनुसार ताम्रपर्णी से निकलने वाले मोती ताम्रपर्णिक, पाड्यकवाट से पाड्यकवाटक, पाग से पाशिक्य, कूल से कौलेय, चूर्ण से चौर्ण, महेन्द्र से माहेन्द्र कार्दम से कार्दमिक, स्रोतसि से स्रोतसीय, ह्रद से ह्रदीय और हिमवत् से हैमवतीय।

उपर्युक्त तालिका में ताम्रपर्णिक और पाड्यकवाटक तो निश्चय मनार की खाडी के मोती के द्योतक है। ताम्रपर्ण से यहा ताम्रपर्णी नदी का तात्पर्य माना गया है। पाड्यवाट मथुरै है जहा मोती का व्यापार खूब चलता था। पाश से शायद फारस का मतलब है। चूर्ण को टीकाकार ने केरल में मुचिरि के पास एक गाव माना है। यह गाव शायद तामिल साहित्य का मुचिरि और पेरिप्लस (शाफ, वहि, पृ० २०५ का मुजिरिस था जिसकी पहचान क्रेगनोर में मुयिरिकोट्ट से की जाती है। मुजरिस ईसा की आरम्भिक सदियो में एक बडा वदर था और वहुत सम्भव है कि कि यहां मोती आने से किसी नदी के नाम के आधार पर मोती का चौर्णेय नाम पड गया हो। टीका के अनुसार कौलेय मोती का नाम सिहल की किसी कूल नदी के नाम पर पडा, पर विचार करने से यह वात ठीक नही मालूम पडती। कूल से पेरिप्लस (५९) के कोल्चि तथा शिलप्पदिकारम् (पृ २०२) के कोरकै से वोध होता है जो मोतियो के लिये प्रसिद्ध था। पेरिप्लस के समय में वह पाड्य देश का एक प्रसिद्ध वदरगाह था। पर ताम्रलिप्ती नदी द्वारा वदर

के भर जाने पर। बंदरगाह वहाँ से पाँच मील दूर हटकर कायल में पहुँच गया। माहेन्द्रक, कार्दमक, ह्रादीय स्रोतसीय का ठीक पता नहीं चलता। टीकाकार के अनुसार कार्दम ईरान और स्रोतसी बर्बर देश में नदियां और ह्रद बर्बर देश में दह था। इन सकेतों में जो भी तथ्य हो पर यहाँ टीकाकार का फारस की खाडी और बर्बर देश से मोती आने की ओर सकेत अवश्य है।

हिमालय तो सब रत्नों का घर माना ही जाता था। वराहमिहिर ८१।२ के अनुसार सिंहल, परलोक, सुराष्ट्र, ताम्रपर्णी, पार्श्ववास, कौबेरवाट, पाड्यवाट और हिमालय में मोती होते थे।

सिंहल—मनार की खाड़ी मोती के लिये प्रसिद्ध है। यह खाड़ी ६५ से १५० मील चौड़ी हिन्दमहासागर की एक बाहु है। मोती के सीप सिंहल के उत्तर पश्चिमी तट से सट कर तथा तूतीकोरिन के आसपास मिलते हैं। मोतियों के इस स्रोत का उल्लेख प्लिनी (६।५४-८), पेरिप्लस (३५,३६,५६,५६), मार्कोपोलो (दि बुक आफ सेर मार्कोपोलो, भा० २, पृ० २६७, २६८) फ्रायर जार्डेनस (मीराबिलिया डिसक्रिप्टा, हक्लूयेत सोसाइटी, १८६३, पृष्ठ ६३) लिनशोटेन (दि वोयज आफ लिनशोटेन, हक्लूयेत सोसाइटी, १८८४, भा० २ पृ० १३३-१३५) इत्यादि करते हैं।

परलोक—इसी को शायद ठक्कुर फेरू ने रामावलोक कहा है। इस प्रदेश का ठीक-ठीक पता नहीं चलता पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि मध्यकाल में अरब भौगोलिक पेगू को ब्रह्मादेश कहते हैं। बरमा के समुद्रतट से कुछ दूर मेगुई द्वीप समूह के समुद्र में अब भी मोती

मिलते हैं। रामा से पेगू की पहिचान की जा सकती है। यहाँ सलग लोग मोती निकालते हैं। सुराष्ट्र कच्छ के रनके दखिन में, नवानगर के समुद्र तट के आगे जोधावंदर के पास, मंगरा से कच्छ की खाडी में पिंडेरा तक आजाद, चोक, कलुंबार और नीरा के द्वीपों के आसपास भी मोती मिलते हैं (सी० एफ० कुज और सी० एच० स्टिवेन्सन, दि बुक आफ पर्ल, पृ० १३२, लंडन १६०८)।

ताम्रपर्णी—जैसा हम ऊपर कह आए हैं यहाँ ताम्रपर्णी से मनार की खाडी से मतलब है। ताम्रपर्णी नदी के मुहाने पर पहले कोरके बन्दरगाह पर, वाद में उसके भरजाने से उसके दक्खिन पांच मील पर, कायल बन्दरगाह हो गया।

पांड्यवाट—इससे शायद मथुरे का मतलब है जहाँ मोती का खूब व्यापार चलता था। शिलप्पदिकारम् (पृ० २०७) के अनुसार वहाँ के जौहरी वाज़ार में चन्द्रागुरु, अगारक और अणिमुत्तु किस्म के मोती विकते थे।

कौवेरवाट—इसका ठीक पता तो नहीं चलता पर सम्भव है कि यहाँ चोलों की सुप्रसिद्ध राजधानी क़ावेरीप्ट्टीनम् अथवा पुहार से मतलब हो। शिलप्पदिकारम् (पृ० ११०-१११) के अनुसार यहाँ मोती-साज रहते थे और बे ऐब मोती बिकते थे।

पारशववास—इससे फारस की खाड़ी से मतलब है। यहाँ मोती वहुत प्राचीन काल से मिलते हैं। इसका उल्लेख मेगास्थनीज, चेरक्स के इसिडोर, नियर्कस, तथा टाल्मी ने क़िया है। टाल्मी के अनुसार मोती के सीप टाइलोस द्वीप में (आधुनिक वहरैन) मिलते थे। पेरिप्लस

(३५) के अनुसार कलैई (मश्कत के उत्तर पश्चिम दैमानियत द्वीप समूह में कल्हातो) में मोती के सीप मिलते थे। नवी सदी में मासूदी ने उसका वर्णन किया है। पारी रैनो, 'मेमायर सुर लॅ द' १८५६। इब्नबतूता (गिब्स, इब्नबतूता) ने इसका उल्लेख किया है। वार्थेमा ने (दि ट्रावेल्स आफ लोदीविको वार्थिमा, पृ० ९५, लडन, १८६३) हुर्मुज की यात्रा में फारस की खाड़ी के मोतियों का वर्णन किया है। लिन्शोटन और तावर्निये ने भी हुरमुज, वसरा और वहरैन के मोती के व्यापार का आखों देखा वर्णन दिया है।

अगस्तिमत (१०६-१११) और मानसोल्लास (१, ४३४) के अनुसार सिंहल, आरवाटी वर्बर और पारसीक से मोती आते थे। सिंहल और फारस का तो हम वर्णन कर चुके हैं। आरवाटी से यहाँ अरव के दक्खिन—पूर्वी तट और वर्वर से लाल सागर से मिलनेवाले मोती के सीपों से तात्पर्य मालूम पड़ता है। अरव में अदन से मश्कत तक के बंदरों में मोती के गोताखोर मिलते हैं जो अपना व्यापार सोकोतरा के द्वीपों पूर्वी अफ्रीका और जंजीवार तक चलाते हैं। लाल सागर में अकावा की खाड़ी से वावेल मदेव तक मोती के सीप मिलते हैं (कुंज, वही, पृ० १४२)।

ठक्कुर फेरू के अनुसार (४६) मोती रामावलोइ, वब्बर, सिंहल कातार, पारस, कैसिय और समुद्रतट से आते थे। उपर्युक्त तालिका कुछ अश में रत्न शास्त्रों की तालिकाओं से भिन्न है। रामावलो जैसा हम पहले कह आए हैं, शायद मेरगुई के द्वीप समूह से पेंगू से मतलब हो। वब्बर से लाल सागर के अफ्रीकी तटसे

यहाँ बर्बर लोगों से तात्पर्य नील नदी और लाल सागर के बीच रहने-वाले दनाकिल तथा सोमाल और गल्लों से है। कान्तार से यहाँ रेगिस्तान से अभिप्राय है। महानिद्देस (ला पूसां द्वारा सम्पादित पृ० १५४-५५) में मरु कान्तार किसी प्रदेश का नाम है जो शायद बेरेनिके से सिकदरिया तक के मार्ग का द्योतक था। यह भी सभव है कि ठक्कुर फेरू का मतलब यहां कांतार से अरब के दक्खिन पूर्वी समुद्र तट से हो जहा के मोतियों के बारे में हम ऊपर कह आए हैं। अगर हमारा अनुमान ठीक है तो यहा कातार से अगस्तिमत के आवाटी और मानसोल्लास के आवाट से मतलब है। केसिय से यहा निश्चय इब्नबतूता (गिब्स, इब्नबतूता, पृ० १२१, पृ० ३५३) के बदर कैस से मतलब है जिसे उसने मूल से सीराफ के साथ में मिला दिया है। (वास्तव में यह बदर सीराफ से ७० मील दक्खिन में है। सीराफ (आनुधिक तहीरी के पास) पतन के बाद, १३ वीं सदी में उनका सारा व्यापार कैस चला आया। करीब १३०० के कैस का व्यापार हुरमुज उठ आया। कैस के गोताखोरों द्वारा मोती निकालने का आखों देखा वर्णन इब्नबतूता ने किया है। जैसे, बाद में चल कर और आज तक बसरा के मोती प्रसिद्ध हैं उसी तरह शायद चौदहवीं सदी में कैस के मोती प्रसिद्ध थे।

इब्नबतूता के शब्दों में—'हम खुंजुवाल से कैस शहर को गए। जिसे सीराफ भी कहते हैं। सीराफ के लोग भले घर के और ईरानी नस्ल के हैं। उसमें एक अरब कबीला मोतियों के लिए गोताखोरी का काम करता था। मोती के सीप सीराफ और बहरेन के बीच नदी की

तरह शांत समुद्र में होते हैं। अप्रेल और मई के महीनों में यहां फार्स, वहरेन और कतीफ के व्यापारियों और गोताखोरों से लदी नावें आती है।'

बुद्धभट्ट ने केवल सफेद मोतियों का वर्णन किया है। अगस्तिमत के अनुसार मोती महुअई (मधुर) पीले और सफेद होते हैं। मानसोल्लास में नीले मोती का भी उल्लेख है ; तथा रत्नसंग्रह में लाल मोती का। ठक्कुर फेरू ने भी प्रायः मोती के इन्हीं रंगों का वर्णन किया है।

रत्नशास्त्रों के अनुसार गोल, सफेद, निर्मल, स्वच्छ, स्निग्ध, और भारी मोती अच्छे होते हैं। अच्छे मोती के बारे में ठक्कुर फेरू (५१) का भी यही मत है।

रत्नशास्त्रों के अनुसार मोती के आकार दोष—अर्धरूप, तिकोनापन, कृशपार्श्व और त्रिवृत्त (तीनगांठ) ; वनावट के दोष—शुक्तिपार्श्व (सीप से लगाव) मत्स्याक्ष (मछली के आँख का दाग), विस्फोटपूर्ण (चिटक), वलुआहट (पंकपूर्ण शर्कर), रूखापन ; तथा रंग के दोष—पीलापन, गदलापन, कांस्यवर्ण, ताम्राभ और जठर माने गए हैं। मोती के प्रायः यही दोष ठक्कुर फेरू ने भी गिनाए हैं। इन दोषों से मोती का मूल्य काफी घट जाता था।

हम हीरे के प्रकरण में देख आए हैं कि ठक्कुर फेरू ने मोतियों के तौल और दाम का क्या हिसाव रखा था। प्राचीन रत्नशास्त्रों में इस सम्बन्ध में दो मत मिलते हैं—एक तो बुद्धभट्ट और वराहमिहिर का और दूसरा अगस्ति का। पहले सिद्धान्त में गुंजा अथवा

तौल है। माष पांच गुजों के बराबर होता था और शाण चार माष के। दाम रूपक अथवा कार्षापण में लगाया गया है। सबसे बडी तौल एक शाण मान ली गई है और कीमत ५३०० रूपक। तौल में हर एक माष बढने पर दाम दुगुना हो जाता था। दूसरे सिद्धान्त में तौल गुजा, मजली और कलंज में निर्धारित है। एक कलंज चालीस गुंजों के अथवा चौतीस मजली के बराबर माना गया है। गुजा की तौल करीब आधा केरेट तथा कलज करीब साड़े बाईस केरेट के है। मोती की भारी से भारी तौल दो कलज मानकर उनकी कीमत ११७११७३ (?) मानी गई है। तौल पर दाम किस आधार पर बढ़ता था, इसका विवरण ठीक तरह से समझ में नही आता।

सब रत्नशास्त्रों के अनुसार सिंहल में नकली मोती पारे के मेल से बनते थे। नकली मोती जाचने के लिए मोती, पानी तेल और नमक के घोल में एक रात रख दिया जाता था। दूसरे दिन उसे एक सफेद कपडे में धान की भूसी के साथ रगडते थे। ऐसा करने से नकली मोती का रग उतर जाता था पर असली मोती और भी चमकने लगता था।

मानिक—अनुश्रुति के अनुसार पद्मराग की उत्पत्ति असुरबल के रक्त से हुई। मानिक के नामों में पद्मराग, सौगधिक, कुरुविंद, माणिक्य, नीलगधि और मांसखंड मुख्य हैं। बुद्धभट्ट के कुरुविंदज, सुगधिकोत्थ, स्फटिक प्रसूत तथा वराहमिहिर के कुरुविंदभव, सौगधिभव तथा स्फटिक का शाब्दिक अर्थ जैसे गधक उत्पन्न, ईंगुर से उत्पन्न ; स्फटिक से उत्पन्न लिया जाय अथवा नहीं इसमें सन्देह है। यह नही कहा जा सकता कि रत्नपरीक्षाकार को जिससे दोनों शास्त्रकारों ने

मसाला लिया है गन्धक, ईंगुर और स्फटिक से मानिक की उत्पत्ति के किसी रासायनिक प्रक्रिया का ज्ञान था अथवा नहीं।

प्रायः सब शास्त्रों के अनुसार सबसे अच्छा मानिक लंका में रावण-गंगा नदी के किनारे मिलता था। कुछ हलके दर्जे के मानिक कलपुर, अंध्र तथा तुंवर में मिलते थे (बुद्धभट्ट, ११४ वराहमिहिर ८२।१ ; मानसोल्लास, १।४७३—७४) ठक्कुर फेरू (५५) के अनुसार मानिक सिंहल में रामागंगा नदी के तट पर, कलशपुर और तुंवर देश में मिलते थे।

रावणगंगा—ठक्कुर फेरू की रामागगा शायद रावणगगा ही है। यहा हम पाठकों का ध्यान इब्नबतूता की सिंहल यात्रा की ओर दिलाना चाहते हैं। अपनी यात्रा में वह कुनकार पहुँचा जहा मानिक मिलते थे (गिब्स, इब्नबतूता, पृ० २५६-५७) वह नगर एक नदी पर स्थित था जो दो पहाड़ों के बीच बहती थी। इब्नबतूता के अनुसार (मौलवी मुहम्मदहुसेन, शेख इब्नबतूता का सफरनामा। पृ० ३३८-३६ लाहौर १८६८) इस शहर में ब्राह्मण किस्म के मानिक मिलते थे। उनमें से कुछ तो नदी से निकलते थे और कुछ जमीन खोदकर। इब्नबतूता के वर्णन से यह भी पता चलता है कि याकूत शब्द का व्यवहार माणिक और नीलम तथा दूसरे रंगीन रत्नों के लिये भी होता था। सौ फनम से ऊची मालियत के पत्थर राजा स्वयं रख लेता था। मार्कोपोलो (यूल, दि बुक आफ सर मार्कोपोलो, २, १५४) ने भी सिंहल के मानिक और दूसरे कीमती पत्थरों का उल्लेख किया है। तावर्नियें (ट्रावेल्स, भा० २, पृ० १०१—१०२) के अनुसार भी मध्यसिंहल के पहाड़ी

इलाके की एक नदी से मानिक और दूसरे रत्न मिलते थे। बरसात में यह नदी बहुत बढ़ जाती थी। पानी कम हो जाने पर लोग इसमें मानिक इत्यादि की खोज करते थे।

उपर्युक्त उद्धरणों से रावणगंगा अथवा रामागंगा की वास्तविकता सिद्ध हो जाती है। सर ए० टेनेंट के अनुसार इब्नबतूता का कुनकार या कनकार गंपोला था जिसका दूसरा नाम गंगाश्रीपुर या गंगेली था। पर गिब्स के अनुसार कुनकार की पहचान कोर्नेगल्ले (कुरूनगल) से की जा सकती है जो इब्नबतूता के समय सिंहल के राजाओं की राजधानी थी। (गिब्स, इब्नबतूता, पृ० ३६५ नोट ६)

क (का) लपुर—कलशपुर—प्राचीन रत्नशास्त्रों में मानिक का एक प्राप्तिस्थान कलपुर दिया है। यह पाठ ठीक है अथवा नहीं यह तो कहना संभव नहीं, पर खोटे मानिक का वर्णन करते हुए बुद्धभट्ट (१२६—१३१) ने कलशपुर का उल्लेख किया है। अगर कलपुर (मानसोल्लास-कालपुर) पाठ ठीक है तो शायद उसका मिलान तामिल काव्य पट्टिन्नप्पाले के कालगम् से किया जा सकता है जिसे श्री नीलकंठशास्त्री कडारम् अथवा आधुनिक केदा मानते हैं (नीलकंठशास्त्री, हिस्ट्री आफ श्रीविजय, पृ० २६, मद्रास १९४६) पर केदा में मानिक कैसे पहुँचे यह प्रश्न विचारणीय है। संभव है कि स्याम और बर्मा के मानिक यहाँ बिकने के लिये पहुँचते हों और बाजार के नाम से ही उत्पत्तिस्थल का नाम पड़ गया हो। कलशपुर की पहचान लिगोर के इस्थमस पर स्थित कर्मरंग से श्री लेवी ने की है (वही, पृ० ८१)।

अगर यह पहचान ठीक है तो कलशपुर में शायद मानिक का व्यापार होता रहा होगा।

अंध्र—आन्ध्रदेश में मानिक मिलने का और दूसरा उल्लेख नहीं मिलता।

तुंबर—मार्कंडेय पुराण (पार्जिटर का अनुवाद, पृ० ३४३) के तुवर, जैसा श्री पार्जिटर का अनुमान है, शायद विंध्यपाद पर रहनेवाली एक जंगली जाति के लोग थे पर तुवर देश की स्थिति का ठीक पता नहीं चलता। विंध्य में मानिक मिलने का भी पता नहीं है।

रत्नशास्त्रों में मानिक के बहुत से रंग कहे गए हैं जिनमें चटकीला (पद्मराग) पीतरक्त (कुरुविन्द) और नीलरक्त (सौगंधिक) मुख्य है। प्राचीन रत्नशास्त्रों के अनुसार सब तरह के मानिक एक ही खान में मिलते थे। बुद्धभट्ट के अनुसार सिंहल की नदी रावणगंगा में चार रंग के मानिक मिलते थे पर मानसोल्लास (४७५-४७६) के अनुसार सिंहल का पद्मराग लाल, कालपुर का कुरुविन्द पीला, आंध्र का सौगंधिक अशोक के पल्लव के रंग का, तथा तुंबर का नीलगंधि नीले रङ्ग का होता था। पर खानों के अनुसार मानिक का रङ्गों के अनुसार वर्गीकरण कोरी कल्पना जान पड़ती है। अगस्तीय रत्नपरीक्षा (४७,५२) के अनुसार तो मानिक के वर्ण भी निश्चित कर दिये गए हैं। उस ग्रन्थ में पद्मराग ब्राह्मण, कुरुविंद क्षत्रिय, श्यामगंधि वैश्य और मांसखंड शूद्र माना गया है। ब्राह्मण वर्ण का मानिक सफेद और लाल मिश्रित, क्षत्रिय गहरा लाल, वैश्य पीला मिश्रित लाल और शूद्र काला मिश्रित लाल रङ्ग का होता था। यहाँ यह बात जानने लायक है कि यह विश्वास केवल

शास्त्रीय ही नहीं था इसका प्रसार लोगों में भी था। इब्नवतूता के अनुसार सिंहल के मानिक को ब्राह्मण कहते भी थे।

ठक्कुर फेरू के अनुसार (५७—६१) पद्मराग, सूर्य तपे सोने और अग्निवर्ण का; सौगन्धिक पलास के फूल, कोयल, सारस और चकोर की आँख के रंग जैसा तथा अनारदाने के रग का; नीलगन्ध कमल, आलता मूँगा और ईंगुर के रंग का; कुरविंद, पद्मराग और सौगन्धिक के रंग का; और जमुनिया जामुन और कनेर के फूल के रंग का होता था।

मानसोल्लास (४८५) के असुसार स्निग्ध छाया, गुरुत्व निर्मलता और अतिरक्तता मानिक के गुण माने गये हैं। अगस्तीय रत्नपरीक्षा के अनुसार (५३, ६०) वढ़िया, मानिक गहरे लाल रंग का, लोहे से न कटनेवाला, चिकना, मांसपिंड की आभा देने वाला, बुद्धिदायक तथा पापनाशक होता था।

मानिक के आठ दोष यथा—द्विच्छाय, द्विपद, भिन्न, कर्कर, लशुनपद, (दूध से पुते की तरह) कोमल, जड़ (रङ्गहीन और धूम्र (धुमैला) मानिक के दोष हैं (मानसोल्लास, ४७६—४८३)।

ठक्कुर फेरू के अनुसार (६२) मानिक के ये आठ गुण हैं यथा—सच्छाय, सुस्निग्ध, किरणाभ, कोमल, रगीलापन, गुरुता, समता और महत्ता। इसके दोष हैं (६३) गतछाय, जड़ धूम्रता, भिन्न लशुन कर्कर और कठिन, विपद तथा रूक्ष।

ठक्कुर फेरू के अनुसार मानिक की तौल और दाम के बारे में हम ऊपर कह आए हैं। वराहमिहिर के अनुसार एक पल (४ कार्ष) के मानिक का दाम २६०००, ३ कार्ष का २००००, २ कार्ष का १२०००,

१ कार्ष (१६ माषक) का ६०००, ८ माषक का ३०००, ४ माषक का १००० और २ माषक का ५०० है। बुद्धभट्ट (१४४) के अनुसार समान तौल के हीरे और मानिक का एक ही मूल्य होता है; पर हीरे की तौल तडुलों में और मानिक की तौल माषकों में होती है। अगस्तिमत के अनुसार मानिक का दाम बढ़ना तीन बातों पर अवलम्बित था। यथा—मानिक की किस्म, घनत्व (यवों में) तथा कांति (सर्षपों में) मानिक की साधारण कांति का मापदण्ड २० सर्षपों के उतार चढाव में निहित थी इसके लिये ऊर्ध्ववर्ति, पार्श्ववर्ति, अधोवर्ति ; अथवा ठक्कुर फेरू (६७) के ऊर्ध्वज्योतिस् पार्श्वज्योतिष और अधोज्योतिष शब्द व्यवहार में आए हैं। अगर काति २० सर्षपों से अधिक हुई तो उसे कातिरंग कहते थे और उसी अनुपात में उसका दाम बढ जाता था। घनत्व की इकाई ३ यव मानी गई है, इसमें हर वार इकाई बढ़ने पर मानिक का दाम दुगुना हो जाता था। अधिक से अधिक दाम २६१, ६१४,००० तक पहुँचता है।

ठक्कुर फेरू ने (६१) मानिक के किस्मों पर दाम का अनुपात निश्चित किया है। उसके अनुसार पद्मराग, सौगन्धिक, नीलगंध, कुरुविंद और जमुनिया के दामों में २०, १५, १०, ६ और ३ विस्वा मूल्य का अन्तर पड जाता था। ठक्कुर फेरू ने (६८) केवल उर्ध्ववर्ती, अधोवर्ती और तिर्यक्वर्ती मानिकों को उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणी का माना है बाकी को मिट्टी। सान पर चढाने से घिसनेवाली, तथा छूते ही दाग पडने वाली तथा हीर में पत्थरवाली चुन्नी को चिप्पटिका कहते थे (७०)।

ठक्कुर फेरू ने तो नकली मानिक वनाने की किसी विधि का उल्लेख नहीं किया है पर रत्नशास्त्रों में, जैसा हम ऊपर देख आए हैं, नकली मानिक वनाने की विधियां दी हुई हैं और यह भी वतलाया गया है कि नकली मानिक कैसे पहचाने जा सकते थे। वुद्धभट्ट (१२६-१३१) ने पाच तरह के नकली मानिक वताए हैं जो वनाए तो नहीं जाते थे पर वे साधारण उपरत्न थे जो मानिक से मिलते-जुलते थे और जिनसे मानिक का धोखा खाया जा सकता था। ये पत्थर कलशपुर, तुंवर, सिंहल, मुक्तामालीय और श्रीपूर्णक से आते थे। मुक्तामाल का पता नहीं चलता पर श्रीपूर्णक से शायद यहाँ सिंहल के श्रीपुर से मतलव हो।

नीलम—अनुश्रुति के अनुसार नीलम की उत्पत्ति असुरवल की आंखों से हुई। शास्त्रों के अनुसार नीलम की दो किस्में थीं इन्द्रनील और महानील ; पर इनके रगों के वारे में शास्त्रकारों के विभिन्न मत हैं। वुद्धभट्ट के अनुसार इन्द्रनील का रंग इन्द्रधनुष जैसा होता है और महानील का रग दूध में नीलापन ला देता है। पर दूसरे शास्त्रों के अनुसार यह इन्द्रनील का गुण है। ठक्कुर फेरू (८१) ने इन्द्रनील और महानील को मिलाकर नीलम का नामकरण महेन्द्रनील किया है।

वुद्धभट्ट के अनुसार नीलम केवल सिंहल से आता था। मानसोल्लास (४६२) के अनुसार नीलम सिंहल द्वीप के मध्य में रावणगगा नदी के किनारे पद्‌माकर से मिलता था। अगस्तिमत ने कलपुर और कलिंग के नाम भी जोड़ दिये हैं। उसके अनुसार कलपुर का नीलम गाय की आख के रग का और कलिंग का नीलम वाज की आंख के रग का होता था।

नीलम का दाम मानिक की तरह लगाया जाता था। ठक्कुर फेरू के समय में नीलम के दाम के बारे में हम ऊपर कह आए हैं।

पन्ना—(मरकत, तार्क्ष्य) की उत्पत्ति असुर बल के उस पित्त से मानी गई है जिसे गरुड़ ने पृथ्वी पर गिराया। प्राचीन रत्नशास्त्रों में पन्ने की खानों का वर्णन अस्पष्ट है। बुद्धभट्ट (१५०) के अनुसार जब गरुड़ ने असुर बल का पित्त गिराया तो वह वर्बरालय छोड़कर, रेगिस्तान के समीप, समुद्र के किनारे के पास एक पर्वत पर गिरकर मरकत बना गया। यह भी कहा गया है (१४६) की वहाँ तुरुष्क के के वृक्ष होते थे। अगस्तिमत (२८७) के अनुसार वह सुप्रसिद्ध पर्वत समुद्र के किनारे के पास तुरुष्कों के देश में स्थित था। अगस्तीय रत्नपरीक्षा (७५) के अनुसार पन्ने की दो खाणें थी एक तुरुष्क देश में और दूसरी मगध में। ठक्कुर फेरू ने (७३) मरकत के उत्पत्ति स्थान अवलिंद, मलयाचल, वर्बर देश और उदधितीर माने हैं।

मरकत के उपर्युक्त आकर की जाच पड़ताल से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रायः सब शास्त्रकार पन्ने की खान बर्बर देश के रेगिस्तान में, समुद्र तीर के निकट, मानते हैं। टालमी युग से लेकर मध्यकाल तक प्रायः सब विवरण मिस्र में विशेष कर लाल सागर के पास स्थित 'जर्बर' पर्वत की पन्ने की खान का उल्लेख करते हैं। इस खान का उल्लेख प्लिनी, कासमास इंडिको प्लायस्टस (करीब ५४५ ई०) मासूदी और नवी सदी दूसरे अरब यात्री करते हैं। अल ईद्रिसी के अनुसार मध्य नील पर अस्वान से कुछ दूर एक पर्वत के पाद पर पन्ने की खान है। यह खान शहर से वहुत दूर एक रेगिस्तान में है। इस पन्ने की खान

की, दुनिया की और कोई दूसरी खान मुकाबला नहीं कर सकती। अपने फायदे और निर्यात के लिए यहाँ काफी आदमी काम करते हैं (पी० ए० जोवर्त्त, अल इद्रिसी, १, पृ० ३६), यहाँ यह भी उल्लेखनीय बात है कि अस्वान से एक महीने की राह पर मरकता नामक एक शहर था जहाँ हब्श के लाल सागरवाले किनारे पर स्थित जलेग के व्यापारी रहते थे। यह संभव हो सकता है कि सस्कृत मरकत का नाम शायद इसी शहर से पडा हो पर संस्कृत मरकत की व्युत्पति यूनानी स्मरग्दोस से की जाती है। यह यूनानी शब्द असीरी बर्रक्तू, हिब्रू वारिकेत या वारकत, शामी बोर्को का रूपान्तर है। अरबी जुम्मुरुद शायद यूनानी से निकला हो (लाउफर, साइनो इरानिका, पृ० ५१६) लिंक्शोटेन (२, ५, १४०) के अनुसार भी भारत में वहुत कम पन्ने मिलते थे। यहाँ पन्ने की काफी मांग थी और वे मिस्र के काहिरा से आते थे।

अवलिंद—इस देश का नाम और कही नहीं मिलता। पर यहाँ हम पेरिप्लस (७) के अवलितेस की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं जिसकी पहचान बावेल मदेव के जल विभाजक से ७६ मील दूर जैला से की जाती है। खाडी के उत्तर में अवलित गाँव में प्राचीन अवलितेस का रूप वच गया है। वहुत सम्भव है कि अवलिंद भी इसी अवलितेस—अवलित का रूप हो। यहाँ पन्ना तो नही मिलता पर सम्भव है कि जैला के व्यापारी मिस्री पन्ना इस देश में लाते रहे हों और उसी आधार पर अवलिंद—अवलित पन्ने का एक स्रोत मान लिया गया हो।

मलयाचल—यह दक्षिण भारत का मलयाचल तो हो नहीं सकता।

शायद ठक्कुर फेरू का उद्देश्य यहाँ गेबेल जर्बर से हो जहाँ बुद्धभट्ट के अनुसार तुरुष्क यानी गुगुल होता था। बर्बर और उदधि तीर का संकेत भी लाल सागर की ओर इशारा करता है।

मगध—अगस्तीय रत्नपीक्षा में, मगध में भी पन्ने की खान मानी गई है। मालेट (रेकार्डस् आफ दि जियालोजिकल सर्वे ऑफ़ इण्डिया भा० ७ पृ० ४३) के अनुसार बिहार के हजारीबाग जिले में पन्ने की एक खान थी।

रत्नशास्त्रों में पन्ने की चार से आठ छाया मानी गई है। अगस्तिमत के अनुसार महामरकत में अपने पास की वस्तुओं को रंगीन कर देने की शक्ति होती थी। मरकत सहज और श्यामलिक रंग के होते थे। सहज का रंग सेवार जैसा और दूसरे का शुकपंख, शिरीष पुष्प और तूतीया जैसा होता था।

रत्नशास्त्रों में पन्ने के पाच गुण यथा—स्वच्छ, गुरु, सुवर्ण स्निग्ध और अरजस्क (धूलिरहित) है। ठक्कुर फेरू के अनुसार (७६) अच्छी छाया, सुलक्षणता, अनेकरूपता, लघुता और वर्णाढ्यता पन्ने के पांच गुण हैं।

रत्नशास्त्रों के अनुसार शबलता, जठरता (कांतिहीनता) मलिनता, रूक्षता, सपाषाणता, कर्करता और विस्फोट पन्ने के दोष हैं। ये ही दोष ठक्कुर फेरू ने गिनाए हैं। केवल शबलता की जगह सरजस्कता आ गई है।

बुद्धभट्ट के अनुसार नकली पन्ना शीशा, पुत्रिका और मल्लातक से बनता था। इसके बनाने में मंजीठ, नील और ईंगुर भी उपयोग में लाए जाते थे।

उपरत्न

रत्नशास्त्रों में उपरत्नों का बडी सरसरी तौर पर उल्लेख हुआ है। पांच महारत्नों के विपरीत ठक्कुर फेरू ने विद्रुम, मूंगा, लहसनिया, वैडूर्य, स्फटिक, पुखराज, कर्केतन और भीष्म का उल्लेख किया है।

विद्रुम—अर्थशास्त्र (अंग्रेजी अनुवाद, पृ० ७६) के अनुसार मूंगा आलकद और विवर्ण से आता था। यहाँ आलकन्द से मिस्र के सिकंदरिया के बन्दरगाह से मतलब है। टीका के अनुसार विवर्णसे यवन द्वीप के पास का समुद्र है। अगर यह ठीक है तो यहाँ विवर्णसे भूमध्य सागर से तात्पर्य होना चाहिये। बुद्धभट्ट (२४६-२५२) के अनुसार मूंगा शकंवल, सम्लासक, देवक और रामक से आते थे। यहाँ रामक से शायद रोम का मतलब हो सकता है। अगस्तिमत के एक क्षेपक (१०) में कहा गया है कि हेमकन्द पर्वत की एक खारी झील में मूगा पाया जाता था। ठक्कुर फेरू के अनुसार (६०) मूंगा कावेर, विन्ध्याचल, चीन, महाचीन, समुद्र और नेपाल में पैदा होता था।

पेरिप्लस (२८, ३६, ४६, ५६) के अनुसार भूमध्य सागर का लाल मूगा बारबारिकम, बेरिगाजा (भरुकच्छ) और मुजिरिस के बन्दरगाहों में आता था। प्लिनी (२२।११) के अनुसार मूंगे का भारत में अच्छा दाम था। आज की तरह उस समय भी मूंगा सिसली, कोर्सिका और सार्डीनिया, नेपल्स के पास लेगहार्न और जेनेवा, कारालोनिया, बलेरिक द्वीप तथा ट्यूनिस अलजीरिया और मोरक्को के समुद्रतट पर मिलता था। लाल सागर और अरब के समुद्रतट के मूंगे काले होते थे।

अगस्तिमत के हेलकन्द पर्वत के पास एक खारी झील में मूंगा मिलने के उल्लेख से भी, शायद लाल सागर अथवा फारस की खाडी के मूगों से मतलब हो सकता है। श्री लाउफर के अनुसार (साइनो ईरानिका, पृ० ५२४–२५) चीनी ग्रन्थों मे ईरान में मूगा पैदा होने के उल्लेख हैं। सुकुन के अनुसार मूँगा फारस, सिंहल और चीन के दक्षिण समुद्र से आता था। ताग इतिवृत्त से पता चलता है कि फारस की प्रवाल शिलाएं तीन फुट से ऊची नहीं होती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि फारस के मूंगे एशिया में सब जगह पहुँचते थे। काश्मीर के मूगे का वर्णन जो एक चीनी इतिहासकार ने किया है, वह फारसी मूङ्गा ही रहा होगा। मार्कोपोलो (भा० २, पृ० ३२) के अनुसार तिब्बत में मूंगे की बड़ी माँग थी और उसका काफी दाम होता था मूंगे स्त्रियाँ गले में पहनती थीं अथवा मूर्तियो में जड़े जाते थे। काश्मीर में मूगे इटली से पहुँचते थे और वहाँ उनकी काफी खपत थी (मार्कोपोलो, १, पृ० १५६)। तावर्निये (भा० २, पृ० १३६) के अनुसार आसाम और भूटान में मूंगे की काफी मांग थी।

कावेर—यहाँ दक्षिण के कावेरी पट्टीनम् के वन्दरगाह से मतलब हो सकता है। शायद यहाँ मूगा वाहर से उतरता हो। विंध्याचल में मूगा मिलना कोरी कल्पना मालूम पड़ती है।

चीन, महाचीन—लगता है चीन और महाचीन से यहाँ क्रमशः चीन देश और कैंटन से मतलव हो। सम्भव है चीनी व्यापारी इस देश में वाहर से मूगा लाते हों।

समुद्र—इससे भूमध्य सागर, फारस की खाड़ी और लाल सागर के मूगों से मतलव मालूम पड़ता है।

नेपाल—जैसा हम ऊपर देख आए हैं तिब्बत और काश्मीर की तरह नेपाल में भी मूंगे की बड़ी मांग थी। हो सकता है कि नेपाली व्यापारियों द्वारा मूंगा लाये जाने पर नेपाल उसका एक उत्पत्ति स्थान मान लिया गया हो।

लहसनिया—नीले, पीले, लाल और सफेद रंग की लहसनिया ठक्कुर फेरू (६२—६३) के अनुसार सिंहल द्वीप से आती थी। इसे विडालाक्ष अथवा बिल्ली के आँख जैसी रंगवाली भी कहा गया है। उसमें सूत पडने से उसे कोई कोई पुलकित भी कहते थे।

वैडूर्य—सर्व श्री गार्वे, सौरीन्द्र मोहन ठाकुर और फिनो की राय है कि वैडूर्य का वर्णन लहसनिया से बहुत कुछ मिलता है। बुद्धभट्ट (२००) ने भी वैडूर्य को बिल्ली की आँख के शक्ल का कहा है।

पाणिनि ४।३।८४ के अनुसार वैदूर्य (वैडूर्य) का नाम स्थान वाचक है। पतंजलि के अनुसार विदूर में य प्रत्यय लगाकर उसे स्थान वाचक मानना ठीक नही, क्योंकि वैदूर्य विदूर में नही होता, वह तो वालवाय में होता है और विदूर में कमाया जाता है। पर शायद वाल-वाय शब्द विदूर में परिणत हो गया हो और इसीलिये उसमें य प्रत्यय लग गया हो। इसके माने यह हुए कि विदूर शब्द वालवाय का एक दूसरा रूप है। इस पर एक मत है कि विदूर वालवाय नहीं हो सकता, दूसरा मत है कि जिस तरह व्यापारी वाराणसी को जित्वरी कहते थे उसी तरह वैय्याकरण वालवाय को विदूर।

उपर्युक्त कथन से यह बात साफ हो जाती है कि वैडूर्य वालवाय पर्वत में मिलता था और विदूर में कमाया और बेचा जाता था। यह

पर्वत दक्षिण भारत में था। बुद्धभट्ट (१९६) के अनुसार विदूर पर्वत दो राज्यों की सीमा पर स्थित था। पहला देश कोंग है जिसकी पहचान आधुनिक सेलम, कोयंबटूर, तिन्नेवेली और ट्रावन्कोर के कुछ भाग से की जाती है। दूसरे देश का नाम बालिक, चारिक या तोलक आता है, जिसे श्री फिनो चोलक मानते हैं जिसकी पहचान चोलमण्डल से की जा सकती है। इसी आधार पर श्री फिनो ने वालवाय की पहचान चीवरै पर्वत से की है। यह बात उल्लेखनीय है कि सेलम जिले में स्फटिक और कोरड बहुतायत से मिलते हैं।

ठक्कुर फेरू (६४) का कुवियग कोंग का विगडा रूप है। समुद्र का उल्लेख कोरी कल्पना है। ठक्कुर फेरू ने लहसनिया और वैडूर्य अलग अलग रत्न माने हैं। सम्भव है कि देशभेद से एक ही रत्न के दो नाम पड गये हों।

स्फटिक

प्राचीन रत्नशास्त्रों के अनुसार स्फटिक के दो भेद यानी सूर्यकात और चन्द्रकांत माने गए हैं। ठक्कुर फेरू (६६) ने भी यही माना है पर अगस्तिमत के क्षेपक में स्फटिक के भेदों में जलकात और हसगर्भ भी माने गए हैं। पृथ्वीचन्द्र चरित्र (पृ० ६५) में भी जलकात और हस गर्भ का उल्लेख है। सूर्यकात से आग, चन्द्रकात से अमृतवर्षा, जलकात से पानी निकलना तथा हंसगर्भ से विष का नाश माना जाता था।

बुद्धभट्ट के अनुसार स्फटिक कावेरी नदी, विंध्यपर्वत, यवन देश, चीन और नेपाल में होता था। मानसोल्लास के अनुसार ये स्थान लंका ताती नदी, विंध्याचल और हिमालय थे। ठक्कुर फेरू के अनुसार

नेपाल, कश्मीर, चीन, कावेरी नदी, जमुना और विंध्याचल से स्फटिक आता था।

पुखराज

पुखराज की उत्पत्ति असुर वल के चमड़े से मानी गई है। इसका दाम लहसनिया जैसा होता था। बुद्धभट्ट के अनुसार पुखराज हिमालय में, अगस्तिमत के अनुसार सिंहल और कलहस्थ (?) में तथा रत्नसंग्रह के अनुसार सिंहल और कर्क में होता था। ठक्कुर फेरू ने हिमालय को ही पुखराज का उद्गम स्थान माना है पर यह बात प्रसिद्ध है कि सिंहल अपने पीले पुखराज के लिये प्रसिद्ध है।

कर्कोतन—कर्कोतन के उत्पत्ति स्थान का किसी रत्नशास्त्र में उल्लेख नहीं है। पर ठक्कुर फेरू ने पवणुप्पट्ठान देश में इसकी उत्पत्ति कही है। यहाँ शायद दो जगहों से मतलब है पवण और उप्पट्ठान। पवण से सभव है शायद अफगानिस्तान में गजनी के पास पर्वान से मतलब हो और उप्पट्ठान से परि-अफगानिस्तान से। अगर हमारी पहचान ठीक है तो यहाँ पर्वान से शायद वहाँ कर्कोतन के व्यापार से मतलब हो। उप-ट्ठान से रूस में उराल पर्वत में एकाटेरिन वर्ग और टाकोवाजा की कर्कोतन की खानों से मतलब हो (जी० एफ०, हर्बर्ट स्मिथ, जेम स्टोन्स, पृ० २३६, लंडन १९२३)। यह भी संभव है कि उपपट्ठान में पट्टन शब्द छिपा हो। इब्नबतूता ने (२६३-६४) फट्टन को चोल मंडल का एक वड़ा बंदर माना है पर इस बंदर की ठीक पहचान नहीं हो सकती। संभव है कि इससे कावेरी पट्टीनम् अथवा नागपट्टीनम् का

वोध होता हो। अगर यह पह्चान ठीक है तो शायद सिंहल का कर्केतन यहाँ आता हो।

ठक्कुर फेरू के अनुसार इसका रंग तावे अथवा पके हुए महुए की तरह अथवा नीलाभ होता था।

भीष्म—ठक्कुर फेरू ने भीष्म का उत्पत्ति स्थान हिमालय माना है। यह रग में सफेद तथा विजली और आग से रक्षा करनेवाला माना गया है।

गोमेद—रत्नशास्त्रों में इसका विवरण कम आया है। अगस्तिमत के क्षेपक में (४-५) गोमेद को स्वच्छ, गुरु, स्निग्ध और गोमूत्र के रग का कहा गया है। अगस्तीय रत्नपरीक्षा (८३-८६) मे गोमेद को गाय के मेद अथवा गोमूत्र के रंग का कहा गया है। उसका रग धवल और पिंजर भी होता था। ठक्कुर फेरू (१००) ने इसका रंग गहरा लाल, सफेद और पीला माना है।

और किसी रत्नशास्त्र में गोमेद के उत्पत्तिस्थान का पता नहीं चलता। पर ठक्कुर फेरू ने इसका स्रोत, सिरिनायकुलपरेवग देस तथा नर्मदा नदी माना है। सिरिनायकुलपरे में कौन सा नाम छिपा हुआ है यह तो ठीक नही कहा जा सकता पर गोलकुंडा से मसुलीपटन के रास्ते में पुंगल के आगे नगुलपाद पडता था जिसे तावर्नियें ने नगेलपर कहा है (तावर्नियें, १, पृ० १७३) समव है कि नायकुलपर यही स्थान हो। वग देस से शायद वगाल का वोध हो सकता है, वहुत संभव है कि १४ वीं सदी में सिंहल से गोमेद वहाँ जाता रहा हो।

पारसी रत्न

ठक्कुर फेरू ने (१०३) लाल, अकीक और पिरोजा को पारसी रत्न माना है। इसका यह अर्थ हुआ कि ये रत्न या तो फारस में होते थे अथवा उनका व्यापार फारस और अरब के व्यापारी करते थे।

लाल—आग की तरह लाल—यह रत्न बदखसाण देश यानी बदख्शां से आता था। मार्कोपोलो (भा० १, पृ० १४६-५०) के अनुसार बदख्शा के बलास मानिक प्रसिद्ध थे। वे सिग्नान के एक पहाड से खोद कर निकाले जाते थे और उन पर वहाँ के शासक का पूरा अधिकार होता था। लाल की खानें वक्षु नदी के दाहिने किनारे पर इशकाशम जिले में शिगनान के सीमा पर स्थित हैं (वुड, ए जर्नी टु आक्शस, भूमिका पृ० ३३)

अकीक—ठक्कुर फेरू ने इसे पीले रंग का कहा है और इसकी उत्पत्ति जमण देश यानी अरब में यमन देश माना है। यमन देश के अकीक का उल्लेख इब्नबैतर (११९७-१२४८) ने किया है (फेरां, तेक्सत् रेलातीफ अ ल एक्सत्रेम ओरियाँ, १, पृ० २५६) और इसे कई बीमारियों की ओषधि मानी है। आज दिन भी यमनी अकीक बंबई में प्रसिद्ध है। इसका दाम ठक्कुर फेरू के अनुसार बहुत कम होता था।

फिरोजा—ठक्कुर फेरू के अनुसार नीलाम्ल रंग का फिरोजा नीसावर और मुवासीर की खानों से आता था। निसावर से यहाँ फारस के निशापुर से मतलब है। तावर्नियें (२, पृ० १०३-०४) के अनुसार फिरोजा फारस में दो खानों से पाया जाता था। पुरानी खान मशद से तीन दिन के रास्ते पर निशापुर के आसपास थी और नई

मशद् से पाँच दिन के रास्ते पर थी। मुवासीर से यहाँ ईराक के मोसुल या अलमौसिल्ल से वोध होता है। लगता है फारसी फिरोजा यहाँ व्यापार के लिये आता था। आज दिन भी मोसुल में फिरोजे का व्यापार होता है।

लाल, लहसनिया, इन्द्रनील और फिरोज़े का दाम ठक्कुर फेरू के अनुसार तौल से सोने के टांकों में होता था। निम्नलिखित यंत्र से यह वात साफ हो जाती है :—

मासा	०॥	१	१॥	२	२॥	३	३॥	४
लाल	१	२॥	६	९	१५	२४	३४	५०
लहसणी	०॥।	१॥। —२॥	४॥	६॥।	११।	१८	२५॥	३७॥
इन्द्रनील	०।	०॥	०॥।	१	२	५	८	१५
पेरोजा	०।	०॥	०॥।	१	२	५	८	१५

उपर्युक्त यंत्र के अध्ययन से पता चल जाता है कि लाल इत्यादि की कीमत दूसरे महारत्नों के मुकाबिले में काफी कम थी।

उपसंहार

प्राचीन रत्नशास्त्रों के आधार पर हमने ऊपर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि रत्नशास्त्र प्राचीन भारत में एक विज्ञान माना जाता था। उस विज्ञान में वहुत सी बातें तो अनुश्रुति पर अवलंबित थी पर इसमें संदेह नही की समय समय पर रत्नशास्त्रों के लेखक अपने अनुभवों का भी संकलन कर देते थे। ठक्कुर फेरू ने भी अपनी 'रत्नपरीक्षा' में प्राचीन ग्रंथों का सहारा लेते हुए भी चौदहवीं सदी के रत्न व्यवसाय पर काफी प्रकाश डाला है। ठक्कुर फेरू के ग्रन्थ की

रत्नों की वैज्ञानिक उपादेयता और परिचय

[पद्मभूषण पं० श्री सूर्यनारायण व्यास]

विज्ञान की मान्यता है कि प्रत्येक वस्तु आदोलितावस्था में रहती है। उन आदोलनों की गति-विधि के अनुसार समस्त जड-चेतन्यों पर न्यूनाधिक रूप मे प्रभाव पड़ता रहता है। उसी प्रकार आकाश-सचारी ज्योतिष्पिण्डों का भू-तल सचारियों पर भी क्रम से परिणाम होता है। सब से अधिक प्रभाव हम पर सूर्य का होता है। यद्यपि आदोलितावस्था के कारण चद्र का भी कम नही होता, सामुद्रिक ज्वार-भाटे और वनोषधियों की सरस-नोरसता पर उसका परिणाम सहज दिखाई पड़ता है। जितने स-दुग्ध-स्निग्ध वृक्ष होते हैं, वे चद्र-प्रभा को पाकर ही दुग्ध स्रावित करते हैं, ज्यों-ज्यों सूर्य का तापमान बढता जाता है, वह स्निग्धता शुष्क होती जाती है, और यथाक्रम उस रसकी शुभ्रता रक्तिम रूप में परिणत होती जाती है। यह तो प्रभावशाली ज्योतिर्मय ग्रहों का प्रभाव है, परन्तु अनेक छोटे ग्रह-नक्षत्र आदि भी हैं, जो अपने तीव्र प्रभाव का परिणाम स्थलज पदार्थों, वस्तु-जातों पर छोडे विना नहीं रहते। मानव ही नहीं,—प्रत्येक स्थलज-पदार्थों-वस्तुओं पर, अपनी स्थिति—तत्वानुरूप सोर साम्राज्य का प्रभाव पडता ही है।

एक पत्थर,—धातु या रत्न, जिस ग्रह-नक्षत्र के प्रभाव में वह पोषित है, उसी ग्रह या तदीय किरणादोलित प्रभाव में उत्पन्न मानव से उसका

सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर वह प्रभावक हो जाता है। उदाहरणार्थ कोई मानव कृष्णपक्ष के क्षीण चन्द्र में उत्पन्न हुआ है, और उसे चन्द्र किरणों की शारीरिक सरसता के लिए जितनी आवश्यकता थी, प्राप्त नहीं हुई है। तो वह मनस्तत्व से सम्बन्धित स्नायु पर बुरा प्रभाव उत्पन्न करने वाली सिद्ध होगी, फलतः जो मोती केवल चन्द्र-प्रभाव से ही सागर तल में जन्म लेता है, उस चन्द्रप्रभावहीन शरीर के साथ जुडा दिया जाए तो तदीय स्नायविक निर्वलता को यथाशक्ति प्रभावित करता रहेगा, और उस निर्वलता-जन्य विषमता पर वह प्रतिवन्ध करता रहेगा। चांदी-कला की क्षीण-मात्रा के उपलब्ध होने से शारीरिक अन्य धातुएँ विशेष प्रभावित हो जाती है, और विषमता ला देती है, किन्तु उसी तत्व के रत्न या पदार्थ की सह-योजना से वह निर्वलता कम भी हो जाती है, स्वाभाविक है कि चन्द्र की शीतलता के कम उपलब्ध होने से सूर्य तथा अन्य ग्रहों की तात्विक उष्णता विशेष होगी, और उसका आयुर्वेदिक उपचार मौक्तिक-भस्म हो सकता है, जो अन्दर से उसी धातु को प्रभावित करेगा, तो मोती का,—रत्न-रूप में-तन्मात्रा में धारण कर लेना भी अन्य तत्व-कृत विषम-प्रभाव को रोकेगा।

आकर्पण के नियमानुसार मानव-शरीर में जो धातु विकृत हो, उस धातु के स्थायित्व, और व्यवस्थित करने के लिए जिन रत्नों का प्रभाव उपयोगी हो सकता है, वे योजित किए जाने चाहिए। वेही वनोपधियाँ, वही धातु—जो उस तत्व की पोपिका है, उपचार में भी योजित की जाती है। आयुर्वेद का नियम भी तो यही है, एक प्रकार का ही विकार, विभिन्न-प्रकृति के शरीर में विविध-उपचार का कारण वन जाता है।

वह केवल इसीलिए कि जिन तत्व प्रभावों में शरीर निर्माण होता है, उनके अनुकूल प्रकृति की वस्तुएँ ही उपयोगिता दे सकती हैं, उसी प्रकार की शक्ति या प्रभाव रखने वाले रत्न भी उपयोगिता रखते हैं।

जिस प्रकार शरीर की नाड़ी की गति-विधि जानकर विकार-विज्ञान किया जा सकता है, उसी प्रकार सफल ज्योतिर्विज्ञानज्ञ भी ग्रहों की गति-विधि प्रभाव को जानकर चिकित्सा में सफलता प्राप्त कर सकता है। ग्रहों का बिगडना शरीर-गत उससे प्रभावित-धातु, या तत्व का विकार सूचित करता है, उसी के अनुसार उन विकृत-तत्वों पर प्रभावक, या पूरक-रत्नों, या उपायों की योजना की जाए तो लाभ भी मिल सकता है। और आराम की मर्यादा भी ज्ञात हो सकती है, जीवन भर के लिए सर्वथा विकृत-तत्वों के लिए प्रभावोत्पादक रत्नों, और उपचारों की भी योजना ज्ञात हो सकती है। अतएव जीवन में इस विज्ञान की कितनी आवश्यकता, एवं उपयोगिता है, यह स्पष्ट ज्ञात होती है। किन्तु इस विज्ञान के गाम्भीर्यावगाहन की क्षमता प्रथम अपेक्षित है। यद्यपि खनिज-पदार्थों में मूल्यवान्-मणियों का स्थान, उनके रचना सौष्टव, प्राचीनता, और प्रभाव पर स्थिर किया जाता है। और वैज्ञानिक मान्यता है कि, जिस समय पृथ्वी कम अंश में प्रवाही अवस्था में थी, तब ऑक्सिजन और पानी के साथ कुछ धातुएँ आक्साईड के संसर्ग में आकर रासायनिक-क्रिया से पत्थर में परिणत हो गईं। परन्तु सुप्रसिद्ध विद्वान् 'प्लूटो' का कहना है कि—"कीमती पत्थर, और रत्नों का उद्‌गम 'ग्रहों' से है। और विशेष प्रकार के आन्दोलन से उन पर ग्रहों का प्रभाव पड़ता रहता है।" हीरा-नीलम-वैदूर्य आदि रत्नों के प्रभाव के

विषय में अनेक भले-बुरे प्रभाव डालने वाली किम्वदन्तियाँ जगविश्रुत है। कोहिनूर की कहानियों से तो अनेक पृष्ठ भरे हुए हैं, जौहरी तक अनेक रत्नों के प्रभाव के विषय में सतर्क अपने ग्राहक को अनुभव के पश्चात् स्वीकार करने की अनुमति देते हैं, नीलम शनि का रत्न माना जाता है। शनि के नाम से वैसे ही अनेक भय-भावनाएँ भावुकों में ही नहीं; समझदारों के वर्ग में भी विस्तृत है, फिर 'नीलम' तो शनि-प्रभाव का केन्द्रित-रूप माना जाता है, जिस रत्न-या-धातु में उनके प्रभाव का केन्द्रीकरण हो जाए, वह सावधानी—और सशय की वस्तु हो जाना स्वाभाविक भी है। शनि के इस रत्न का असर शरीर में अस्थि-क्षय, स्नायुक्षीणता, लीव्हर की खराबी, सग्रहणी आदि उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। उग्र-ग्रहों के रत्नों का विषम प्रभाव यदि अना-वश्यक, और प्रकृति-विपरीत धारण किए जाएँ तो सहज सम्भव हो जाता है। इनके प्रयोग भी जौहरी तक बहुत सावधानी से करने देते हैं, फिर ज्योतिर्विज्ञान-सम्मत प्रयोग तो विशेष परीक्षण के पश्चात् ही सम्भव हो सकता है। गगनगामी-ग्रहों के जिन तत्वों के प्रभाव से जो रत्न विशेष प्रभावित हैं, उनका प्रयोग उस ग्रह के तत्व के अभाव में उत्पन्न मानव पर सावधानी पूर्वक किया जाए तो, उस धातु, या तत्व को वह पोषित करता है, और उपयोगी प्रमाणित हो जाता है। उस कमजोरी, अथवा विकृति को शमन भी कर देता है। रत्नों का उपयोग केवल शरीर को सजाने, अलकृत करने तक ही सीमित नहीं है। वह सर्वथा विज्ञान संगत है, बशर्ते विचार पूर्वक प्रयुक्त हो। प्राय. रत्नों का पारस्परिक प्रभाव नाशी-सामर्थ्य, या विकारोत्पादिनी-शक्ति के अज्ञान-

वह केवल इसीलिए कि जिन तत्व प्रभावों में शरीर निर्माण होता है, उनके अनुकूल प्रकृति की वस्तुएँ ही उपयोगिता दे सकती हैं, उसी प्रकार की शक्ति या प्रभाव रखने वाले रत्न भी उपयोगिता रखते हैं।

जिस प्रकार शरीर की नाड़ी की गति-विधि जानकर विकार-विज्ञान किया जा सकता है, उसी प्रकार सफल ज्योतिर्विज्ञानज्ञ भी ग्रहों की गति-विधि प्रभाव को जानकर चिकित्सा में सफलता प्राप्त कर सकता है। ग्रहों का बिगडना शरीर-गत उससे प्रभावित-धातु, या तत्व का विकार सूचित करता है, उसी के अनुसार उन विकृत-तत्वो पर प्रभावक, या पूरक-रत्नों, या उपायों की योजना की जाए तो लाभ भी मिल सकता है। और आराम की मर्यादा भी ज्ञात हो सकती है, जीवन भर के लिए सर्वथा विकृत-तत्वों के लिए प्रभावोत्पादक रत्नों, और उपचारों की भी योजना ज्ञात हो सकती है। अतएव जीवन में इस विज्ञान की कितनी आवश्यकता, एव उपयोगिता है, यह स्पष्ट ज्ञात होती है। किन्तु इस विज्ञान के गाम्भीर्यावगाहन की क्षमता प्रथम अपेक्षित है। यद्यपि खनिज-पदार्थों में मूल्यवान्-मणियों का स्थान, उनके रचना सोष्टव, प्राचीनता, और प्रभाव पर स्थिर किया जाता है। और वैज्ञानिक मान्यता है कि, जिस समय पृथ्वी कम अश में प्रवाही अवस्था में थी, तब ऑक्सिजन और पानी के साथ कुछ धातुएँ आक्साईड के ससर्ग में आकर रासायनिक-क्रिया से पत्थर में परिणत हो गई। परन्तु सुप्रसिद्ध विद्वान् 'प्लुटो' का कहना है कि—"कीमती पत्थर, और रत्नों का उद्गम 'ग्रहों' से है। और विशेष प्रकार के आन्दोलन से उन पर ग्रहों का प्रभाव पड़ता रहता है।" हीरा-नीलम-वैदूर्य आदि रत्नों के प्रभाव के

विषय में अनेक भले-बुरे प्रभाव डालने वाली किम्वदन्तियाँ जगविश्रुत है। कोहिनूर की कहानियों से तो अनेक पृष्ठ भरे हुए हैं, जौहरी तक अनेक रत्नों के प्रभाव के विषय में सतर्क अपने ग्राहक को अनुभव के पश्चात् स्वीकार करने की अनुमति देते हैं, नीलम शनि का रत्न माना जाता है। शनि के नाम से वैसे ही अनेक भय-भावनाएँ भावुको में ही नहीं; समझदारों के वर्ग में भी विस्तृत है, फिर 'नीलम' तो शनि-प्रभाव का केन्द्रित-रूप माना जाता है, जिस रत्न-या-धातु में उनके प्रभाव का केन्द्रीकरण हो जाए, वह सावधानी—और सशय की वस्तु हो जाना स्वाभाविक भी है। शनि के इस रत्न का असर शरीर में अस्थि-त्तय, स्नायुत्तीणता, लीव्हर की खराबी, सग्रहणी आदि उत्पन्न करने की त्तमता रखता है। उग्र-ग्रहों के रत्नों का विषम प्रभाव यदि अनावश्यक, और प्रकृति-विपरीत धारण किए जाएँ तो सहज सम्भव हो जाता है। इनके प्रयोग भी जौहरी तक बहुत सावधानी से करने देते हैं, फिर ज्योतिर्विज्ञान-सम्मत प्रयोग तो विशेष परीत्तण के पश्चात् ही सम्भव हो सकता है। गगनगामी-ग्रहों के जिन तत्वों के प्रभाव से जो रत्न विशेष प्रभावित हैं, उनका प्रयोग उस ग्रह के तत्व के अभाव में उत्पन्न मानव पर सावधानी पूर्वक किया जाए तो, उस धातु, या तत्व को वह पोपित करता है, और उपयोगी प्रमाणित हो जाता है। उस कमजोरी, अथवा विकृति को शमन भी कर देता है। रत्नों का उपयोग केवल शरीर को सजाने, अलकृत करने तक ही सीमित नहीं है। वह सर्वथा विज्ञान-सगत है, बशर्ते विचार पूर्वक प्रयुक्त हो। प्रायः रत्नों का पारस्परिक प्रभाव-नाशी-सामर्थ्य, या विकारोत्पादिनी-शक्ति के अज्ञान-

वश प्रयोग कर लिया जाता है, और शरीर पर वह घातक परिणाम भी करता ही रहता है। प्रभावशाली-माणिक्य के साथ यदि शुक्र का रत्न-हीरा जुड़ा रहे, तो क्षण-भर वह लाल रंग सफेदी के साथ नयनाकर्षन का विषय भले ही बन जाए, परन्तु परिणाम में वह 'क्षय' जैसे विकार को पनपाता रहता है, जो वाह्य-उपचारों की परम्परा के रहते हुए भी परिणाम-प्रद नहीं होने देता, इसी प्रकार पन्ने के साथ मोती, या नीलम के साथ माणक, या मोती पन्ना-या पुखराज के संग लहसूनिया आदि परस्पर विरोधी प्रभावकारी रत्नों का संयोग विभिन्न-विकारों का जनक हो जाता है। उन पर कोई उपचार लाभ नही देते। वल्कि वे शरीर की तत्सम्बन्धित-धातु, या-तत्वों को यथाक्रम नष्ट करते ही जाते हैं। रत्नों को सरलता पूर्वक उपयोग कर सकने वाले परिवारों में ही, प्रायः अज्ञान-वश, विपरीत प्रयोग-जन्य विकार,—यथा क्षय, अपचन, रक्तशोष, पॉइल्स, मधुमेह, हिस्टेरिया, मृगी, आदि पारिवारिक सगी बने हुए रहते हैं, यदि इनका स-विधान प्रयोग किया जाए तो उतने ही ये उपादेय हो सकते हैं, परन्तु प्रयोग के पूर्व इस बात की परीक्षा प्रथमावश्यक है कि कौनसा रत्न शुभ है, या अशुभ, किन दूषणों से वह उचित खदान का होकर भी दुष्परि-णामकारी हो सकता है, और किस प्रकृति प्रभाव में उत्पन्न होने के कारण किस प्रकार के जीवधारी के लिये वह उपादेय वन सकता है। रत्नों की भी जातियाँ हैं, वर्ण हैं, लक्षण हैं, और उसके लिए प्रभावकारी मर्यादा भी है, कितने वजन का रत्न किस प्रकृति प्रभावोत्पन्न व्यक्ति को लाभप्रद, उपकारक हो सकता है, और कितना न्यूनाधिक वजन,

तथा किस जाति, किस वर्ण-लक्षण-युक्त रत्न किस व्यक्ति के लिये हिता-वह बन सकता है। और किस रूप-रंग का विपरीत। यह जानकारी वैज्ञानिक-विश्लेषण पूर्ण प्राप्त होने पर ही, उसकी योजना और उपाय-विधान किये जाएँ तो सहायक सिद्ध हो सकते हैं। रत्नों की विविध जातियाँ हैं, और विभिन्न-देशों में विभिन्न-प्रकृति भागों में उत्पन्न होने के कारण, उनके विविध प्रभाव भी। इसका परीक्षण, और संतुलन-सामंजस्य-साधना-सहज-बुद्धि गम्य विषय नहीं। खदानों से प्रादुर्भूत मणि-रत्नों के अतिरिक्त कुछ और प्रकार से रत्नों के जन्म की प्रसिद्धियाँ भी हैं, गज-मुक्ता, सर्प-मणि, मण्डूक-मस्तक जन्य, मत्स्य-मणि आदि, इनके अतिरिक्त सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, पारस-मणि आदि की ख्यातियाँ भी विशिष्ट प्रकार की है, और विविध जन-श्रुतियाँ भी हैं, सहस्रावधि प्रकारों के रहते हुए भी नव-रत्न, और उनके विविध भेदों के ८४ रत्नों की मर्यादा जगद्विख्यात है, जिस प्रकार समस्त आकाश में कोट्यावधि तारक-मण्डलों के रहते हुए भी प्रभाव विशेष वाले नव-ग्रहों, और नक्षत्रों की महत्ता मान्य कर ली गई है, उसी प्रकार नव-रत्नों की गणना विशिष्ट-कोटि में की जाती है, रत्नों की उत्पत्ति, जाति-वर्ण आदि गुण-दोषों के स्वतन्त्र ज्ञान-विज्ञान के लिये कोई ऐसा ग्रन्थ उप-लब्ध नहीं है, तथापि पुराणों में, आयुर्वेद ग्रन्थों में, और ज्योतिष में इनका अपने-अपने दृष्टिकोण से उचित वर्णन हुआ है। वैज्ञानिक प्रयोग योजना भी सूचित की गई है। बृहत्संहिताकार आचार्यप्रवर वराह-मिहिर ने बतलाया है कि—बल नामक राक्षस के शरीर से इन रत्नों उत्पत्ति हुई है, कुछ लोग दधीची की अस्थि से भी रत्नों

लाते हैं, और पृथ्वी के स्वाभाविक धर्मप्रभाव से भी पाषाणों में विचित्रता उत्पन्न हो जाती है—

रत्नानि बलाद्दैत्याद्दधिचितोन्ये वदन्ति जातानि,
केचित् भुवः स्वाभावा द्वैचित्र्यं प्राहु रुपलानाम् ॥ —वरा०

इसी प्रकार अग्निपुराण में बतलाया है कि दधीची की अस्थि से जब अस्त्र निर्माण किया गया, तब जो सूक्ष्म-खण्ड जमीन पर गिरे उनसे चार खदाने हीरे की उत्पन्न हुईं, इसी प्रकार कुछ पुराण-मत यह है कि मन्दराचल द्वारा समुद्र मन्थन से जो अमृत उत्पन्न हुआ, उसके कण जो जमीन पर गिर गए, सूर्य-किरण द्वारा सूखकर वे यथा प्रकृति रज में मिश्रित होकर विविध वर्ण के रत्नों में रूपान्तरित हो गये। एक अन्य पुराणकार का मत है कि—एक वल नामक दैत्य था, उसने देवों को परास्त कर दिया, पर चतुराई से देवों ने उसे पशुरूप धारण करने के लिए प्रेरित किया, वह वाक्वद्ध हो पशुत्व में परिवर्तित हो गया, तब देवों ने उसका वध कर दिया, उसके विभिन्न अवयवों से विविध रत्नों* की उत्पत्ति हुई। यह वर्णन रोचक और यहाँ उपयोगी होगा, इसलिये सक्षेप में दे देना उपयोगी होगा, उस पुराण में कहा गया है कि—उस

* "परीक्षा चित्ररत्नाना वलोनामासूरोभवत्।
इन्द्राद्या निर्जितास्तेन विजेतुकैर्नशक्यते ॥१॥
वर व्याजेन पशुता याचितः स सुरैर्मखे।
तस्य सत्व विशुद्धस्य विशुद्धेन च कर्मणा ॥
कामस्यावयवाः सर्वे रत्न वीजत्व माययुः ॥४॥ —ग० पुराण

वल दैत्य की अस्थियाँ जिस जगह जाकर पड़ी, उस प्रदेश में इन्द्रधनुष को चकाचौध देने वाले हीरे उत्पन्न हो गए—

तस्यास्थिलेशों निपपातयेषु भुवः प्रदेशेषु कथंचिदेव,
वज्राणि वज्रायुध निर्जिगीषोर्भवन्ति नानाकृति मन्तितेषु ॥

मोती की उत्पत्ति का कारण बतलाते हुए लिखा है—

"नक्षत्र मालेव दिवो विशीर्णादन्तावलि स्तस्य महासुरस्य,
विचित्र वर्णेषु विशुद्ध वर्णापयः सुपत्युः पयसांपपात।"

उस असुर की दन्तपक्तियाँ जो आकाश तक फैल गई थी, समुद्रादि जगहों में पड़कर सीपियों में मुक्ता रूप वनगई, इनके सिवा—हाथी, बादल, सूअर, शख, मछली, सर्प, सीप, और बाँस मे भी वे मोती बन गई, परन्तु सीपी के मोती की विशेषता ही अधिक है—

द्विपेन्द्र जीमूत वराह शंख मत्स्यादि शुक्त्युद्भव वेणुजानि,
मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषा च शुक्त्युद्भव मेव भूरि।

आगे माणिक आदि के विषय में यथाक्रम इस प्रकार उत्पत्ति का स्वरूप वतलाया है—

पद्मराग-माणिक्य

सूर्य के किरणों से शोषित होकर उक्त राक्षस का रक्त आकाशगामी हो रहा था कि, रावण ने राह में रोककर उन्हें सिंहलद्वीप की एक नदी में-जिसके तट पर सुपारी के पेड़ हैं—डालने को विवश किया, तभी से उस नदी का नाम भी रावण गंगा पड़ गया, और उसमें पद्मराग (माणिक्य) उत्पन्न होने लग गए।

दीवाकरस्तस्य महामहीम्नो महासुरस्योत्तम रक्तबीजम्।
असृग्गृहीत्वा, चरितुं प्रतस्थे ”

तर्सिहली चारुनितम्ब बिम्ब विक्षोभिता गाध महा ह्रदायाम।
पूगद्रुमाबद्ध तट द्रुयाया मुमोच सूर्यः सरिदुत्तमायाम्॥
येतु रावण गंगायां जायन्ते कुरुबिन्दवः
पद्मराग धनं रागं बिभ्राणास्फटिकार्चिषः।"

मरकत-पन्ना

नागराज वासुकी, दैत्य के पित्ते को लेकर आकाश से चले जा रहे थे कि रास्ते में गरुड ने हमला किया, तत्काल तुरुष्क की कलियों से सुरभित माणिक्य पर्वत की उपत्यका में उस पित्त को छोड़ देना पड़ा, वहीं वह पन्ने की खदान बन गई।

दानवाधिपतेः पित्तमादाय भुजगाधिप ....
सहसैव मुमोच तत्फणीन्द्रः सुरसाभ्यक्त तुरुष्क पाद पायाम्,
'वरमाणिक्य गिरे रुपत्यकाया'

इन्द्र-नील

और राक्षस के दोनों नेत्रों के भी उसी देश में गिर जाने के कारण सागर-तट की उस भूमि पर इन्द्रनील उत्पन्न हो गए।

तत्रैव सिंहल वधू कर पल्लवाग्र,
विस्तारिणी जलनिधेरुपकच्छ भूमिः।
सान्द्रेन्द्र नीलमणि रत्नवती विभाति'

वैदूर्य (लहसूनिया)

उसी दैत्य के केवल घन गर्जन से विविध रंगों के वैडूर्य उत्पन्न हो गए।

निर्ह्लाद कल्पाद्दितिजस्य नादात् वैदूर्य मुत्पन्नमनेक वर्णम्
(ग० पु० अ० ७२)

पुष्पराग (पुखराज)

उसकी चमड़ी के हिमालय पर गिर जाने से पुखराज की उ
हुई।

पतितायां हिमाद्रौतु त्वचस्तस्य सुरद्विषः।
प्रादुर्भवन्ति ताभ्यस्तु पुष्परागा महागुणाः।

वैक्रान्त (कर्केतन)

दैत्य के नाखून हवा से उड़कर कमलवन में जा गिरे, वहा वे
तन बन गए।

वायुर्नखान्दैत्यपते गृहीत्वा चिक्षेप सत्पद्मवनेषु हृष्ट
ततः प्रसूतं पवनोपपन्नं कर्केतनं पूज्यतमं पृथिव्याम्
(ग० पु० अ०

गोमेद (भीष्म रत्न)

बलराक्षस के वीर्य से गोमेद की उत्पत्ति हुई, जो हिमालय के
भूभाग में गिरा था।

हिमवत्युत्तरदेशे वीर्यं पतितं सुरद्विषस्तस्य · संप्राप्त··
भीष्मरत्नानाम्।

लाजावर्तादि (पुलकादिक)

उत्तर देशकी जिन सुन्दर नदियों, एव स्थलातरो में जाव
अंगाश बाहु-भागस्थ गिर गए, वहाँ गुंजा, सुरमा, मधु, कमलन
वर्णवाले गधर्व अग्नि, एवं केले के समान दीप्तिमय पुलक रत्न

पुष्येषु पर्वतवरेषु च निम्नगासुस्थानांतरेषु च तथोत्तर देशगत्वात् संस्थापिता:स्वनख बाहुगते:प्रकाशं दाशार्णवागदरमेकलकालगादो गुंजाजन क्षौद्र मृगालवर्णा गंधर्व वन्हि कदली सदृशाव भासाः। एते प्रशस्ता पुलका प्रसूताः। —(ग० पु० अ० ७७)

अकीक (रुधिराक्ष)

अग्नि ने उस असुर के रूप को नर्मदा में ले जाकर प्रक्षिप्त किया था, इस कारण उसमें रुधिराक्ष मणियाँ बन गई।

'हुतभुग्रूप मादाय दानवस्य यथेप्सितम् नर्मदायां निचिक्षेप।'
'रुधिराख्य रत्नमुद्धृत्य तस्य खलु सर्वसमान वर्णम्—'॥

मूंगा (प्रवाल-विद्रुम)

और आंतों से मूंगे की उत्पत्ति हुई, वह जहाँ-जहाँ केरलादि देशों में डाली गई वही आंतें प्रवाल बन गई—

'आदायशेषं स्तस्यात्र बलस्य केरलादिषु'—विद्रुमासुमहागुणा।
(अ० ८०)

स्फटिकादि-मणि

इसी प्रकार कावेरी-विन्ध्य, यवन, चीन, नेपाल आदि देशों में जहाँ उस असुर की चर्बी लेजाकर डाली गई, वहाँ-वहाँ स्फटिकादि मणियां बन गई।

कावेर, विन्ध्य-यवन, चीन, नेपाल भूमिषु।
लांगली कीकरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नतः॥
.... उत्पन्नं स्फटिकं ततः॥
(ग० पु० अ० ८०)

इस तरह रत्नों की उत्पत्ति उस वलासुर के जिस-जिस अवयव से हुई उसके पौराणिक विवरण को लक्ष्य में रखते हुए, 'अनुभूत योगमाला' के विद्वान् वैद्यजी ने अनुभूत प्रयोग की दृष्टि से एक उपचार-तालिका भी रत्नों के लिए दी है, उसे यहाँ उद्धृत करना अस्थानीय नही होगा।

रत्न	उत्पत्ति का अंग	उपचार प्रयोग
१ हीरा	हड्डी से	हड्डी के रोगों को नष्ट करता है
२ मोती	दांतों से	पॉयरिया आदि रोग नाशक
३ माणक	रक्त से	रक्त रोग नाशक, रक्त वर्धक
४ पन्ना	पित्ते से	पित्त प्रकोप में लाभप्रद
५ इन्द्रनील	नेत्रों से	नेत्र रोग के लिये हितावह
६ लहसूनिया	नाद (स्वर) से	स्वरभंग में लाभप्रद
७ पुखराज	चमड़ी से	कुष्ठादि चर्म रोगमें हितावह
८ वैक्रान्त	नाखून से	नख दोष हारक
९ गोमेद	वीर्य से	प्रमेहादि वीर्य विकार नाशक
१० लज्जावर्त	तेज से	पाडू में उपयोगी, नेत्र तेजप्रद
११ अक़ीक़	रूप से	कांतिप्रद, सिध्यादि में उपकारक
१२ स्फटिक	मेद चर्बी से	कार्श्य, क्षय, प्लीहा, आदि में उपयोगी

ग्रहों की दृष्टि से नवरत्नों की योजना इस प्रकार की जाती है :—

सूर्य—	माणिक्य,	Ruby.
चन्द्र—	मोती,	Pearl.
मगल—	प्रवाल,	Coral.

बुध—	पन्ना,	Emerald.
गुरु—	पुखराज,	Topaz.
शुक्र—	हीरा,	Dıamond.
शनि—	नीलम,	Sopphıre.
राहू-केतु—	लाजावर्त,	
राहू—	लहसूनिया	Cats eye.
केतु—	गोमेद,	Zırcon.

सर्व साधारण जनता तथोक्त कुछ प्रसिद्ध रत्नों से ही परिचित है, उनमें भी विशेष ख्याति और प्रभाव की दृष्टि से 'नव' ही सर्वज्ञात हैं, परन्तु इनके उपरत्नों के रूपमें ८४ की और परिगणना की जाती है। जिनका परिचय नवरत्नों के साथ रग-नाम सहित निम्नलिखित है :—

१ माणक—लालरंग रत्नशिरोमणि, सूर्य से प्रभावित।

२ हीरा—सफेद, पीला, नीला आदि रग शुक्र से प्रभावित।

३ पन्ना—हरा रग बुध से प्रभावित।

४ नीलम—गहरा, तथा साधारण आसमानी—शनि प्रभावित।

५ मोती—सफेद, नीला, लाल आदिरग चन्द्र से प्रभावित।

६ लहसूनिया—लहसून की तरह रग राहू-प्रभावित।

७ मूगा—लाल-सिंदूरिया-रंग मंगल से प्रभावित।

८ पुखराज—पीला, सफेद, नीला, गुरु से प्रभावित।

९ गोमेदक—लाल धूमिल रंग केतु प्रभावित।

१० लालडी—गुलाब की तरह।

११ फिरोजा—आसमानी रंग, मुसलमानों में प्रायः पहना जाता है।

१२ एमेनी—गहरा लाल स्याही रंग।

१३ जवर जद (सब्जी निर्मल रंग)

१४ आपेल—विविध वर्ण।

१५ तुरमली—पुखराज की जाति-पांच प्रकार का रंग।

१६ नर्म—पीलापन लिये लाल रंग।

१७ सुनेला—सुवर्ण में धूमिल वर्ण।

१८ धुनेला—उक्त वर्ण में जराही अन्तर।

१९ कटेला—बैंगनिया रंग।

२० सितारा—विविध वर्ण पर सुवर्ण-विन्दु।

२१ स्फटिक—बिल्लोर-सफेद।

२२ गोदन्त—साधारण पीत, गाय के दन्त की तरह।

२३ नामड़ा—स्याही वाले लाल रंग।

२४ लुधिया—मंजीष्ठ के तरह लाल।

२५ मरियम—सफेद-पॉलिश्ड।

२६ मकनातीस—धूमिल श्वेत, चमकदार।

२७ सिंदूरिया—श्वेत-रक्त, मिश्रवर्ण।

२८ लिलि—थोड़ा जरद नीलम की हल्की जाति का।

२९ बेरूज—सब्ज-हल्का।

३० मरगज—आब रहित पन्ने की जाति का

३१ पितोनिया—हरे रंग पर लाल विन्दु।

३२ बँसी—हल्का-हरा पॉलिश रहित।

३३ दुरेंनफज—कच्चे धान्य की तरह रंग।

३४ सुलेमानी—काले रंग पर सफेद रेषा।
३५ अलेमानी—भूरे रंग पर रेषा।
३६ जजेमानी—जर्दी लिए भूरा रग, रेषा सहित।
३७ सावोर—हरा रंग, भूरी रेषा।
३८ तुरसावा—गुलाबी-पीत मिश्रित।
३९ अहवा—गुलाबी रंग पर बिन्दु।
४० लाजावर्त—(लाजवरद) लाल रंग सोने के बिन्दु।
४१ कुद्दएत—काला रग, सफेद-पीले बिन्दु।
४२ आवरी—कालापन लिए सोनेसा।
४३ चीती—सुनहरी बिन्दु, सफेद रेषा।
४४ संगेसम—अगूरी, और सफेद, कपूरी।
४५ मारवर—वास की तरह लाल श्वेत रग मिश्र।
४६ लाँस—मारवर की जाति की धूमिल।
४७ दानाफिरंग—पिश्ते की तरह हल्का रग।
४८ कसौटी—कालारंग (शालिग्राम की तरह)
४९ दारचना—दालचीनी का रग, तस्वीह (माला में काम देता है)।
५० हकीकुल-बहार—हरे-पीलेपन सहित, जल में जन्म।
५१ हालन—मटमैला गुलाबी—हिलता है।
५२ सिजरी—सफेद के ऊपर श्याम वर्ण वृत्त का आभास।
५३ मुर्वनज्फ—सफेद रग में बालों की तरह रेषाएं।
५४ कहरवा—पीला रग (कपूर की जाति का)।
५५ झरना—मटिया रग, पानी देने से सारा पानी झर जाता है।
५६ सगे वसरी—सुरमें में उपयोगी होता है।
५७ दातला—पीत प्रमुख सफेद, शख की तरह।
५८ मकड़ी—इसी जन्तु जाति का रग और जाली।

५९ संखिया—शंख की तरह सफेद।

६० मुरड़ी—प्रायः फकीरों के उपयोग में आता है।

६१ कांसला—हरित-श्वेत वर्ण।

६२ सिन्दरी—हरित-आसमानी-सा।

६३ हदीद—भूरेपन सहित काला रंग।

६४ हवास—सुनहरा-हरित रंग।

६५ सींगली—काला-लाल मिश्र।

६६ ढेड़ी—काला, खरल-कटोरी में उपयुक्त।

६७ हकीक—अनेक रंग-लकड़ी की मूंठ में ज्यादा उपयोगी।

६८ गौरी—रत्न के तौल के लिये उपयोगी।

६९ सीया—काला रंग-मूर्तियों में उपयोगी।

७० सीमाक—लाल-पीला, और मटमैला, सफेद-पीले, गुलाबी छींटे भी।

७१ मूसा—सफेद-मटिया खरलें बनती हैं।

७२ पनघन—थोड़ा हरा-काला।

७३ आमलिया—कालापन एवं गुलाबीपन।

७४ डूर—कत्थई रंग।

७५ तिलवर—काले रंग पर सफेद छींटा।

७६ खारा—हरेपन सहित काला।

७७ सीरखड़ी—मटिया रंग घाव पर उपयोगी।

७८ जहरीमोरा—सफेदी सहित हरा, (विषहर)

७९ रात—लाल, या लहसूनी रंग, (रात्रि के ज्वर का नाशक भी है)

८० सोहन मक्खी—नीला रंग।

८१ हज़रते ऊद—सफेद मिट्टी के रंग।

८२ सुरमा—काला रग।

८३ पायजहर—वास की तरह रंग।

८४ पारस—काला रंग, सोना वनता है।*

सस्कृत के विविध-ग्रन्थों में रत्नों के लिये यत्र-तत्र विवरण विखरा पड़ा है, उनमें और भी रत्नों के नाम, परिचय आदि का मिलना संभव है। हाँ, अनेक रत्नों को उपचार में उपयोगी समझ; आयुर्वेदविज्ञान-विदों ने विभिन्न विकारों के लिए प्रयुक्त किया है, उनके गुण दोष और प्रकृति का विश्लेपण भी किया है।

परन्तु रत्नों का वैज्ञानिक-उपयोग, और ग्रहों से उनका सम्बन्ध तथा उनकी शारीरिक उपयोगिता के विषय में प्रत्येक रत्नों को लेकर विचार-विवेचन करने की आवश्यकता है, रत्नों के जन्म से जिस प्रकार ग्रहों का सम्वन्ध है, उसी प्रकार शरीरगत तत्वों से भी उनका सम्वन्ध स्थापित किया जा सकता है, और परिणाम में वे उचित उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। रत्नों और ग्रहों-धातुओं को लेकर हमने आज पर्यन्त अगणित प्रयोग किए हैं, और उनसे अधिकाश लाभ ही हुआ है। विविध रत्नों के विभिन्न प्रयोग और उनके परिणामों की गाथा अत्यन्त मनोरंजक है। हमारा अपना तो यह विश्वास है कि जिस ग्रह के प्रभाव से जो रत्न, अथवा धातु-प्रभावित है, उसका प्रयोग उस ग्रह के विकृत समय में, विचार-परीक्षण पूर्वक किया जावे तो आश्चर्यजनक परिणामकारी सिद्ध होता है। अवश्य ही उसका प्रयोग, और परीक्षण, शरीर प्रकृति के ग्रह-जन्य प्रभाव के न्यूनाधिक स्वरूप में निर्माण के निर्णय के पश्चात् ही रत्न धातु के तत्व सन्तुलन-दृष्टि से किया जाना ही उपयोगी हो सकता है। इसमें सूक्ष्मावलोकन क्षमता की अपेक्षा है।

'रत्नं समागच्छतु कांचनेन' इस सूक्ति में यही रहस्य निहित है।

---

* यह सूची एक अज्ञात-पत्र के मुद्रिताश से प्राप्त है।

चिकित्सा में रत्नों का उपयोग

[श्री राधाकृष्ण नेवटिया]

रत्नों का स्थान महत्वपूर्ण है। हमारे वैद्यक शास्त्र के ग्रन्थों में औषधि के रूप में रत्नों के व्यवहार की विधि दी गई है। रत्नों के भस्म बनाने की बहुत पुरानी प्रथा है। इन रत्न भस्मों का साधारण और कठिन रोगों में उपयोग होता है।

मिश्र के फराव टूटनखामेन के कब्र से जो रत्न निकाले गये उनका खोदनेवालों और आविष्कार पर बहुत बुरा असर पड़ा। कुछ लोगों का कहना है कि लार्ड कारनारवन और उनके साथियों पर जो विपत्तिया आ पड़ी थीं उसका मूल कारण इन रत्नों का निकालना है।

हिन्दुओं के कूर्म पुराण का तो यह कथन है कि सात ग्रह इन सात ज्योतियों की ही घनीभूत अवस्थाएँ हैं। और इन ग्रहों का पोषण भी इन ज्योतियों से होता है। इन्द्रधनुष में ये सात रग आपको देखने को मिलेंगे और ऐसा माना गया है कि मानव शरीर की रचना भी इन सात ज्योतियों से ही हुई है। एक पक्ष का कहना है कि सृष्टिकर्ता जगदीश्वर के दिव्य देह से ज्योतिया निकली हैं और उस ज्योति से सर्व चराचर विश्व का सृजन पालन होता है और इसके अभाव से ही सहार होता है। इस से तो आज का विज्ञान भी सहमत है कि रग चिकित्सा से अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं और यह अनुभव सिद्ध है।

रत्नों में भी वही रग पाये जाते हैं जिसके द्वारा रोगों का नाश होता है। ऐसे तो अनेक रत्न हैं और सभी रत्नों में रग पाये जाते हैं। पर सात ऐसे रत्न हैं जिनमें एक ही तरह का एक रत्न में रग होता है, बाकी रत्नों में मिश्रित रग मिलेंगे, इसलिये सात तरह के रत्नों का

महत्व शरीर के प्रायः सब रोगों को दूर करने में है। ज्योतिष शास्त्र में रत्नो के उपयोग को उच्चतम स्थान दिया गया है। स्वास्थ्य लाभ के लिये इन रत्नों का व्यवहार राजा महाराजा से लेकर गरीव तक शरीर में तावीज के रूप में, अगूठी के रूप में, गले में पहनने के रूप में करते हैं।

आयुर्वेद में प्रधान प्रधान रत्नों का औषधियों में प्रयोग भस्म के रूप में होता है। भस्म के अतिरिक्त रत्नो को औषधियो के रूप में प्रयोग करने का और कोई अच्छा तरीका आयुर्वेद में नहीं बताया है। हजारों वर्षों से वैद्य लोग कीमती रत्नों को जलाकर भस्म बनाते आये हैं। सभी अच्छे रत्न इस काम में लाये जाते हैं। इनमें हीरा, पन्ना, मोती, चुन्नी, प्रवाल, श्वेतपुखराज, नीलम आदि हैं। जटिल और परिश्रमसाध्य प्रक्रियाओं से वैद्य लोग बनाते हैं उसका मुख्य कारण यही है कि इन रत्नों में रोगों को दूर करने की असीम शक्ति भरी पड़ी है। आयुर्वेद के कथनानुसार जो कि सत्य है उनके गुण जानकारी के लिये जानना आवश्यक है। बाकी आगे चल कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे कि इन रत्नों का उपयोग बड़े ही सरल तरीके से करके अस्वस्थ प्राणी मात्र की सेवा कर सकेंगे।

१. चुन्नी भस्म

आयुर्वेद में चुन्नी भस्म दीर्घायु प्रद माना गया है। इसमें वात, पित्त, कफ को शान्त करने की शक्ति है और यह क्षय रोग, दर्द, उदर-शूल, थोडा घाव, चक्षुरोग, कोष्ठबद्धता आदि को आराम करती है। चुन्नी भस्म शरीर के अंग-प्रत्यंग के जलन को भी दूर करती है।

२. मुक्ता भस्म

मुक्ता भस्म मीठा, ठढा, आखों के लिये उपकारक, शक्तिदाता, विशेषतः औरतों के सौन्दर्य की वृद्धि करनेवाला और आयु को बढ़ाने

वाला होता है। मुक्ता भस्म से क्षय रोग, कृशता, पुराना ज्वर, सब तरह की खाँसी, श्वासकष्ट, दिल धड़कना, रक्तचाप, हृदयरोग, जीर्ण आदि दूर होते हैं।

३. प्रवाल भस्म

प्रवाल भस्म कफ और पित्तजनित रोगों को दूर करती है। सौन्दर्य-वर्द्धक है। कुष्ट, खाँसी, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, ज्वर, उन्माद, पाडु आदि की यह उत्कृष्ट औषधि है।

४ पन्ना भस्म

पन्ना भस्म मीठा, ठढा, मेदवर्द्धक है। इस से क्षुधा बढ़ती है। अम्लपित्त और जलन दूर होती है। मिचली और वमन, दमा, अजीर्ण, बवासीर, पाडु और हर प्रकार का घाव आदि अच्छे होते हैं।

५. श्वेत पुखराज भस्म

श्वेत पुखराज भस्म विष और विषाक्त बीजाणुओं की क्रिया को नष्ट करता है। मिचली और वमन को रोकता है। वायु और कफ के रोगों को नष्ट करता है। अग्निमान्द्य, अजीर्ण, कुष्ठ और बवासीर में भी फायदा पहुँचाता है।

६. हीरक भस्म

हीरक भस्म से क्षय रोग, भ्रान्ति, जलोदर, मधुमेह, भगन्दर, रक्ताल्पता, सूजन आदि रोग दूर होते हैं। यह आयु की वृद्धि करती है और चेहरे के सौन्दर्य को बढाती है।

७. नीलम भस्म

नीलम भस्म बहुधा शनि से उत्पन्न रोगों में व्यवहार किया जाता है। इससे गठिया, सधिवात, उदरशूल, स्नायविक दर्द, भ्रान्ति, मृगी, गुल्मवायु, बेहोशी आदि रोग दूर होते हैं।

वैद्यक शास्त्र में ये भस्में अलग-अलग प्रयोग की जाती हैं और इनका मिश्रण के रूप में भी प्रयोग होता है।

वैद्यक शास्त्र में इन कीमती रत्नों को भस्म बनाकर नष्ट कर दिया जाता है। भस्म बनाने के लिये नाना तरह के तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है। रत्नों का जो असली स्वरूप गुण है वह भस्म बनाने पर उसमें कितने गुण निकल जाते होंगे और कितने नये रूप में प्रवेश करते होंगे यह कहना कठिन है। पर यह तो मानना उचित होगा कि असली रूप तो नहीं रहता है।

रत्न चिकित्सा में रत्नों के तोड़फोड़ की आवश्यकता नहीं है। रत्न ज्यों-के-त्यों रहेंगे। उन्ही रत्नों का उपयोग आप सैकड़ों-हजारों दफे कर सकेंगे। उसके बाद भी रत्नों का स्वरूप ज्यो का-त्यों बना रहेगा। इन रत्नों के द्वारा बनाई हुई औषधि, शायद औषधि शब्द व्यवहार करना गलत है बनाये हुए जल या अलकोहल के उपयोग से हजारों रोगियों को अनेक रोगों से मुक्त कर सकते हैं। कीमत की दृष्टि से कहना चाहिए कि आज तक जितने प्रकार की औषधियाँ व्यवहार में लाई जाती हैं, सभी से सस्ती हैं। केवल एक बार सातों रत्नों के खरीदने में अवश्य अधिक रुपये खर्च करने पड़ते हैं। उसमें भी कम खर्च करके काम निकाला जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में अभीतक रत्न चिकित्सा का समावेश नही हुआ इसका मुख्य कारण इस ओर प्राकृतिक चिकित्सकोंका ध्यान नहीं गया और न खोज ही हुई हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में रग चिकित्सा या वर्ण चिकित्सा द्वारा तो उपचार किया जाता है; किन्तु रत्न-चिकित्सा, रग चिकित्सा या वर्ण चिकित्सा का स्वजातीय है क्योंकि दोनों प्रणालियों में पीड़ित और रुग्ण मनुष्यों को आराम करने के लिये विश्व रगों के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग किया जाता है। वर्ण चिकित्सा में सूर्य या

बिजली के प्रकाश से रग की शक्तियों की उत्पत्ति होती है। रत्न चिकित्सा में भी इन सात रत्नों से सात रगों की शक्ति उप्पन्न होती है।

इन्द्र धनुष में व्यंजित सात रंग हैं और उन सात रगों में तीन दैवी गुण हैं, जैसे :

१ सर्वज्ञता २ सर्व सामर्थ्य ३ सर्व व्याप्ति

इसी तरह सात रत्नों में भी उक्त तीन गुण है। रग अपनी सर्व-सत्ता के कारण रोग को पहचान लेते हैं, अपनी सर्व सामर्थ्य से रोग को आराम करते हैं और अपनी सर्व व्याप्तिता के कारण सम्पूर्ण शरीर के करोड़ों कोशो और ततुओं में फैल जाते हैं।

आयुर्वेद-शास्त्र के अनुसार शरीर के रोगों को परखने के लिये जब वैद्य या डाक्टर नाड़ी की परख करते हैं तो वैद्य वात, पित्त और कफ के द्वारा निदान करते हैं और डाक्टर नाडी की गति देखकर निदान करते हैं। रत्न चिकित्सा भी आयुर्वेद-शास्त्र को मानते हुए वात, पित्त और कफ को आधार मानती है क्योंकि रत्नों में जो रग है उनका सम्बन्ध प्रत्येक रग अपना स्वभाव रखता है और उसी के अनुसार वह रोगों को दूर करता है। पाठकों की जानकारी के लिए संक्षेप में रगों के गुण दिये जा रहे हैं।

चुन्नी—यह लाल रग वितरण करती है। यह उष्ण शक्ति या पित्त है जो ऋृणात्मक गुणयुक्त है।

मोती—मोती की नारगी विश्वज्योति है। इससे कफ उत्पन्न होता है जिसका गुण धनात्मक है।

प्रवाल—प्रवाल भी चुन्नी के समान पित्त है।

पन्ना—पन्ना हरे रग की विश्वकिरण प्रसारित करता है और धनात्मक है।

श्वेत पुखराज—श्वेत पुखराज आसमानी विश्वरग छोड़ता है। इसका गुण उदासीन है।

हीरा—हीरा नीला रग छोड़ता है जो कि कफ की शक्ति रखता है जिसमें धनात्मक और सयोजन का गुण है।

नीलम—नीलम बैंगनी रग छोड़ता है। इन्द्र धनुष के समान आसमानी रग का गुण रखता है। इसमें वायु की शक्ति है।

रत्नों की आलोचना बद्ध तालिका नीचे दी जा रही है :

रत्न	त्रिदोष	विश्वशक्ति	रंग
चुन्नी	पित्त	ऋणात्मक	लाल
मोती	कफ	धनात्मक	नारगी
प्रवाल	पित्त	ऋणात्मक	पीला
पन्ना	कफ	धनात्मक	हरा
श्वेत पुखराज	वायु	उदासीन	आसमानी
हीरा	कफ	धनात्मक	नीला
नीलम	वायु	उदासीन	बैंगनी

अब हमारे कथन के अनुसार यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि रोगों का प्रधान कारण विश्व रग की भूख है। इस भूख को मिटाना ही रत्न चिकित्सा का प्रधान काम है। जब रत्न इस रग की कमी को पूरा करते हैं तो सातों मनुष्य सस्थान, कोष और ततुओं की पर्याप्त पुष्टि हो जाती है और ये अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त कर लेते हैं। रत्न विश्वरग का अक्षय भडार है। इस रग के सुरासार या अलकोहल में एकत्रित कर के वैज्ञानिक तरीके से सुलभ रूप में जनता के पास पहुँचाया जाता है।

॥ अर्हम् ॥

परमजैन श्रीचन्द्राङ्गज ठक्कुर फेरू विरचिता

प्राकृतभाषाबद्धा

रत्नपरीक्षा

सयलगुणाण निवासं नमिउं सव्वन्न तिहुयणपयासं।
संखेवि परप्पहियं रयणपरिक्खा भणामि अहं ॥ १ ॥
सिरिमाल कुलुत्तसो ठक्कुर-चदो जिणिंदपयभत्तो।
तस्सागरुहो फेरू जपइ रयणाण माहप्पं ॥ २ ॥
पुव्वि रयणपरिक्खा सुरमिति-अगत्थ-बुद्धभट्टेहिं।
विहिया तं दट्ठूण तह बुद्धी मडलीयं च ॥ ३ ॥

---

१ समस्त गुणो के निवास, त्रिभुवन प्रकाशक सर्वज्ञ को नमस्कार करके मैं अपने व पराये हित के लिए सक्षेप से रत्न-परीक्षा कहता हूं।

२ श्रीमाल- वशोत्पन्न, जिनेश्वर—चरणो के भक्त ठक्कुर चंद का पुत्र फेरू रत्नों का माहात्म्य वर्णन करता है।

३ पहले सुरमित्र (वृहस्पति) अगस्त्य और बुद्धभट्ट ने रत्न-परीक्षा (ग्रंथ) बनाया उसे देखकर तथा मडलीक (जौहरी) बुद्धि से—

अल्लावदीण कलिकाल-चक्कवट्टिस्स कोसमज्झत्थं ।
रयणायरुव्व रयणुच्चयंच निय-दिट्ठिए दट्ठुं ॥ ४ ॥

पच्चक्ख अणुभूया मंडलिय-परिक्खिया च सत्थायं (इं)।
नाउ रयणसरूव पत्तेय भणामि सव्वेसिं ॥ ५ ॥

लोए भणति एव आसी बलदाणवो महाबलवं ।
सो पत्तो अन्न दिणे सग्गे इंदस्स जिणणत्थं ॥ ६ ॥

तहिं पत्थिओ सुरेहिं जन्ने अम्हाण तुं पसू होह ।
तेण पसन्ने भणियं भविओह कुणसु नियकज्ज ॥ ७ ॥

सो पसु वहिउ सुरेहिं तस्स सरीरस्स अवयवाओ य ।
सजाया वर रयणा सिरि निलया सुरपिया रम्मा ॥ ८ ॥

---

४ कलिकाल चक्रवर्त्ती सुल्तान अलाउद्दीन के खजाने मे रत्नाकर की तरह स्थित रत्नो को अपनी आँख से देखकर, —

५ प्रत्यक्ष अनुभव कर, जौहरियो द्वारा परीक्षित व शास्त्रो के अनुसार सब रत्नो का स्वरूप ज्ञात कर कहता हूँ ।

६ लोगो मे ऐसा कहते हैं कि बल नामक एक महा बलवान दानव था । एक दिन वह इन्द्र को जीतने के निमित्त स्वर्ग मे गया ।

७ देवताओ ने उससे 'हमारे यज्ञ मे पशु बनो' इसकी प्रार्थना की । उसने संतुष्ट होकर कहा—मैं हुआ, तुम अपना काम करो !

८ देवताओं द्वारा पशुबध होने पर उसके शरीर के अवयवो से उत्तम रत्न हुए जो देवो को प्रिय, सुन्दर और लक्ष्मी के निवास स्थान हैं ।

अत्थिस्स जाय हीरय मुत्तिय दताउ रुहिर माणिक्कं।
मरगय मणि पित्ताओ नयणाओ इदनीलो य ॥ ९ ॥

वइडुज्जो य रसाओ वसाउ कक्केयगं समुप्पन्न।
ल्हसणीओ य नहाओ फलिय मेयाउ संजायं ॥ १० ॥

विद्रुमु आमिस्साओ चम्माओ पुसराउ निप्पन्नो।
सुक्काउ य भीसम्मो रयणाणं एस उप्पत्ती ॥ ११ ॥

एव भणति एगे भू [मि] विक्कार इमं च सव्व च।
जह रुप्प कणय तबय धाऊ रयणा पुणो तह य ॥ १२ ॥

तट्ठाणाओ गहिया निय निय वन्नेहिं नवहि सुगहेहिं।
तत्तो जत्थ य जत्थ य पडिया ते आगरा जाया ॥ १३ ॥

---

९ हड्डियो से हीरे, दाँतो से मोती, रुधिर से माणिक्य, पित्त से मरकत मणि, आखो से इन्द्रनील।

१० रससे वैडूर्य, मज्जा से कर्केतन उत्पन्न हुए। नखों से ल्हसिणिया और मेद से स्फटिक पैदा हुए।

११ मास से विद्रुम, चर्म से पुखराज, शुक्र से भीसम (भीष्म) निष्पन्न हुए यह रत्नो की उत्पत्ति है।

१२ कुछ ऐसा कहते हैं, ये सब पृथ्वी के विकार है। जैसे सोना, चादी, तावा आदि धातु हैं वैसे ही रत्न भी है।

१३ उस स्थान से अपने अपने वर्ण के अनुरूप नवो सुग्रहो ने (रत्नोंको) ग्रहण किया फिर वे उनसे जहां जहॉ पड़ गये वहीं उनके आकर (खान) हो गए।

सूरेण पउमरायंमुत्तिय चदेण विद्रुम भूमे।
मरगयमणीउ बुद्धे जीवेण य पुसराय च॥ १४॥

सुक्केण गहिय वज्जं सणिंदनीलं तमेण गोमेया।
केएण य वेडुज्जं मुक्का तत्थेव सेस तहिं ॥ १५॥

इय रयण नव गहाणं अंगे जो धरइ सच्च सील जुओ।
तस्स न पीडति गहा सो जायइ रिद्धिवंतो य॥ १६॥

पुणु जह सत्थे भणिया अदोस अइचुक्खया गुणड्ढा य।
ते रयण रिद्धिजणया सदोस धण-पुत्त-रिद्धि हरा॥ १७॥

---

१४ सूर्य ने पद्मराग, चन्द्रमा ने मोती, मगल ने मूगा, बुध ने मरकत मणि (पन्ना), वृहस्पति ने पुखराज,

१५ शुक्र ने हीरा, शनि ने इन्द्रनील, राहु ने गोमेद, केतु ने वैडूर्य लिये, अवशिष्ट उन्होने वही छोड दिये।

१६ इन नवग्रह के रत्नो को जो सत्यशील और गुणयुक्त पुरुष धारण करता है उसे ग्रह पीडा नही देते और वह धनवान हो जाता है।

१७ फिर भी शास्त्रो मे कहा है कि—जो दोष रहित, अत्यन्त चोखे और गुणाढ्य रत्न है वे ऋद्धिदायक और सदोष रत्न धन, पुत्र और ऋद्धि को हरण करने वाले हैं।

जइ उत्तिमरयणतरि इक्कोवि [स] दोसु कूडू समलु हवे ।
ता सयलउत्तिमाणं कतिपहावं हणेइ धुव ॥ १८ ॥
भणिया मूलुप्पत्ती अओय बुच्छामि आगराईणि ।
वन्न गुण दोस जाई मुल्लं सव्वाण रयणाणं ॥ १६ ॥

वज्रं जहा :—

हेमंत सूरपारय कलिंग मायग कोसल सुरट्ठे ।
पंडुर वि[दि]सए सुतहा वेणु नई वज्जठाणाइं ॥२०॥
तब सिय नील कुक्कुस हरियाल सिरीस कुसुम घणरत्ता ।
इय वज्जवन्नछाया कमेण आगरविसेसाओ ॥२१॥
पर विशेषोऽय :—

१८ यदि उत्तम रत्नों मे एक भी खोटा मलिन और सदोष रत्न हो तो वह समस्त उत्तम रत्नो की कान्ति और प्रभाव को निश्चयरूप से हरण कर लेता है ।

१६ मूल उत्पत्ति कही गई अब मैं समस्त रत्नो की खाने, वर्ण, गुण दोष, जाति, मूल्य आदि बतलाऊंगा ।

२० हेमन्त, (हिमवंत) सोपारक, कलिंग, मातग, कौसल, सुराष्ट्र, पण्डूर देश मे एवं वेणु नदी मे हीरे की खाने है ।

२१ ताम्रवर्ण, श्वेत, नील, कुक्कुस (धान्यादि के छिलके जैसे रंग का) हरताल, सिरीश के फूल जैसे घने रक्त रंग की छाया वाले क्रमशः खान विशेष के द्योतक हैं ।

कोसल कलिंग पढमे दुइए हेमंत तह य मायगे ।
पंडुर सुरट्ठ तईए वेणुज सोपारय कलिंमि ॥ २२ ॥
छक्कोण अट्ठ फलहा वारस धारा य हुंति वज्जा य ।
अट्ठ गुणा नव दोसा चउ छाया चउर वन्न कमा ॥ २३ ॥
समफलह उच्चकोणा सुतिक्खधारा य वारितर अमला ।
उज्जल अदोस लहुतुल इय वज्जे होति अट्ठ गुणा ॥ २४ ॥
कागपग बिंदु रेहा समला फुट्टा य एगसिगा य ।
वट्टा य जवाकारा हीणाहियकोण नव दोसा ॥ २५ ॥

परन्तु विशेष यह है कि—

२२ कलिकालमे कोसल और कलिंग मे प्रथम प्रकार के रत्न, हिमालय तथा मातग मे द्वितीय, पण्डुर सुराष्ट्र मे तीसरे प्रकार के तथा अवशिष्ट हीरे वेणु नदी और सोपारक मे होते हैं।

२३ हीरे मे छः कोण, अष्ट फलक, बारह प्रकार की धाराए आठ गुण, नौ दोष, चार प्रकार की छाया, और चार प्रकार के वर्ण, क्रम से हुआ करते है।

२४ समफलक, उच्चकोण, तीखी धारा, पानीदार, निर्मल, उज्ज्वल, निर्दोष एव हल्का वजन, ये हीरे के आठ गुण होते है।

२५ काकपद, छींटा, रेखा (धारी), मैलापन, चिकट, एक सीगा, गोलमटोल, जवाकार और हीनाधिक कोण, ये हीरे के नौ दोष हैं।

सिय-विप्प अरुण-खत्तिय पीय-वइस्सा य कसिण-सुद्दाय ।
इय चउ वन्न दुजाई चुक्खा तह मालवी नेया ॥ २६ ॥

निद्दोस सगुण उत्तिम चत्तारि वि वन्न हुंति जस्स गिहे ।
तस्स न हवति विग्घं अकालमरणं न सत्तुभय ॥ २७ ॥

चत्तारि वि वन्न तहा पीयारुण नरवराण रिद्धिकरा ।
सेसा नियनिय वन्ने सुहकरा वज्ज नायव्वा ॥ २८ ॥

लच्छीए आयड्ढी थभइ अरिणो परि [र] क्कमं समरे ।
तेणं अरुणं पीय नरेसरो धरइ वरवज्ज ॥ २९ ॥

---

२६ श्वेत वर्ण ब्राह्मण, लाल का वर्ण क्षत्रिय, पीले का वैश्य, और काले का शूद्र, ये चार वर्ण हैं; ब्राह्मण वर्ण तथा चोखा हीरा मालवी जानना चाहिए। (चुक्खा और मालवी ये दो हीरे की जाति है।)

२७ जिसके घर मे निर्दोष, सद्गुणी और उत्तम चारो वर्ण के हीरे होते हैं, उसके घर विघ्न, अकालमरण व शत्रुभय नही होता ।

२८ चारो ही वर्ण के तथा पीले, और लाल हीरे राजाओ को ऋद्धिकर्त्ता हैं। शेष अपने अपने वर्ण को सुख देने वाले हीरे जानना।

२९ लक्ष्मी को आकर्षण करने वाला, वैरियो को स्तम्भन करने वाला समरक्षेत्र मे पराक्रमदाता होने से राजा लोग लाल, पीले उत्तम हीरे को धारण करते हैं।

जह दप्पणेण वयणं दीसइ तह उत्तमेण वज्जेण ।
नर तिरिय रुक्ख मदिर तहिंदधणुहाइ दीसंति ॥ ३० ॥
अइचुक्ख तिक्खधारा पुत्तत्थीइत्थियाण हाणिकरा ।
चप्पड़ि मलिण तिकोणा रमणीणं वज्ज सुहजणया ॥ ३१ ॥

भणियं च :—

अहमेव पढमरयणं सुपुत्तरयणाण खाणि-मुह-कुच्छी ।
कोण वराओ वज्जो इय दोसं दाउ धर इत्थी ॥ ३२ ॥
समपिंड सगुण निम्मल गुरुतुल्ला हीणपिंड लहुमुल्ला ।
फार लहुतुल्ल वज्जा बहुमुल्ला सम समा मुल्लो ॥ ३३ ॥

---

३० जैसे दर्पण मे मुख दिखायी देता है वैसे ही उत्तम हीरे मे पुरुष, तिर्यञ्च, वृक्ष, मन्दिर एव इन्द्र धनुष आदि दिखते है ।

३१ अति चोखी, तीखी धारा वाला हीरा पुत्रार्थी स्त्रियो को हानिकारक तथा चप्पड मलिन तिकोना हीरा रमणियो को सुखदायक है ।

कहा है कि:—

३२ मैं ही सुपुत्र रत्नो की खान रूप कुक्षि को धारण करने वाली प्रथम रत्न हूँ । ये पामर बज्र क्या चीज है ? यह दोष देनेवाले हीरे को स्त्री धारण करती है ।

३३ सम पिण्ड, अच्छे गुण वाले और निर्मल हीरे यदि तोल मे भारी और हीन पिण्ड हो तो कमदामी होते हैं । तथा फार व हल्के वजन के हीरे बहुमूल्य एव मध्यस्थ हीरे मध्यम मूल्य के होते हैं ।

वज्जं लहु फलह सिर वित्थरचरणं तिलोवरिं काउं ।
जो जड़इ अह जड़ावइ तस्स धुव हवइ बहु दोस ॥ ३४ ॥

जस्स फलहाण मज्झे वुड्ढो वुड्ढो हुंति भिन्न वन्नाइं ।
कागपय रत्तविंदू तं वज्जं होइ पुत्तहर ॥ ३५ ॥

वज्जेण सव्वि रयणा वेहं पावंति हीरए हीरा ।
कुरुविंदो पुण वेहइ नीलस्स न अन्नरयणस्स ॥ ३६ ॥

अयसार कच्च फलिहा गोमेयग पुंसराय वेडुज्जा ।
एयाउ कूड़वज्जा कुणंति जे होंति कल कुसला ॥३७॥

---

३४ जिस हीरे के थान का ऊपर का भाग छोटा और नीचेका भाग बडा हो ऐसे को उलटा करके जो जडता है या जडवाता है उसे निश्चय पूर्वक बड़ा दोष लगता है।

३५ जिस फलक(थान) मे बडे बड़े भिन्न वर्ण, काकपद तथा लाल छीटे होते हैं, वह हीरा पुत्र का हरण करने वाला होता है ।

३६ वज्र (हीरे) से सभी रत्न बीधे छेदे जाते है, हीरे से हीरा भी। मानिक भी नीलम को बेघता है अन्य रत्नो को नही ।

३७ अयसार (लोहचूर्ण), काँच, स्फटिक, गोमेदक, पुखराज वैडूर्य —इनसे भी जो कलाकुशल व्यक्ति होता है, नकली हीरे बना लेता है ।

कूडाण इय परिक्खा गुरू विन्नाया य सुहमधारा य ।
साणायं सुइ घसिया दुह घसिया रयण जाइभवा ॥ ३८ ॥

॥ इति वज्र परीक्षा ॥

अथ मुत्ताहलं जहा :—

गयकुंभ १ संखमज्झे २ मच्छमुहे ३ वस ४ कोलदाढेय ५ ।
सप्पसिरे ६ तह मेहे ७ सिप्पउड़े ८ मुत्तिया हुंति ॥ ३९ ॥
मंदव [प] ह पीय रत्ता इय उतिम जंबुछाय मज्झत्था ।
वट्टामलयपमाणा गयादजा हुंति रज्जकरा ॥ ४० ॥

३८ खोटे की यह परीक्षा है कि वह वजन मे भारी, जलदी बीधा जाय पतली धारा वाला एवं सान पर घिसने से सरलता से घिस जाय वह खोटा तथा कठिनता से घिसे वह सच्चा रत्न जानना ।

३९ हाथी के कुभस्थल, संख, मच्छ के मुंह मे, बास मे, सूअर की दाडों मे, साप के मस्तक पर बादल मे, तथा सीपी मे, इन आठो स्थानो में मोती उत्पन्न होते हैं ।

४० गूगला, पीला और राता उत्तम, जमुनिया रङ्ग का मध्यम तथा आवले के प्रमाण का गोल गज मोती राज-रजाने वाला होता है ।

दाहिणवत्ते संखे महासमुद्दे य कंबुजा हुंति।
लहु सेया अरुणपहा नर-दुलहा मंगलावासा ॥ ४१ ॥
मच्छे य साम वट्टा लहुतुला विमलदिट्ठिसंजणया।
अरि-चोर-भूय-साइणि-भयनासा हुंति रिद्धिकरा ॥ ४२ ॥
गुंज समा मंदपहा हवंति फत्थ (?च्छ) वन सव्व भूमीसु।
रज्जकरा दुक्खहरा सुपवित्ता वासउब्भरणा ॥ ४३ ॥
सूवरदाढे वट्टा घियवन्ना तह य सालफलतुल्ला।
चिट्ठंति जस्स पासे इंदेण न जिप्पए सोवि ॥ ४४ ॥
सप्पस्स नील निम्मल कंकोलीफलसमाण लच्छिकरा।
छल-छिद्द-अहिउवद्दव-विसवाही-विज्जु नासयरा ॥ ४५ ॥

---

४१ दक्षिणावर्त्त शंख और महासागर मे सखजन्य मोती होते हैं। हल्का सफेद और अरुण प्रभा वाले मोती मनुष्यो को दुर्लभ और मंगल के आवास हैं।

४२ मच्छोत्पन्न मोती श्यामल, गोल, हलके, विमल दृष्टि उत्पन्न करने वाले, शत्रु, चोर, भूत और शाकिनी इनके भयविनाशक और ऋद्धि कर्त्ता होते हैं।

४३ बास के मोती सब भूमि मे स्थित किसी बांस के वन मे होते हैं। जो चिरमी जितने वडे मद प्रभा वाले, पवित्र राज्यदाता और दुखहर्त्ता हैं।

४४ सूअर की दाढो से उत्पन्न मोती गोल, घृतवर्ण, सालफल (सखुआ) जितने वडे होते हैं। जिसके पास ये मोती होते हैं, वह इन्द्र से भी अजेय है।

मेहे रवितेयसमा सुराण कीलंत कह्व नियड ति ।
गिण्हंति अतराले अपत्त धरणीयले देवा ॥ ४६ ॥
वार्या छिज्जइ कोवि हु जलबिंदु जलहरंमि वरिसंते ।
सु वि मुत्ताहल [ल] च्छी भणति चिंतामणी विउसा ॥ ४७ ॥
एए हुंति अवेहा अमुल्लया पूयमाण रिद्धिकरा ।
लोए बहु माहप्पा लहु बहुमुल्ला य सिप्पिभवा ॥ ४८ ॥
रामावलोइ वव्वरि सिंघलि कंतारि पारसीए य ।
केसिय देसेसु तहा उवहितडे सिप्पिजा हुंति ॥ ४९ ॥

---

४५ साप का मोती नीला, निर्मल कंकोली फल जितना बड़ा लक्ष्मीकारक तथा छल छिद्र, सर्पोपद्रव, विष, व्याधि, बिजली आदि के उपद्रवो का नाशक होता है ।

४६ बादलों में सूर्य तेज जैसे मोती, देवताओ के क्रीडा करते किसी तरह गिर जाते हैं तो उन्हे पृथ्वी पर पडने से पूर्व ही देवता लोग अन्तराल मे ग्रहण कर लेते है ।

४७ वरसते हुए वादलो मे से यदि कोइ जल विन्दु वायु से सूखकर मोतीहो जाय, उसे विद्वान लोग चिन्तामणि मोती कहते हैं ।

४८ ये सब अवीधे, पूजनीय, अमूल्य और ऋद्धिकर्त्ता एवं लोक मे बड़े माहात्म्यवाले हैं, सीप के अल्प व बहुमूल्यवान होते हैं ।

४९ रामावलोइ, बव्बर, सिंहल, कान्तार, पारस और केसिय देश मे तथा समुद्र तट मे सीपीयो से उत्पन्न मोती होते हैं ।

सव्वेसु आगरेसु य सिप्पउडे साइरिक्ख जलजोए।
जायंति मुत्तियाइं सव्वालंकार-जणयाइं ॥ ५० ॥
तारं वट्ट अमलं सुसणिद्धं कोमलं गुरूं छ गुणा।
लहु कढिण रूक्ख करडा विवन्न सह बिंदु छह दोसा ॥ ५१ ॥
ससिकिरणसमं सगुण दीहं इक्कंगि कलुसिया हवइ।
तस्स य खडंस हीणं मुल्ला निबउलीए अद्धं ॥ ५२ ॥
अहरूव पंक-पूरिय असार विप्फोड मच्छनयणसम।
करयाभं गठिजुया गुरू पि वट्टंपि लहु-मुल्ला ॥ ५३ ॥

---

५० सभी खानो मे—सीप मे स्वाती नक्षत्र के जल पडने के योग से सर्व गहनो के योग्य मोती उत्पन्न होते हैं।

५१ देदीप्यमान, गोल, निर्मल, चिकना, कोमल, और भारी ये छः गुण तथा लघु, कठिन, रूखा, कडा, विवर्ण, दागी (धब्बे वाला) ये मोती के छः दोष हैं।

५२ चन्द्रकिरण जैसा (श्वेत शीतल) सगुण, दीर्घ, नीबोली से आधे परिमाण का मोती यदि एकांग कलुषित हो तो उसका मूल्य षडांश हीन होता है।

५३ कुरूप, पंकपूरित, निस्सार, विस्फोट मच्छनेत्रजैसा, ओले जैसा ग्रंथि युक्त मोती भारी व गोल होने पर भी वह कम मूल्य वाला है।

मेहे रवितेयसमा सुराण कीलंत कहव्न निवड ति ।
गिण्हेति अतराले अपत्त धरणीयले देवा ॥ ४६ ॥
वार्या छिज्जइ कोवि हु जलबिंदु जलहरंमि वरिसंते ।
सु वि मुत्ताहल [ल] च्छी भणति चिंतामणी विउसा ॥ ४७ ॥
एए हुंति अवेह्वा अमुल्लया पूयमाण रिद्धिकरा ।
लोए वहु माहप्पा लहु वहुमुल्ला य सिप्पिभवा ॥ ४८ ॥
रामावलोइ वब्बरि सिंघलि कंतारि पारसीए य ।
केसिय देसेसु तहा उवहितडे सिप्पिजा हुंति ॥ ४९ ॥

---

४५ साप का मोती नीला, निर्मल कंकोली फल जितना बडा लक्ष्मीकारक तथा छल छिद्र, सर्पोपद्रव, विष, व्याधि, बिजली आदि के उपद्रवो का नाशक होता है ।

४६ बादलों मे सूर्य तेज जैसे मोती, देवताओ के क्रीडा करते किसी तरह गिर जाते हैं तो उन्हे पृथ्वी पर पडने से पूर्व ही देवता लोग अन्तराल में ग्रहण कर लेते है ।

४७ वरसते हुए वादलो मे से यदि कोइ जल विन्दु वायु से सूखकर मोतीहो जाय, उसे विद्वान लोग चिन्तामणि मोती कहते है ।

४८ ये सब अवीधे, पूजनीय, अमूल्य और ऋद्धिकर्त्ता एवं लोक मे बडे माहात्म्यवाले है, सीप के अल्प व बहुमूल्यवान होते हैं ।

४९ रामावलोइ, बब्बर, सिंहल, कान्तार, पारस और केसिय देश मे तथा समुद्र तट मे सीपीयो से उत्पन्न मोती होते हैं ।

सव्वेसु आगरेसु य सिप्पउडे साइरिक्ख जलजोए।
जायंति मुत्तियाइं सव्वालंकार-जणयाइं ॥ ५० ॥
तारं वट्टं अमलं सुसणिद्धं कोमलं गुरूं छ गुणा ।
लहु कढिण रूक्ख करडा विवन्न सह बिंदु छह दोसा ॥ ५१ ॥
ससिकिरणसमं सगुण दीहं इक्कगि कलुसिया हवइ ।
तस्स य खडंस हीणं मुल्ला निंबउलीए अद्धं ॥ ५२ ॥
अहरूव पंक-पूरिय असार विप्फोड मच्छनयणसमा ।
करयाभ गठिजुया गुरू पि वट्ट पि लहु-मुल्ला ॥ ५३ ॥

---

५० सभी खानो मे—सीप मे स्वाती नक्षत्र के जल पडने के योग से सर्व गहनो के योग्य मोती उत्पन्न होते हैं ।

५१ देदीप्यमान, गोल, निर्मल, चिकना, कोमल, और भारी ये छः गुण तथा लघु, कठिन, रूखा, कडा, विवर्ण, दागी (धब्बे वाला) ये मोती के छः दोष हैं।

५२ चन्द्रकिरण जैसा (श्वेत शीतल) सगुण, दीर्घ, नीबोली से आधे परिमाण का मोती यदि एकाग कलुषित हो तो उसका मूल्य षडाश हीन होता है ।

५३ कुरूप, पंकपूरित, निस्सार, विस्फोट मच्छनेत्रजैसा, ओले जैसा ग्र थि युक्त मोती भारी व गोल होने पर भी वह कम मूल्य वाला है ।

पीयद्ध अयट्ठ तिहा सखुद्द छट्ठ सु खरड जह जुग्ग ।
सदोसे य दसंस इयराण दिट्ठए मुल्ल ॥ ५४ ॥

॥ इति मुत्ताहल परीक्षा ॥

—:०ॐ०:—

अथ पद्मरागमणि जथा :—

पउमराग जहा :—
रामा गग-नई-तड़ि सिंघलि कलसउरि तु वरे देसे ।
माणिक्काणुप्पत्ती विहु विहु पुण दोस गुण वन्ना ॥ ५५ ॥
पढमित्थ पउमराय सोगधिय नीलगंध कुरुविंद ।
जामुणिय पंच जाई चुन्निय माणिक्क नामेहिं ॥ ५६ ॥

५४ पीले का मूल्य आधा या तिहाइ, क्षुद्र का षष्ठांश, रुखे का यथा योग्य, सदोष का दसांश, दूसरे मोतियो के निगाह के अनुसार मूल्य करना ।

पद्मराग माणिक्य मणि :—

५५ रामा गगा नदी के तट, सिंहलद्वीप, कलशपुर, और तुंबर देश में माणिक्य उत्पन्न होते हैं, जिनके दोष, गुण, वर्ण आदि भिन्न भिन्न है ।

५६ पद्मराग १ सौगन्धिक २ नीलगध, ३ कुरुविंद, ४ जामुनिया ५ ये पाच जाति के चन्नी—माणिक्य नाम से जानना ।

सूरु व्व किरण पसरा सुसणिद्ध कोमलं च अग्गिनिहा ।
जं कणयसम कढिया अक्खीणा पउमरायं सा ॥ ५७ ॥

किंसुय कुसुम कसु भय कोइल-सारिस-चकोर अक्खि समं ।
दाडिम—बीज—निहं ज तमित्थ सोगंधिया नेया ॥५८॥

कमलालत्तय-विद्दुम-हिंगुलुयसमो य किंचि नीलाभो ।
खज्जोय—कंति—सरिसो इय वन्ने नीलगंधोय ॥ ५९ ॥

पढम तह साव गधय समप्पहं रंगबहुल कुरविंदा ।
पुण सत्तासं लहुयं सजल च इय सहाव—गुणं ॥ ६० ॥

जामुणिया विन्नेया जबू कणवीररत्तपुप्फसमा ।
मुल्लस्सतरमेय वीसं पनरस दस छ तिग विसुवा ॥६१॥

---

५७ सूर्य की तरह प्रसारित किरणो वाला, सुस्निग्ध, कोमल, अग्नि जैसा, तप्त स्वर्ण तुल्य और अक्षीण पद्मराग होता है ॥

५८ किंशुक के फूल, कसु भा, कोयल—सारस—चकोर की आख जैसा, अनारदाने जैसे र ग वाला सौगधिक जानना ।

५९ कमल, आलता, मू गा और ईंगुर के सदृश किंचित् नीलाभ और खद्योत काति जैसा नीलगध जानना ।

६० प्रथम (पद्मराग) व सौगंधिक जैसी प्रभा वाला, तेज र ग का कुरुविंद है । यह सत्ता मे छोटा और पानीदार होता है—ये कुरुविंद के स्वभाव गुण हैं ।

६१ जामुन और लालकनेर के फूल जैसे र ग का जामुनिया जानना । वीस, पन्द्रह, दस, छः और तीन वीस्वा मूल्य का अन्तर है ॥

सुच्छायं सुसणिद्धि किरणाभकोमलंच रंगिल्ल।
गरुयं सम महंतं माणिक्कं हवइ अट्ठगुण ॥ ६२ ॥
गयछायं जड धूम भिन्न ल्हसण सक्ककरं कढिण।
विपयं रुक्खं च तहा अड दोसा भणिय माणिक्के ॥ ६३ ॥
गुण पुवुन्न जहुत्ता माणिक्क दोस वज्जियं अमलं।
जो धरइ तस्स रज्जं पुत्तं अत्थ हवइ नूणं ॥ ६४ ॥
गुण सहिय पउमरायं धरिए नरनाह आवया टलइ।
सद्दोसेण उवज्जइ न संसय इत्थ जाणेह ॥ ६५ ॥
अगुण विवन्नच्छायं ल्हसण जुयं थड्डयं च खग्गं च।
इय माणिक्कं धरियं सुदेसभट्टं नरं कुणइ ॥ ६६ ॥

---

३२ सुछाया, सुस्निग्ध, किरणो सी काति, कोमल, रगदार, भारी दडक, सुडौल और बडा ये माणिक्य के आठ गुण होते हैं।

६३ गतछाय, जड धूप भेदा हुआ, दागी, कर्कर, कठिन, पानी-रहित और रूखा ये माणिक्य के आठदोष कहे गए हैं।

६४ पूर्वोक्त गुण वाले दोषवर्जित निर्मल माणिक को जो धारण करता है, उसको निश्चय करके राज्य, पुत्र, और धन की प्राप्ति होती है।

६५ गुणवाली पद्मराग मणि धारण करने से राजाओ की आपदाए टलती है और सदोष से आपदाएं उत्पन्न होती हैं यह निःशक रूप से जानना।

६६ गुणहीन, विवर्ण छायावाला, ल्हसण युक्त (दागी), घनीभूत (स्तब्ध) और तलवार के जैसा मानिक जो मनुष्य धारण करता है, वह देश भ्रष्ट होता है।

कर चरण वयण नयणं सु पउमरायं पइस्स जणयंती ।
तो वहइ पउमरायं पउमिणि सुय-पउम जणणत्थं ।। ६७ ।।
अहवट्टि उड्ढवट्टी तिरीयवट्टी य जा हवइ चुन्नी ।
सा अहमुत्तिम मज्झिम कूडा पुण सव्व मट्टी य ।। ६८ ।।
जो मणिवहिप्पएसे मुंचइ किरणं जहग्गि-गय - धूम ।
सा इंदकतिन्नेया चदोव्व सुहावहा सघणा ।। ६९ ।।
साणाइ पउमरायं जो छिज्जइ अंगुली छिविय कसिणा ।
तंच पहाउ सगब्भा चिप्पिडिया हवइ सा चुन्नी ।। ७० ।।

।। इति माणिक्क परीक्खा सम्मत्ता ।। ६ ।।

---

६७ पद्म सदश पुत्र को उत्पन्न करने के लिए पद्मिनी स्त्री पद्मराग (माणिक्य) को धारण करती है और पति से पद्मराग मणि के जैसे हाथ, पैर, मुख और नेत्रो वाले पुत्र को जन्म देती है ।

६८ जो चुन्नी अधवर्त्ती, उर्द्धवर्त्ती और तिर्यकवर्त्ती होती है, वह क्रमशः अधम उत्तम और मध्यम है और कूड़ा को सब मिट्टी जानना ।

६९ बाह्य प्रदेश मे जो निर्धूम अग्नि की तरह कान्ति फैलाती है, वह सघन चन्द्रकान्त मणि, चंद्र की तरह सुखावह जानना ।

७० रेती आदि से घिसने पर जो पद्मरागमणि छीजती है एवं अंगुली स्पर्श से ही दाग पड़ जाता है, उस प्रभा वाली सगर्भा चुन्नी को चिप्पडिया कहते हैं ।

माणिक्य परीक्षा समाप्त हुई

अथ मरगयं जहा :—

अवलिंद मलय पव्वय वव्वरदेसे य उवहितीरे य ।
गरुडस्स उरे कठे हवंति मरगय महामणिणो ॥ ७१ ॥

गरूडोदगार पढ़मा कीडउठी दुई य तईय वासउती ।
मूगउनी य चउत्थी धूलिमराई य पण जाई ॥ ७२ ॥

गरुडोदगार रम्मा नीलामल कोमला य विसहरणा ।
कीडउठि सुहमणिद्धा कसिणा हेमाभ कंतिल्ला ॥ ७३ ॥

वासवई य सरुक्खा नील हरिच कीरपुच्छ-समणिद्धा ।
मूगउनी पुण कठिणा कसिणा हरियाल सुसणेहा ॥ ७४ ॥

मरकत मणि :—

७१ अवलिंद , मलयाचल, बब्बरदेश व समुद्र तटमें, गरूड़हृदय व कण्ठ में मरकत महामणि होती है

७२ प्रथम गरूडोद्गार, दूसरी कीड़उठी, तीसरी बासवती, चौथी मूगउनी तथा पाचवी धूलिमराई ये पाच जातियां हैं ।

७३ गरुडोद्गार रम्य, नीलाम्ल कोमल और विष हरण करने वाली हैं । कीडउठी सुखमणि कृष्ण—हेमाभ काति वाली होती है ।

७४ वासवती रूक्ष, नील (हरी) तोते की पूँछ जैसी हरितवर्ण की तथा मूगउनी कठिन, काली हरतालवर्णकी तथा चिकनी होती है ।

धूलमराई गरूयां तह कठिण नील कच्च सारिच्छा ।
मुल्ल वीस विसोवा दस ट्ठ तह पच दुन्नि कमा ॥ ७५ ॥

रुक्ख विप्फोड़ पाहण मल कक्कर जठर सज्जरस तह य ।
इय सत्त दोस मरगय-मणीण ताणं फलं वोच्छं ॥ ७६ ॥

रुक्खाय वाहि-करणी विप्फोड़ा सत्थघार्य सजणणी ।
मलिण वहिरंधयारी पाहाणी बधु नासयरी ॥ ७७ ॥

कक्कर सहिय अउत्ता जठरा जाणेह सव्व-दोस-गिहं ।
सज्जरसा मामिच्चू मरगइ दोसाइं ताण फलं ॥ ७८ ॥

---

७५ धूलमराई भारी; कठिन और गहरे हरे काच सरखी होती है इन सब का २० विस्वे वाली का मूल्य क्रमशः दस, आठ पाच और दो (मुद्रा) जानना ।

७६ रुक्ष, विष्फोट, पत्थर, मैला, कंड़कंडा, जठर और सद्यरस ये सात दोष मरकत मणि के कहे । अब उनके फल कहता हूँ—

७७ रुक्ष व्याधिकारक, विष्फोटक शस्त्रघातोत्पादक, मलिन बहरा अधा करनेवाली और पथरीली बन्धुओ का नाश करने वाली होती है ।

७८ कर्कर दोषी अपुत्रक, जठरा सर्व दोषो की घर जानना, सद्यरसा माता की मृत्यु करने वाली है ।
ये मरकत मणि के दोष और उनके फल कहे ।

सुच्छायं सुसणिद्धं अणेरुयं तह लहुं च वन्नड्ढं ।
पंच गुणं विसहरणं मरगय मसराल लच्छिकरं ।। ७९ ।।
सूराभिमुह ठवियं कर उयरे मरगयंमि चिंतिज्जा ।
विप्फुरइ जस्स छाया पुन्न पवित्ता धुरीणा सा ।। ८० ।।

।। इति मरकत मणि परीक्खा सम्मता ।।

अथ इंद्रनीलं :-

सिंघलदीव समुब्भव महिंदनीला य चउसु वन्ना य ।
छ दोस पंच गुणाहि य तहेव नव छाय जाणेह ।। ८१ ।।

---

७९ अच्छी छाया वाला, सचिक्कन, प्रसरतकिरण (अनेकरूप), लघु, और वर्णाढ्य ये मरकतके पांच गुण विष हरने वाले और अपार लक्ष्मी देने वाले है ।

८० सूर्याभिमुख हृदय पर हाथ स्थापित कर मरकत मणि का ध्यान करना, फिर जिसकी छाया विस्फुरित हो वह प्रधान (मरकत मणि) पुण्य पवित्र है ।

इति मरकत मणि की परीक्षा समाप्त हुई ।

---

८१ सिंहलद्वीप में उत्पन्न महेन्द्रनील के चार वर्ण, छः दोष, पाच गुण और नौ छाया जानना ।

सियनीलाभ विप्पं नीलारुण खत्तियं वियाणाहि ।
पीयाभ—नील वइस घणनीलं हवइ तं सुद्दं ॥ ८२ ॥

अब्भय मंदि सकक्कर गब्भा-सत्तास जठर पाहणिया ।
समल सगार विवन्ना इय नीले होंति नव दोसा ॥ ८३ ॥

अब्भय दोस धणक्खय सक्करं वाहीउ मंदिए कुट्ठं ।
पाहणिए असिघायं भिन्नविवन्ने य सिंहभयं ॥ ८४ ॥

सत्तासे बंधुवह समल सगारे य जठर मित्तखयं।
नव दोसाणि फलाणि य महिंदनीलस्स भणियाइं ॥ ८५ ॥

---

८२ श्वेत नीलाभ विप्र, लाल नीलाभ क्षत्रिय, पीताभ नील वैश्य और घननीले (कृष्णनीले) रंग की शूद्र वर्ण वाली जानना ।

८३ अभरक, मंदिस, कडकडा गर्भ सत्रासी (दोषी) जठर, पथरीली, मलिन, सगार और विरंगा ये नीलम के नव प्रकार के दोष होते हैं ।

८४-८५ अभरक दोष धननाशक, कडकडा व्याधिकारक, मदे से कोढ, पथरीली से तलवारघात, भिन्न विरंगा सिंहभयदाता, सत्रासी से बन्धुवध एवं मलिन, सगार व जठर मित्रों का क्षय कराने वाला है । ये महेन्द्रनील के ९ दोष और उसके फल कहे ।

सुच्छायं सुसणिद्ध अणेरुयं तह लहुं च वन्नड्ढं ।
पंच गुणं विसहरणं मरगय मसराल लच्छिकरं ॥ ७९ ॥
सूराभिमुह ठवियं कर उयरे मरगयंमि चिंतिज्जा ।
विप्फुरइ जस्स छाया पुन्न पवित्ता धुरीणा सा ॥ ८० ॥

॥ इति मरकत मणि परीक्खा सम्मता ॥

अथ इंद्रनीलं :-

सिंघलदीव समुब्भव महिंदनीला य चउसु वन्ना य ।
छ दोस पंच गुणाहि य तहेव नव छाय जाणेह ॥ ८१ ॥

---

७९ अच्छी छाया वाला, सचिक्कन, प्रसरतकिरण (अनेकरूप), लघु, और वर्णाढ्य ये मरकतके पाच गुण विष हरने वाले और अपार लक्ष्मी देने वाले हैं ।

८० सूर्याभिमुख हृदय पर हाथ स्थापित कर मरकत मणि का ध्यान करना, फिर जिसकी छाया विस्फुरित हो वह प्रधान (मरकत मणि) पुण्य पवित्र है ।

इति मरकत मणि की परीक्षा समाप्त हुई ।

---

८१ सिंहलद्वीप में उत्पन्न महेन्द्रनील के चार वर्ण, छः दोष, पांच गुण और नौ छाया जानना ।

सियनीलाभं विप्पं नीलारुण खत्तियं वियाणाहि।
पीयाभ—नील वइस घणनीलं हवइ तं सुद्दं ॥ ८२ ॥

अब्भय मंदि सकक्कर गब्भा-सत्तास जठर पाहणिया।
समल सगार विवन्ना इय नीले होंति नव दोसा ॥ ८३ ॥

अब्भय दोस धणक्खय सक्करं वाहीउ मंदिए कुट्ठं।
पाहणिए असिघायं भिन्नविवन्ने य सिंहभयं ॥ ८४ ॥

सत्तासे बंधुवह समल सगारे य जठर मित्तखयं।
नव दोसाणि फलाणि य महिंदनीलस्स भणियाइं ॥ ८५ ॥

---

८२ श्वेत नीलाभ विप्र, लाल नीलाभ क्षत्रिय, पीताभ नील वैश्य और घननीले (कृष्णनीले) रग की शूद्र वर्ण वाली जानना।

८३ अभरक, मंदिस, कडकडा गर्भ सत्रासी (दोषी) जठर, पथरीली, मलिन, सगार और विरंगा ये नीलम के नव प्रकार के दोष होते हैं।

८४-८५ अभरक दोष धननाशक, कडकडा व्याधिकारक, मदे से कोढ, पथरीली से तलवारघात, भिन्न विरंगा सिंहभयदाता, सत्रासी से बन्धुवध एव मलिन, सगार व जठर मित्रों का क्षय कराने वाला है। ये महेन्द्रनील के ६ दोष और उसके फल कहे।

गरुयं तह य सुरंग सुसणिद्धं कोमलं सुरंजणय ।
इय पच गुण नीलं धरंति म (?स) णिकोव पसमति ॥ ८६ ॥
नील घण मोरकंठ य अलसी गिरिकन्न-कुसुम सकासा ।
अलि-पंख कसिण सामल कोइल-गीवाभ नव छाया ॥ ८७ ॥
हीरय चुन्निय माणिक मरगय नीलं च पंच रयणमय ।
इय धरिए जं पुन्नं हवइ न तं कोड़ि- दाणेण ॥ ८८ ॥

इति इन्द्रनील महापंचरयणुत्त्रयं

---

८६ भारी, सुरंगा, चिकना, कोमल और रंजक इन पांच गुणों वाले नीलम को धारण करने से शनि का कोप शान्त होता है।

८७ गहरा (घोर) नीला मेघवर्ण मोरकण्ठी, अलसी, गिरिकर्ण के फूल जैसी भ्रमरपंखी, काली, सावली और कोयल ग्रीवा जैसी ये नौ छाया कही है।

८८ हीरा, चुन्नी, मानिक, मरकत व नीलम इन पांच रत्नमय (आभरण) धारण करने से जो पुण्य होता है वह कोटि दान से भी नही।

अह विद्दुम ल्हसणियय वइडुज्जो फलिह पुसराओ य ।
कक्कैयग भीसम्मो भणिय इय सत्त रयणाणं ॥ ८९ ॥

विद्दुमं जहा :—

कावेर विंझपव्वइ चीण महाचीण उवहि नयपाले ।
वल्ली-रूव जायइ पवालयं कदनालमयं ॥ ९० ॥
[पाठान्तर :—वल्लीरूवं कत्थवि पवालय होइ उयहि मज्झम्मि ।
बहुरत्त कठिण कोमल जह नालं सव्व सुसणेहं ॥५०॥]

बहुरंगं सुसणिद्धं सुपसन्नं तह्य कोमल विमलं ।
घणवन्न वन्नरत्ता भूमिय पयं विद्दुम परम ॥ ९१ ॥

ल्हसणियओ जहा :—

नीलुज्जल पीयारुण छाया कतीइ फिरइ जस्सगे ।
त ल्हसणिय पहाण सिंघलदीवाउ सभूय ॥ ९२ ॥

---

८९ अब विद्रुम, ल्हसणिया, वैडूर्य, स्फटिक, पुखराज, कर्केतन और भीष्म इन सात रत्नो को कहता हूँ ।

९० कावेर, विन्ध्याचल, चीन, महाचीन, उदधि और नेपाल देश में वेलके रूप में प्रवाल, कंदनाल के साथ उत्पन्न होता है ।

९१ वहुरगा, चिकना, सुप्रसन्न, कोमल और निर्मल, घनवर्णा लाल रंगवाली भूमिसे उत्पन्न मूंगा उत्तम होता है ।

लहसनिया :—

९२ कान्ति से जिसकी छाया नील, श्वेत, पीली, लाल दिखायी देती है वह लहसणियापाषाण सिंहल द्वीप में उत्पन्न होता है ।

गरुयं तह य सुरंग सुसणिद्धं कोमलं सुरंजणय ।
इय पंच गुण नीलं धरंति म (?स) णिकोव पसमंति ॥ ८६ ॥
नील घण मोरकंठ य अलसी गिरिकन्न-कुसुम संकासा ।
अलि-पंख कसिण सामल कोइल-गीवाभ नव छाया ॥ ८७ ॥
हीरय चुन्निय माणिक मरगय नीलं च पंच रयणमय ।
इय धरिए जं पुन्नं हवइ न तं कोडि- दाणेण ॥ ८८ ॥

इति इन्द्रनील महापंचरयणुत्तयं

---

८६ भारी, सुरंगा, चिकना, कोमल और रंजक इन पांच गुणों वाले नीलम को धारण करने से शनि का कोप शान्त होता है।

८७ गहरा (घोर) नीला मेघवर्ण मोरकण्ठी, अलसी, गिरिकर्ण के फूल जैसी भ्रमरपंखी, काली, सावली और कोयल ग्रीवा जैसी ये नौ छाया कही है।

८८ हीरा, चुन्नी, मानिक, मरकत व नीलम इन पांच रत्नमय (आभरण) धारण करने से जो पुण्य होता है वह कोटि दान से भी नहीं।

अह विद्दुम ल्हसणियय वइडुज्जो फलिह पुंसराओ य।
कक्केयंग भीसम्मो भणिय इय सत्त रयणाण ॥ ८९ ॥

विद्दुमं जहा :—

कावेर विंझपव्वइ चीण महाचीण उवहि नयपाले।
वल्ली-रूव जायइ पवालयं कदनालमयं ॥ ९० ॥
[पाठान्तर :—वल्लीरूवं कत्थवि पवालय होइ उयहि मज्झम्मि।
बहुरत्त कठिण कोमल जह नालं सव्व सुसणेहं ॥५०॥]
बहुरंगं सुसणिद्धं सुपसन्नं तहय कोमल विमल।
घणवन्न वन्नरत्ता भूमिय पय विद्दुम परम ॥ ९१ ॥

ल्हसणियओ जहा :—

नीलुज्जल पीयारुण छाया कतीइ फिरइ जस्सगे।
त ल्हसणियं पहाण सिंघलदीवाउ सभूय ॥ ९२ ॥

---

८९ अब विद्रुम, ल्हसणिया, वैडूर्य, स्फटिक, पुखराज, कर्केतन और भीष्म इन सात रत्नो को कहता हूँ।

९० कावेर, विन्ध्याचल, चीन, महाचीन, उदधि और नेपाल देश में वेलके रूप मे प्रवाल, कंदनाल के साथ उत्पन्न होता है।

९१ बहुरगा, चिकना, सुप्रसन्न, कोमल और निर्मल, घनवर्णा लाल रंगवाली भूमिसे उत्पन्न मूंगा उत्तम होता है।

लहसनिया :—

९२ कान्ति से जिसकी छाया नील, श्वेत, पीली, लाल दिखायी देती हैं वह लहसणियापाषाण सिंहल द्वीप में उत्पन्न होता है।

गरुयं तह य सुरंग सुसणिद्धं कोमलं सुरंजणय ।
इय पच गुणं नीलं धरंति म (?स) णिकोव पसमति ॥ ८६ ॥
नील घण मोरकंठ य अलसी गिरिकन्न-कुसुम संकासा ।
अलि-पंख कसिण सामल कोइल-गीवाभ नव छाया ॥ ८७ ॥
हीरय चुन्निय माणिक मरगय नीलं च पंच रयणमय ।
इय धरिए जं पुन्नं हवइ न त कोडि- दाणेण ॥ ८८ ॥

इति इन्द्रनील महापंचरयणुत्तयं

---

८६ भारी, सुरंगा, चिकना, कोमल और रंजक इन पांच गुणों वाले नीलम को धारण करने से शनि का कोप शान्त होता है ।

८७ गहरा (घोर) नीला मेघवर्ण, मोरकण्ठी, अलसी, गिरिकर्ण के फूल जैसी भ्रमरपंखी, काली, सावली और कोयल ग्रीवा जैसी ये नौ छाया कही है ।

८८ हीरा, चुन्नी, मानिक, मरकत व नीलम इन पांच रत्नमय (आभरण) धारण करने से जो पुण्य होता है वह कोटि दान से भी नही ।

अह विद्रुम ल्हसणियय वइडुज्जो फलिह पुसराओ य।
कक्केयग भीसम्मो भणिय इय सत्त रयणाणं ॥ ८९ ॥

विद्रुमं जहा :—

कावेर विझपव्वइ चीण महाचीण उवहि नयपाले।
वल्ली-रूव जायइ पवालयं कदनालमयं ॥ ९० ॥
[पाठान्तर :—वल्लीरुवं कत्थवि पवालय होइ उयहि मज्झम्मि।
वहुरत्त कठिण कोमल जह नालं सव्व सुसणेहं ॥५० ॥]
वहुरंग सुसणिद्धं सुपसन्नं तहय कोमल चिमल।
घणवन्न वन्नरत्ता भूमिय पय विद्रुम परम ॥ ९१ ॥

ल्हसणियओ जहा :—

नीलुज्जल पीयारुण छाया कतीइ फिरइ जस्संगे।
त ल्हसणिय पहाण सिंघलदीवाउ सभूय ॥ ९२ ॥

---

८९ अब विद्रुम, ल्हसणिया, वैडूर्य, स्फटिक, पुखराज, कर्कतन और भीष्म इन सात रत्नो को कहता हूं।

९० कावेर, विन्ध्याचल, चीन, महाचीन, उदधि और नेपाल देश मे बेलके रूप में प्रवाल, कांदनाल के साथ उत्पन्न होता है।

९१ बहुरंगा, चिकना, सुप्रसन्न, कोमल और निर्मल, घनवर्णा लाल रंगवाली भूमिसे उत्पन्न मूंगा उत्तम होता है।

ल्हसनिया :—

९२ कान्ति से जिसकी छाया नील, श्वेत, पीली, लाल दिखायी देती है वह ल्हसणियापाषाण सिंहल द्वीप में उत्पन्न होता है।

गरुयं तह य सुरंग सुसणिद्धं कोमलं सुरंजणय ।
इय पच गुणं नीलं धरंति म (?स) णिकोव पसमंति ॥ ८६ ॥
नील घण मोरकंठ य अलसी गिरिकन्न-कुसुम संकासा ।
अलि-पंख कसिण सामल कोइल-गीवाभ नव छाया ॥ ८७ ॥
हीरय चुन्निय माणिक मरगयं नीलं च पंच रयणमय ।
इय धरिएं जं पुन्नं हवइ न त कोडि- दाणेण ॥ ८८ ॥

इति इन्द्रनील महापंचरयणुश्चयं

---

८६ भारी, सुरंगा, चिकना, कोमल और रंजक इन पांच गुणों वाले नीलम को धारण करने से शनि का कोप शान्त होता है ।

८७ गहरा (घोर) नीला मेघवर्ण, मोरकण्ठी, अलसी, गिरिकर्ण के फूल जैसी भ्रमरपंखी, काली, सावली और कोयल ग्रीवा जैसी ये नौ छाया कही है ।

८८ हीरा, चुन्नी, मानिक, मरकत व नीलम इन पांच रत्नमय (आभरण) धारण करने से जो पुण्य होता है वह कोटि दान से भी नही ।

अह विद्दुम ल्हसणियय वइडुज्जो फलिह पुसराओ य।
कक्केयग भीसम्मो भणिय इय सत्त रयणाण ॥ ८९ ॥

विद्दुमं जहा :—

कावेर विंझपव्वइ चीण महाचीण उवहि नयपाले।
वल्ली-रूव जायइ पवालयं कदनालमयं ॥ ९० ॥
[पाठान्तर :—वल्लीरूवं कत्थवि पवालय होइ उयहि मज्झम्मि।
बहुरत्त कठिण कोमल जह नालं सव्व सुसणेह ॥५०॥]
बहुरंगं सुसणिद्धं सुपसन्नं तहय कोमल विमल।
घणवन्न वन्नरत्ता भूमिय पयं विद्दुमं परमं ॥ ९१ ॥

ल्हसणियओ जहा :—

नीलुज्जल पीयारुण छाया कतीइ फिरइ जस्सगे।
त ल्हसणिय पहाण सिंघलदीवाउ संभूय ॥ ९२ ॥

---

८९ अब विद्रुम, ल्हसणिया, वैडूर्य, स्फटिक, पुखराज, कर्केतन और भीष्म इन सात रत्नो को कहता हूँ।

९० कावेर, विन्ध्याचल, चीन, महाचीन, उदधि और नेपाल देश मे बेलके रूप मे प्रवाल, कंदनाल के साथ उत्पन्न होता है।

९१ बहुरगा, चिकना, सुप्रसन्न, कोमल और निर्मल, घनवर्णा लाल रंगवाली भूमिसे उत्पन्न मूंगा उत्तम होता है।

लहसनिया :—

९२ कान्ति से जिसकी छाया नील, श्वेत, पीली, लाल दिखायी देती हैं वह लहसणियापाषाण सिंहल द्वीप मे उत्पन्न होता है।

गरुयं तह य सुरंग सुसणिद्धं कोमल सुरंजणय ।
इय पच गुण नीलं धरंति म (?स) णिकोव पसमति ॥ ८६ ॥
नील घण मोरकठ य अलसी गिरिकन्न-कुसुम सकासा ।
अलि-पंख कसिण सामल कोइल-गीवाभ नव छाया ॥ ८७ ॥
हीरय चुन्निय माणिक मरगयं नीलं च पच रयणमय ।
इय धरिएं जं पुन्नं हवइ न त कोड़ि- दाणेण ॥ ८८ ॥

इति इन्द्रनील महापंचरयणुच्चयं

---

८६ भारी, सुरंगा, चिकना, कोमल और रंजक इन पांच गुणों वाले नीलम को धारण करने से शनि का कोप शान्त होता है ।

८७ गहरा (घोर) नीला मेघवर्ण, मोरकण्ठी, अलसी, गिरिकर्ण के फूल जैसी भ्रमरपंखी, काली, सावली और कोयल ग्रीवा जैसी ये नौ छाया कही है ।

८८ हीरा, चुन्नी, मानिक, मरकत व नीलम इन पांच रत्नमय (आभरण) धारण करने से जो पुण्य होता है वह कोटि दान से भी नही ।

अह विद्दुम ल्हसणियय वइडुज्जो फलिह पुसराओ य ।
कक्केयग भीसम्मो भणिय इय सत्त रयणाण ॥ ८९ ॥

विद्दुमं जहा :—

कावेर विंझपव्वइ चीण महाचीण उवहि नयपाले ।
वल्ली-रूव जायइ पवालयं कदनालमयं ॥ ९० ॥
[पाठान्तर :—वल्लीरूवं कत्थवि पवालय होइ उयहि मज्झम्मि ।
बहुरत्त कठिण कोमल जह नालं सव्व सुसणेहं ॥५०॥]

बहुरंगं सुसणिद्ध सुपसन्न तहय कोमल विमलं ।
घणवन्न वन्नरत्ता भूमिय पयं विद्दमं परमं ॥ ९१ ॥

ल्हसणियओ जहा :—

नीलुज्जल पीयारुण छाया कतीइ फिरइ जस्सगे ।
त ल्हसणिय पहाण सिंघलदीवाउ संभूय ॥ ९२ ॥

---

८९ अब विद्रुम, ल्हसणिया, वैडूर्य, स्फटिक, पुखराज, कर्केतन और भीष्म इन सात रत्नो को कहता हूँ ।

९० कावेर, विन्ध्याचल, चीन, महाचीन, उदधि और नेपाल देश में बेलके रूप मे प्रवाल, कंदनाल के साथ उत्पन्न होता है ।

९१ बहुरगा, चिकना, सुप्रसन्न, कोमल और निर्मल, घनवर्णा लाल रंगवाली भूमिसे उत्पन्न मूगा उत्तम होता है ।

लहसनिया :—

९२ कान्ति से जिसकी छाया नील, श्वेत, पीली, लाल दिखायी देती हैं वह लहसणियापाषाण सिंहल द्वीप मे उत्पन्न होता है ।

इक्कोविय ल्हसणियओ अदोस अइ चुक्खओ विरालक्खो।
नवगह रयण सम गुणो भणंति तं सपुलिय केवि ॥ ६३ ॥

वइडुज्जं जहा :—

कुवियं गय देसोवहि वइडूरनगेसु हवइ वइडुज्जं ।
वंसदलाभं नीलं वीरिय-सताण-पोसयरं ॥ ६४ ॥
[पाठान्तर-रयणायरस्स मज्झे कुवियगय नाम जणवओतत्थ।
वइडूर नगे जायइ वइडुज्ज वस पत्ताभं ॥ ५१ ॥]

फलिहं जहा :—

नयवाल कासमीरे चीणे कावेरि जउण-नइ तीरे।
विंझगिरि हुंति फलिहं अइ निम्मल दप्पणुव्व सियं ॥ ६५ ॥
[पाठान्तर—नयवाले कसमीरे चीणे कावेरि जउण नई कूले।
विंझ नगे उप्पज्जइ फलिहं अइ निम्मलं सेयं ॥ ५४ ॥

---

६३ एक भी लहसनिया अच्छी, निर्दोष और बिल्लीकी आंख जैसी हो तो नवग्रह रत्न के बराबर गुणवाली है। कोई इसको पुलकित कहते हैं, क्योंकि इसमे रेखाएं फिरती हुई दिखाई देती है।

वैडूर्य :—

६४ कुवियगत (कोग) देश के समुद्र मे तथा वैडूर्य नाम के पर्वत में वैडूर्य होता है। बास के पत्ते जैसा नीला, एवं सन्तान वीर्य को पुष्टि करने वाला होता है।

स्फटिक :—

६५ नेपाल, काश्मीर, चीन, कावेरी और यमुना नदी के तट पर एवं विन्ध्याचल में दर्पण की तरह अत्यन्त निर्मल और श्वेत स्फटिक होता है।

रविकंताओ अग्गी ससिकंताओ झरेइ अमिय जलं।

रविकंत चंदकंते दुन्निवि फलिहाउ जायंति॥ ९६॥

[पाठान्तर-उप्पत्तीओ अग्गी ससिकंतिओ झरेइ अमिय जलं।

रविकंत चंदकंते दुन्निवि फलिहाओ जायति॥ ५५॥]

पुंस्सरायं जहा :—

बहु पीय-कणय-वन्नो ससणिद्धो पुंसराओ हिमवंते।

जायइ जो धरइ सया तस्स गुरु हवइ सुपसन्नो॥ ९७॥

[पाठान्तर-बहुपीय रूहिर वण्णो ससिणेहो होइ पुसराओय

भीममु विण चंद समो दुन्निवि जायंति हिमवंतो॥ ५६॥]

---

९६ सूर्यकात से अग्नि, चन्द्रकान्त से अमृतजल झरता है। सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त दोनो रत्न स्फटिक से उत्पन्न होते हैं।

पुखराज :—

९७ सोने जैसा गहरा पीला,सुस्निग्ध पुखराज हिमवंत (पर्वत) में उत्पन्न होता है। जो सदा धारण करें, उसके गुरू—वृहस्पति सुप्रसन्न होते हैं।

कक्केयणं जहा :—

पचणुप्पट्ठाण देसे जायइ कक्केयण सुखाणीओ ।
ताबय सुपक्क महुवय नीलाभ सदिड्ढ सुसणिद्ध ॥ ६८ ॥
[पाठान्तर-पवणुत्थ ठाण देसे, जायइ कक्केयगं सुखाणिओ ।
तंबय सुपक्क महुय चय नीलाभं सुदिढ़ सुसणेह ॥ ५२ ॥]

भीसम जहा—

भीसमु दिणचद समो पडुरओ हेमवत संभूओ ।
जो धरइ तस्स न हवइ पाएण अग्गि विज्जुभयं ॥ ६९ ॥

इति रयण सप्तकं ॥ छ ॥

कर्कैतन :—

६८ पवणु और पठान देश की खानो मे कर्कैतन उत्पन्न होता है जो ताबे और पक्के महुए जैसे नीलाभ रंग का सुदृढ और चिक्कन होता है ।

भीसम :—

६९ सूर्य जैसा पीत मिश्रित श्वेत वर्ण का भीष्म, हिमवंत मे उत्पन्न होता है । जो धारण करता है उसे प्रायः करके अग्नि और विद्युत का भय नही होता ।

सिरि नाय कुल परेवग देसे तह्य नव्वयानई मज्झे।
गोमेय इंद गोव सुसणिद्ध पडुरं पीय ॥ १०० ॥

[पाठान्तर-सिरिनायकुलपरेवस देसे तह जम्मल नई मज्झे।
गोमेय इंदगोव सुसणेह पडुरं पीयं ॥ ५३ ॥]

गुण सहिया मल रहिया मगल जणयाय लच्छि आवासा।
विग्घहरा देवपिया रयणा सव्वेवि सपहाया ॥ १०१ ॥

मुत्तिय वज्ज पवालय तिन्निवि रयणाणि भिन्न जाईणि।
वन्नवि जाइ विसेसो सेसा पुण भिन्न जाईओ ॥ १०२ ॥

इय-सत्थुत्तर सत्तुत्तम रयणा भणिय भणामित्थ पारसी रयणा।
वन्नागर-संजुत्ता लाल अकीया य पेरुज्जा ॥ १०३ ॥
[पाठान्तर-इय सत्थुत्तयरन्ना भणिय, भणामित्थ पारसी रयणा
वण्णागर संजुत्ता- अन्ने जे धाउसजाया ॥ ५७]

---

१०० श्री नायकुल परेवग देश मे तथा नर्मदा नदी मे गोमेदक इंद्रगोप सचिक्कन एवं-श्वेत-पीत रग का होता है।
१०१ गुण संपन्न, निर्मल, मंगलकारी और लक्ष्मी के आवास भूत सभी रत्न- विघ्ननाशक, देवताओ के प्रिय और सप्रभाव हैं।
१०२ मोती, हीरा और प्रवाल तीनो ही भिन्न जातीय रत्न है। वर्ण भी जाति विशेष से सम्बधित है और अवशिष्ट भी भिन्न जाति के होते हैं।
१०३ इन शास्त्रोक्त रत्नो को बतलाया। अब लाल अकीक, पिरोजा आदि पारसी रत्नो को रग और खान सहित बतलाता हूँ।

कक्केयणं जहा :—

पवणुप्पट्ठाण देसे जायइ कक्केयण सुखाणीओ ।
टावय सुपक्क महुवय नीलाभ सदिढ्ढ सुसणिद्धं ॥ ६८ ॥
[पाठान्तर-पवणुत्थ ठाण देसे, जायइ कक्केयगं सुखाणिओ ।
तंबय सुपक्क महुयं चय नीलाभं सुदिढ सुसणेहं ॥ ५२ ॥]

भीसम जहा—

भीसमु दिणचद समो पडुरओ हेमवत सभूओ ।
जो धरइ तस्स न हवइ पाएण अग्गि विज्जुभयं ॥ ६९ ॥

इति रयण सप्तकं ॥ छ ॥

कर्केतन :—

६८ पवणु और पठान देश की खानो मे कर्केतन उत्पन्न होता है जो तावे और पक्के महुए जैसे नीलाभ रग का सुदृढ और चिक्कन होता है ।

भीसम :—

६९ सूर्य जैसा-पीत मिश्रित श्वेत वर्ण का भीष्म, हिमवंत मे उत्पन्न होता है । जो धारण करता है उसे प्रायः करके अग्नि और विद्युत का भय नही होता ।

सिरि नाय कुल परेवग देसे तहय नव्वयानई मज्झे।
गोमेय इंद गोव सुसंणिद्ध पडुरं पीय ॥ १०० ॥

[पाठान्तर-सिरिनायकुलपरेवस देसे तह जम्मल नई मज्झे।
गोमेय इंदगोव सुसणेह पडुरं पीयं ॥ ५३ ॥]

गुण सहिया मल रहिया मंगल जणयाय लच्छि आवासा।
विग्घहरा देवपिया रयणा सव्वेवि सपहाया ॥ १०१ ॥

मुत्तिय वज्ज पवालय तिन्निवि रयणाणि भिन्न जाईणि।
वन्नवि जाइ विसेसो सेसा पुण भिन्न जाईओ ॥ १०२ ॥

इय सत्थुत्तर सत्तुत्तम रयणा भणिय भणामित्थ पारसी रयणा।
वन्नागर-संजुत्ता लाल अकीया य पेरुज्जा ॥ १०३ ॥
[पाठान्तर-इय सत्थुत्तयरन्ना भणिय, भणामित्थ पारसी रयणा
वण्णागर संजुत्ता अन्ने जे धाउसंजाया ॥ ५७]

---

१०० श्री नायकुल परेवग देश मे तथा नर्मदा नदी मे गोमेदक इद्रगोप सचिक्कन एवं श्वेत-पीत रग का होता है।

१०१ गुण सपन्न, निर्मल, मंगलकारी और लक्ष्मी के आवास भूत सभी रत्न विघ्ननाशक, देवताओ के प्रिय और सप्रभाव हैं।

१०२ मोती, हीरा और प्रवाल तीनो ही भिन्न जातीय रत्न है। वर्ण भी जाति विशेष से सम्बधित है और अवशिष्ट भी भिन्न जाति के होते हैं।

१०३ इन शास्त्रोक्त रत्नो को वतलाया। अव लाल अकीक, पिरोजा आदि पारसी रत्नो को रंग और खान सहित बतलाता हूँ।

अइतेय-अग्गिवन्नं लालं वंदं खसाण देसंमि।
जमण-देसे यकीकं लहु मुल्लं पिल्ल-सम-रंगं॥ १०४॥

[पाठान्तर-अइतेय अग्गी वण्णं, लालं वद्दक्खसाए देसम्मि।
यमण देसे यकीकं लहु मुल्लं पिल्लु समरंगं ॥ ५८]

नीलाभल पेरुज्जं देसे नीसावरे मुवासीरे।
उत्पज्जइ खाणीओ दिट्ठिस्स गुणावहं भणियं ॥ १०५ ॥

इति वज्रादि सर्वरत्नानां स्थान ज्ञाति सरूपाणि समाप्तः ॥ छ ॥

[पाठान्तर—नीलनिहं पेरुज्जं देसे, नीसावगे गुवासीरे।
उप्पज्जइखाणीओ दिट्ठिस्स गुणावहं भणियं ॥ ५६ ॥]

---

१०४ अति तेज अग्नि जैसे वर्ण की लाल, बदख्शाँ देश में तथा पीलू जैसे रंग का अकीक, यमन देश मे अल्पमूल्य वाला होता है।

१०५ गहरे हरे रग का पिरोजा, नीसावर और मुवासीर की खानो में उत्पन्न होता है, नजर से देखकर गुण आदि कहना चाहिए। यहां हीरा आदि सब रत्नो के स्थान, जाति, स्वरूपादि समाप्त हुए।

अथैतेषामेव मूल्यानि वक्ष्यंते यथाह—पुनः भावानुसारेण-यथाः—

जे सत्थ-दिट्ठि कुसला अणुभूया देस काल भावन्नू ।
जाणिय रयणसरूवा मंडलिया ते भणिज्ज ंति ॥ १०६ ॥
हीणंग अ ंतजाई लक्खण सत्तुज्झया फुड कलंका ।
अय जाण माणया विहु मंडलिया ते न कईयावि ॥ १०७ ॥
मंडलिय रयण दट्ठु ं परोप्परं मेलिऊण करसन्नं ।
जंपंति नाम मुल्लं जाम सहा सम्मय होइ ॥ १०८ ॥
धणिओ अमुणिय मुल्लो हीणहियं मुणइ तस्स नहु दोसो ।
मंडलिय अलिय मुल्लं कुणति जे ते न नंदति ॥ १०९ ॥

अब उनके मूल्य कहे जाते हैं, फिर जैसे भावानुसार हो यथा—

१०६ जो शास्त्रज्ञ, दृष्टिकुशल, अनुभवी, देशकाल-भाव के ज्ञाता, एवं रत्नो के स्वरूप के जानकार हैं वे मंडलिक-जौहरी कहलाते हैं ।

१०७ हीनांग, नीच जाति, लक्षण तथा सत्त्व रहित, स्पष्ट कल ंकित व्यक्ति ज्ञाता और मान्य होने पर भी मडलिक-जौहरी कभी नही ।

१०८ जौहरी रत्न देखकर, परस्पर हाथ की संज्ञा मिलाकर जब सभा सम्मत हो तब मूल्य कहे ।

१०९ रत्न का मालिक विना जाने ही नाधिक मूल्य भी कहे तो उसे दोष नही, पर जो जौहरी झूठा मोल करे वह सुखी नही होता ।

अइतेय-अग्गिवन्नं लालं वंदं खसाण देसंमि।
जमण-देसे यकीकं लहु मुल्लं पिल्ल-सम-रंगं॥ १०४॥

[पाठान्तर-अइतेय अग्गी वण्ण, लालं वद्दक्खसाए देसम्मि।
यमण देसे यकीकं लहु मुल्लं पिल्लु समरंगं॥ ५८]

नीलामल पेरुज्जं देसे नीसावरे मुवासीरे।
उत्पज्जइ खाणीओ दिट्ठिस्स गुणावहं भणियं॥ १०५॥

इति वज्रादि सर्वरत्नानां स्थान ज्ञाति सरूपाणि समाप्तः॥ छ॥

[पाठान्तर—नीलनिहं पेरुज्जं देसे, नीसावरे गुवासीरे।
उप्पज्जइखाणीओ दिट्ठिस्स गुणावहं भणियं॥ ५९॥]

---

१०४ अति तेज अग्नि जैसे वर्ण की लाल, बदख्शाँ देश में तथा पीलू जैसे रग का अकीक, यमन देश में अल्पमूल्य वाला होता है।

१०५ गहरे हरे रग का पिरोजा, नीसावर और मुवासीर की खानो में उत्पन्न होता है, नजर से देखकर गुण आदि कहना चाहिए। यहां हीरा आदि सब रत्नो के स्थान, जाति, स्वरूपादि समाप्त हुए।

अथैतेषामेव मूल्यानि वक्ष्यंते यथाह—पुनः भावानुसारेण-यथाः—

जे सत्थ-दिट्ठि कुसला अणुभूया देस काल भावन्नू ।
जाणिय रयणसरूवा मंडलिया ते भणिज्जंति ॥ १०६ ॥
हीणंग अंतजाई लक्खण सत्तुज्झया फुड कलंका ।
अय जाण माणया विहु मंडलिया ते न कईयावि ॥ १०७ ॥
मंडलिय रयण दट्ठुं परोप्परं मेलिऊण करसन्नं ।
जंपंति नाम मुल्लं जाम सहा सम्मयं होइ ॥ १०८ ॥
धणिओ अमुणिय मुल्लो हीणहियं मुणइ तस्स नहु दोसो ।
मंडलिय अलिय मुल्लं कुणंति जे ते न नंदति ॥ १०९ ॥

अब उनके मूल्य कहे जाते है, फिर जैसे भावानुसार हो यथा.—

१०६ जो शास्त्रज्ञ, दृष्टिकुशल, अनुभवी, देशकाल-भाव के ज्ञाता, एवं रत्नो के स्वरूप के जानकार हैं वे मंडलिक-जौहरी कहलाते है ।

१०७ हीनांग, नीच जाति, लक्षण तथा सत्त्व रहित, स्पष्ट कलकित व्यक्ति ज्ञाता और मान्य होने पर भी मडलिक-जौहरी कभी नही ।

१०८ जौहरी रत्न देखकर, परस्पर हाथ की संज्ञा मिलाकर जब सभा सम्मत हो तब मूल्य कहे ।

१०९ रत्न का मालिक बिना जाने ही नाधिक मूल्य भी कहे तो उसे दोष नही, पर जो जौहरी भूठा मोल करे वह सुखी नही होता ।

अहमस्स अहिय मुल्लं उत्तमरयणस्स हीण मुल्लं च ।
जे मय-लोह-वसाओ कुणति ते कुट्ठिया होंति ॥ ११० ॥

रयणाण दिट्ठ मुल्ल निरुद्ध वद्धं न होइ कईयावि ।
तहवि समयाणुसारे ज वट्टइ तं भणामि अहं ॥ १११ ॥

तिहु राइएहिं सरिसम छहि सरिसम तदुलोय बिउण जवो ।
सोलस जवेहि छहि गुंजि मासओ तेहिं चहु टंको ॥ ११२ ॥

एगाई जाव बारस तिग वुड्ढी जाम गुंज चउवीसं ।
चउ रयणाणं मुल्लं तोलीण सुवन्न टंकेहिं ॥ ११३ ॥

---

११० नीच रत्न का अधिक मूल्य, उत्तम रत्न का हीन मूल्य जो मद एव लोभ के वशीभूत होकर कहते है वे कोढी होते हैं ।

१११ रत्नो का मूल्य बांधा हुआ नही होता, पर नजर के अनुसार है, फिर भी समयानुसार जो मूल्य है वह मैं कहता हूँ ।

११२ तीन राई का एक सरसो, छः सरसो का एक तंडुल, दो तंडुल का एक ज़ौ, सोलह जौ अथवा छः गुंजा (रत्ती) का एक मासा और चार मासे का एक टाक होता है ।

११३ एक से बारह तक और फिर तीन तीन बढ़ती हुई चौवीस रत्ती (गुंजा) तक चारो रत्नो के मूल्य तोल करके स्वर्ण टका (मुद्रा) से बतलाना ।

पच दुवालस वीसा तीसा पन्नास पचसयरी य ।
दसहिय चउसट्ठि सयं दो चाला तिसय वीसास ॥ ११४ ॥
चारिसय तहय छहसय चउदस सय उवरि विउण विउणं जा ।
इक्कारसहस दुगसय मुल्लमिणं इक्क हीरस्स ॥ ११५ ॥
अद्ध इग दु चउ अट्ठय पनरस पणवीस याल सट्ठी य ।
चुलसीइ चउ दसुत्तर सयं च कमसो य सट्ठिसयं ॥ ११६ ॥
तिन्निसय सट्ठि समहिय सत्तसया तहय वारससयाय ।
दो सहस कणय टंका मुत्तिय मुल्लं वियाणेहिं॥ ११७ ॥

११४।११५ पाच, बारह, बीस, तीस, पचास, पचहत्तर, एक सौ दस एक सौ चौसठ, दो सौ चालीस, तीन सौ बीस, चार सौ, छः सौ, चौदह सौ, फिर उसके ऊपर मे दूना दूना (अठाइस सौ, पांच हजार छः सौ) करके ग्यारह हजार दो सौ स्वर्ण (टका) एक हीरे का मूल्य जानना ।

११६।११७ आधा, एक, दो, चार, आठ, पन्द्रह, पचीस, चालीस, साठ, चौरासी, एक सौ चौदह और क्रमशः एक सौ साठ तीन सौ साठ, उससे अधिक सात सौ, वारह सौ फिर दो हजार स्वर्णटंका मोती का मल्य जानना ।

दो पंच अट्ठ बारस अट्ठार छवीसा य [याल] सट्ठीय ।
पंचासी वीसासउ सट्ठि सयं दुसय वीसा य ॥ ११८ ॥

चउसय वीसा अडसय चउदस चउवीस पिहु पिहु सयाणि ।
गुंजाइ [मास ?] टकं उत्तिम माणिक्क मुल्लुवरं ॥ ११६ ॥

पायद्ध एग दिवढं दु ति चउ पण छग्ग अट्ठ दह तेरं ।
ठार सगवीस चत्ता सट्ठि महामरगयमणीणं ॥ १२० ॥

अस्यार्थं एष पत्र पूठि यंत्रेणाह ॥ छ ॥ छ ॥

११८।११६ दो, पाँच, आठ, बारह, अठारह, छब्बीस, साठ, पचासी, एक सौ बीस, एक सौ साठ, दो सौ बीस, चार सौ बीस, आठ सौ, चौदह सौ, चौबीस सौ तक (उपर कथित रत्ती के हिसाब से) उत्तम माणिक्य का मूल्य स्वर्ण टंको से जानना ।

१२० पाव, आधा, एक, ड्योढ, दो, तीन, चार, पाँच, छः, आठ दस, तेरह, अठारह, सताईस, चालीस और साठ क्रमशः मरकत मणि का मूल्य है ।

इन ११२ से १२० गाथा तक का भावार्थ पीछे दिये हुए यत्र से समझना ।

गुंजा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१५	१८	२१	२४
हीरा	५	१२	२०	३०	५०	७५	११०	१६०	२४०	३२०	४००	६००	१४००	२८००	५६००	११२००
मोती	०।।	१	२	४	८	१५	२५	४०	६०	८४	११४	१६०	३६०	७००	१२००	२०००
माणिक	२	५	८	१२	१८	२६	४०	६०	८५	१२०	१६०	२२०	४२०	८००	१४००	२४००
मराइ	०।	०।।	१	१।।	२	३	४	५	६	८	१०	१३	१८	२७	४०	६०

[अस्य यंत्र अर्थं गाह ११२ और गाह १२० जाव ३ जाणनीय ।। छ ।।]

अर्द्धमासाय अहियं मास य अद्धद्ध जाम चउ मासं ।
तोलीण हेमटंकिहिं मुल्लु कमेण सुरयणाण ।। १२१ ।।

१२१ आधे मासे से लेकर उससे अधिक आधा-आधा मासा बढाते ४ मासो तक वजन वाले सुरलो का मूल्य क्रमशः स्वर्ण मुद्रा से है।

एग दुसढ छ नवग पनरस चउवीस तहय चउतीसं।
पन्नास लालमुल्ल पउणं एयाउ ल्हसणिययं ॥ १२२ ॥

पा अद्ध पउण एगं दु पंच अट्ठेव तहय पन्नरसं।
इय इंदनील मुल्लं तहेव पेरोजयस्स पुणो ॥ १२३ ॥

अस्यार्थ जंत्रो यथा :-

मासा	०॥	१	१॥	२	२॥	३	३॥	४
लाल	१	२॥	६	९	१५	२४	३४	५०
ल्हसणी	०॥।	१॥२॥	४॥	६॥।	११।	१८	२५॥	३७॥
इंद्रनील	०।	०॥	०॥।	१	२	५	८	१५
पेरोजा	०।	०।	०॥।	१	२	५	८	१५

---

१२२ एक, ढाई, छः, नौ, पन्द्रह, चौबीस, चौतीस, और पचास ये लाल के मूल्य हैं तथा ल्हसणिया का मूल्य इससे पौना जानना।

१२३ इन्द्रनील और पिरोजा का मूल्य पाव, आधी, पौन, एक, दो, पाच, आठ और पद्रह स्वर्णमुद्राएं है। इनका अर्थ भी यंत्र से समझना।।

सिरि बद्ध गुण अद्ध पायं अणुसार पाय करडं च ॥ १२४ ॥
टंकिक्क जे तुलंती मुत्ताहल त भणामि अहं ।
दस वारस पन्नरसा वीस पणवीस तीस चालीसा ।
पन्नार[स] सत्तर सयं चडंति टंकिक्कि तह मुल्ल ॥ १२५ ॥
पन्नास चालीस तीस वीस च तहय पन्नरस ।
वारस दस ट्ठ पणतिय इय मुल्लं रूप्पटंकेहिं ॥ १२६ ॥

॥ इति मुत्ताहलं ॥

अथ वज्र जथा :-

एगाइ जाम बारस तुलंति गु जिक्कि वज्ज ताण मिमं ।
मुल्लं मंडलिएहिं ज भणियं तं भणिस्सामि ॥ १२७ ॥

---

१२४ हाथी के कुम्भस्थल से प्राप्त अथवा आधे या पाव टंक वाले मोती के अनुसार लक्ष्मी वर्धन गुण वाले हैं। जो मोती एक टाक मे तुलते हैं, उन्हे मैं बतलाता हूँ।

१२५–२६ एक टाक मे दस, बारह, पन्द्रह, बीस, पचीस, तीस, चालीस, पचास, सत्तर, सौ मोती जो चढते है उनके मूल्य क्रमशः पचास, चालीस, तीस, बीस, पन्द्रह, बारह, दस, आठ, पाच और तीन रुपये (चादी के रुपये) है।

छोटे हीरे :—

१२७ एक से लगाकर बारह तक जो हीरे एक रत्ती मे तुलते है उनके मूल्य जो मंडलीको-जौहरियो ने कहे हैं वह मैं कहूँगा।

षणतीसं छव्वीसं वीसं सोलस तेरस [य] दसेवा ।
अट्ठं च एग ऊणा जातिय कमि रूप्पटंकाय ॥ १२८ ॥
अस्यार्थं जंत्रेणाह :-

मोतीं टके ?	१०	१२	१५	२०	२५	३०	४०	५०	७०	१००		
रूप्य टंका	५०	४०	३०	२०	१५	१२	१०	८	५	३		
वज्ज गु जा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
रूप्प टंका	३५	२६	२०	१६	१३	१०	८	७	६	५	४	३

१२८ पैंतीस, छब्बीस, बीस, सोलह, तेरह, दस, आठ और फिर
एक एक कम (सात, छ, पाँच, चार, तीन) — क्रमशः
तीन रुपये (चादी के टके) तक के।
॥ इनके अर्थ भी यंत्र से जानना ॥

मुद्रित प्रति के पाठ भेद :—

मुद्रित प्रति में १२३ वीं गाथा का पाठ भिन्न रूप मे मिलता है और उसके नीचे यंत्र रूप कोष्टक दिया गया है उसकी अङ्क गणना भी भिन्न प्रकार की है। गाथा और कोष्टक निम्न प्रकार है।

[अद्धति छह] दह तेरस सोलस बावीस तीस टंकाइं।
लालस्स मुल्लू एवं पेरुज्जं इंदनील सम ॥ १२३ ॥

अस्यार्थं यंत्रकेणाह :-

मासा	॥	१	१॥	२	२॥	३	३॥	४
हीरा	७	१६	३०	६०	१००	१५०	२२०	३४०
चून्नी	८	१८	३०	६०	१२०	२४०	४८०	६६०
मोती	२	८	३०	८०	१२०	१८०	२७०	४०५
मराइ	४	६	१०	१५	२२	३४	५०	७०
इन्द्रनील	।	॥	॥।	१	२	५	७	१०
लहसणिया	।	॥	॥।	१	२	५	७	१०
लाल	॥	३	६	१०	१३	१६	२२	३०
पेरोजा	।	॥	॥।	१	२	५	७	१०

मुद्रित प्रति में १२४-१२५-१२६ इन गाथाओ के आधार पर पाठ भेद वाली भिन्न गाथाएं है तथा उनके नीचे यत्र रूप से जो कोष्टक दिए हैं उनमें अंकादि भी भिन्न गिनती बताते है। गाथाएं और कोष्टक निम्न प्रकार है :—

अस्यार्थं पुन यंत्रकेणाह :—

मोती टक प्रति	१२	१४	१६	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००
रूप्य टंकण	४०	३५	३०	२४	१६	११	८	६	५	४	३	२

हीरा गुंजा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
रूप्य टकण	२०	१६	१३	११	९	८	७	६	५	४	३	२

बारस चउदस सोलस वीसाई दसहियं च जाव सयं ।
टंकिक्कि जे तुलंती मुत्ताहल ताण मुल्लमिमिं ॥ १२४ ॥
चालीसं पणतीसं तीसं चउवीस सोल सिक्कारं ।
अट्ठ छ इगेग हीणं जाव दु कमि रुप्प टकाण ॥ १२५ ॥
एगाई जाव बारस चडति गु जिक्कि वज्ज ताणमिम ।
वीसाय सोल तेरस गारस नव इगूण जाव दुग ॥ १२६ ॥
[पाठ भेद :— अइचुक्ख निमला जे नेय सव्वाण ताण मुल्लमिमं ।
सहोसे सयमसं भमालए मुल्लु दसमंस ॥ १२७ ॥
गोमेय फलिह भीसम कक्केयण पुस्सराय वइडुज्जे ।
उक्किट्ठ पण छ टका कणयद्ध विद्दुसे मुल्ल ॥१२८॥
॥ इति सर्वेषा मूल्यानि समाप्तानि ॥
पाठ भेद :— तेणय रयण परिक्खा रइया संखेवि ढिल्लिय पुरीए
कर मुणि गुण ससि वरिसे अल्लावदीणस्स रज्जम्मि ॥१२६॥
मूल प्रति का पाठ :—
अइचुक्ख निम्मला ज नेयं सव्वाणूताण मुल्लुमिम ।
नहु इयर रयणगाणं कणयद्धं विद्दुमे मुल्लं ॥ १२६ ॥
गोमेय फलिह भीसम कक्केयण पुंसराय वेडुयज्जे ।
एयाण मुल्लु दम्मिह जहिच्छ कज्जाणुसारेण ॥ १३० ॥

---

२६ अत्यन्त चोखे, तेजस्वी, और निर्मल जो हो उन सबके ये मूल्य जानना, अन्य रत्नो के नही। कनकार्द्ध विद्रुम का मूल्य है ।

३० गोमेदक, स्फटिक, भीसम, कर्केतन, पुखराज, वैडूर्य, इनके मूल्य यथेच्छ कार्यानुसार द्रम (मुद्रा) से होता है ।

सिरि धधकुले आसी कन्नाणपुरम्मि सिट्ठि कालियओ।
तस्सुव ठक्कुर चंदो फेरू तस्सेव अंग रुहो ॥ १३१ ॥
तेणिह रयण परिक्खा विहिया निय तणय हेमपाल कए।
कर मुणि गुण ससि वरिसे (१३७२) अल्लावदी विजयरज्जम्मि
॥ १३२ ॥

इति परम जैन श्रीचंद्रागज ठक्कुर फेरू विरचिते
संक्षिप्त रत्नपरीक्षा समाप्ता ॥ छ ॥

३१-३२ कन्नाणपुर मे श्री धधकुल (धाधिया-श्रीमाल) मे श्रेष्टी-कालिक उनके पुत्र ठक्कुर चंद और उनके अ गज ठक्कुर फेरू ने यह रत्नपरीक्षा अपने पुत्र हेमपाल के लिये सं० १३७२ मे सम्राट् अल्लाउद्दीन के विजयराज्य मे बनाई

परम जैन चद्र के पुत्र टक्कुर फेरू की बनाई हुई सक्षिप्त रत्नपरीक्षा समाप्त हुई ॥

पं० तत्त्वकुमार मुनि कृता

रत्न परीक्षा

॥ दोहा ॥

आदि पुरुष आदीसरू, आदि राय आदेय।
परमातम परमेसरू, नमो नमो नाभेय ॥ १ ॥

अवनीतल अधिकी वनी, नयरि अयोध्या नाम।
नाभि नरिंद दिणंद सम, राज्य करै अभिराम ॥ २ ॥

ऋषभ वृषभ ज्यूँ धारवा, निज कंधे भू भार।
वंश इक्ष्वाग दीपावियौ, ता घर ले अवतार ॥ ३ ॥

ए मर्यादा जगत की वरणावरण विचार।
न्यात पात कुल नीतता, अभिनव कीध आचार ॥ ४ ॥

ब्राह्मण क्षत्री वैश्य ए, शूद्र वरण जग माहि।
च्यार वरण ते चूंप से, दीर्घ वताइ सवाहि ॥ ५ ॥

महिल कला चउसट्ठ मुणी, पुरुष बहुत्तर धार ।
तामें अधिकी वर्णवु, रत्नपरीक्षा सार ॥ ६ ॥
वाणी संस्कृति की वण्या, तिनका ग्रंथ अनेक ।
बड़े बड़े सो ग्रन्थ है, जग मे एका एक ॥ ७ ॥
ता कारन रचना रचु, सूखम शास्त्र संभार ।
रत्नपरीक्षा जाण नर, ताहि ज्ञान आधार ॥ ८ ॥
दिस पूर्व दीपै सदा, ता मझ बंग सुदेस ।
न्याय नीत पाले प्रजा, आण अखंड नरेश ॥ ६ ॥
राजगज नामा नगर, वसै जु नागर लोक ।
ओस वंश कुल दीपता, अधिक महाजन लोक ॥ १० ॥
धर्म अर्थ सहु साचवै, कुल व्यापार अपार ।
सधन घरे सब थोक हैं, नित प्रति अतिहि उदार ॥ ११ ॥
ता मझ गोत्र चडालिया, आसकरण बड भाग ।
सुख संपति ता घर अधिक, दिन दिन अधिक सोभाग ॥१२॥
ताके आग्रह ए रच्यौ, रतन परीक्षा ग्रन्थ ।
ताके समरण योग तें, प्रगट होत सुध पथ ॥ १३ ॥

अथ नव रत्न नामः—

प्रथम नाम नौ रत्न के, कहुं शास्त्र मग धारि ।
हीरा[१] मोती[२] मानिकहु[३], पन्ना[४] नील[५] विचार ॥ १४ ॥
लहसुनिया[६] पुष्कराग[७] ही, गोमेदक[८] परवाल[९] ।
प्रथम जाति ए संग्रहौं, मेटन महा जजाल ॥ १५ ॥

अथ वज्र विज्ञान :—

हीरा आगर आठ है कौशल और कालिंग ।
सोरठ पोढ हेमजा वेणू सुपारमतंग ॥ १६ ॥
वर्ण च्यार है बज्र के, ब्राह्मण क्षत्री जाण ।
वैश्य शूद्र च्यारे भणौ, गुण से वर्ण पिछाण ॥ १७ ॥
शंख फटिक शशि रुच समी, छाया ताकी होइ ।
चिकनाई अति कान्ति द्यु ति, ब्राह्मण वर्ण्यो सोइ ॥ १८ ॥
लाल रग कछु पीत छबि, क्षेत्री सोय कहाय ।
तनु पीरे कछु श्वेत छवि, वैश्य वरणियै ताइ ॥ १६ ॥
दीप्तता रग श्याम है, शूद्र कहावै सोइ ।
अव आगु फल बज्र के, सुनहु सहू को लोइ ॥ २० ॥
द्विज हीरा ब्राह्मण धरै, ता मुख शारद वास ।
क्षत्री धारण क्षत्रिया, शत्रु सवे तसु दास ॥ २१ ॥
वैश्य बज्र वैश्ये धर्यो, ता घर लक्ष्मी शोभ ।
शूद्र हीर शूद्रे धर्या, कवहुं न पामै क्षोभ ॥ २२ ॥
ब्रह्म वज्र गुण हीन है, ताकौ तनक न मोल ।
गुण संपूरण शूद्र है, सो वहु पावत मोल ॥ २३ ॥
गुणहि युक्त हीरा कोऊ, धारत है नर कोई ।
ताको भय कोऊ नहीं, मीच अकाल न होइ ॥ २४ ॥
जो फल है निर्दोष मे, तातें फल विपरीत ।
दोषवंत नित देत है, रोग कष्ट वहु भीत ॥ २५ ॥

वज़्री धारै पाच गुण, दोप जुधारै पाच।
च्यार छाय मोल भेद है, बार प्रकारह जांच ॥ २६ ॥

अथ हीरा के पांच गुण :—

तीखी धार जु निर्मलो, अठकूनौं षटकौण।
हरु वै गुण सै युक्त है, सो दुर्लभ त्रिहु भौंण ॥ २७ ॥

अथ हीरा के पॉच दोष कथन :—

काकपदी मल बिन्दु जो, यवाकृति पुन रेख।
ए पाचे दूषण निपट, भय दायक ए लेख ॥ २८ ॥

अथ काकपदी दोप :—

काक परीक्षा काक पक्ष, काग बिंदु अथ होइ।
ताकुं लागै मीच भय, जा ढिग हीरा सोय ॥ २६ ॥

अथ मल दोष :—

च्यार प्रकारे मल कह्यौ, रत्न विशारद लोक।
अग्र मैल पुन मध्य मल, धारा कूण विलोक ॥ ३० ॥
धारा व्याली भय करे, मध्यमली जल आग।
कूण-मली जस खोत है, अग्र-मली दुख भाग ॥ ३१ ॥

अथ विंदु दोप :—

विंदु दोप त्रिभेद सें, सुणज्यौ चित्त लगाय।
जे विंदु आवर्त्त सम, तातें नवनिधि थाय ॥ ३२ ॥

बिंदु वर्ण्यौ वाती समौ, ताकौ धरै नरेश ।
सो पीड़ा गढ की लहै, ए फल कह्यो विशेष ॥ ३३ ॥
रक्त विंदु ता वज्र में, तातें अधिक विनाश ।
लक्ष्मी संपति पुत्र क्षय, पुन उपजैं अति त्रास ॥ ३४ ॥

अथ यव दोष :—

रक्त श्वेत पीयरै वरण, यव के भेद ज तीन ।
सपत हरता लाल है, पीत करै कुल छीन ॥ ३५ ॥
श्वेत जवाकृत देख के, ताहि धरै नर कोइ ।
इति भीति सहु उपसमै, सुख सपति अति होइ ॥ ३६ ॥
दोष दोइ यव में कह्या, यव को गुण है एक ।
दोप हरौ गुण सग्रहो, चित में आणि विवेक ॥ ३७ ॥

अथ रेखा दोष :—

च्यिहुं रेखा का फल कहूं, युक्ता युक्त विचार ।
विषमी डावी जीमणी, चौथी ऊरध धार ॥ ३८ ॥
वाई रेखा मृत्यु कर, वधन विपमी रेख ।
दाहिण रेखा योग तैं, लछि अचानक देख ॥ ३९ ॥
ऊरध रेखा योग तें, लगे जु छिन में घाव ।
रेख दोप तीनुं कह्या ,एक धरै शुभ भाव ॥ ४० ॥

पुनः हीरा के च्यार दोप :—

बाह्य मध्य रेखा फटी, जो हीरन मे होइ ।
कूण हीन अथ गोल है, निरफल हीरा सोइ ॥ ४१ ॥

अथ च्यार छाया :—

श्वेत रक्त अरु पीत है, श्याम छाय चौ नाम ।
च्यार वर्ण च्यारूं कही, सब ही सुख की धाम । ४२ ॥

अथ सामान्य परीक्षा :—

धारा अगे अग्रतल, करो निरख तुम हेर ।
दोप अदोष निहार के, तुला चढावहु फेर ॥ ४३ ॥

अथ तोल मान :—

सरस्युं आठ लहीजियै, ता सम तंदुल एक ।
तंदुल चिहुं तै मूंग इक, चिहु मुंगा गुञ्ज एक ॥ ४४ ॥
मंजाड़ी दोइ गुंज की, तीन मजाड़ी माप ।
दो मास कौ साण इक, साण दुहुं टक भाप ॥ ४५ ॥
या विधि गिनती लीजियै, तोल वोल परमाण ।
रत्न विशारद लोक के, यह तोलन परमाण ॥ ४६ ॥

॥ इति तौल परमाण कथनम् ॥

पुनः पाठान्तरम् :—

विश्वा वीस कहीजियै, रती एक परमाण ।
कर्लिज एक द्वै गुञ्ज को, छः गुञ्ज मासा जाण ॥ ४७ ॥

॥ इति पाठान्तरम् ॥

अथ हीरा कौ मोल कथन :—

मोल तीन है बज्र के, ताहि लेतु हुं नाम ।
उत्तम मध्यम अधम है, वज्र मान तसु दाम ॥ ४८ ॥
पिंड मान यव एक है, तोल जु तंदुल एक ।
ताको मोल ज अर्द्ध शत, कहजो धरिय विवेक ॥ ४६ ॥
पिंडमान यव दोइ है, तंदुल एक ज तोल ।
तासे चौगुण मोल धरि, गिणज्यो द्वै शत मोल ॥ ५० ॥
तोल एक तदुल समौ, गात्र मान यव तीन ।
ताको बोल्यो आठ गुन, रत्न परीच्छक कीन ॥ ५१ ॥

अथ मोल द्वितीय भेद:—

मोल कह्यौ पाठातरे, ताहि सुण्यो अधिकार ।
पिंड पच गुण तीन थी, अठ शत तासु विचार ॥ ५२ ॥
पट् गुण होइ जो तोल तें, एक सहस्र तसु मोल ।
सात गुनौ पिंड तौल तै, सहस्र दोइ तसु वोल ॥ [illegible]
तोल घटै ज्यातें वढै, त्यों त्यों दाम वढ़ाइ ।
रत्न परीक्षा शास्त्रा कौ, दीयौ जु सार [illegible]
जो हीरा जल कै विचै, तिरता रहै [illegible]
मोल लहै छत्तीस गुन, देह लेह [illegible]
तीन भाग तिरते रहै, जल में [illegible]
ता हीरा को मोल फुन, सहस्र [illegible]

अथ सामान्य भेद हीरा के कहै :—

जा हीरा में ज्योति नहीं, लक्षन गुन नहि कोइ।
ताको मोलज एक शत, सशय धरौ नही कोइ ॥ ५७ ॥

ना धरवो ना पहरवो, ज्योति रहित सो हीर।
तासौ काज न को सरै, जैसे अंध शरीर ॥ ५८ ॥

उत्तम गुण सयुत्त कु, धरिहौं स्वर्ण मढाय।
लक्ष्मी सपति देत है, दिन दिन अधिक बढाय ॥ ५९ ॥

जो हीरा जल मां, तिरै, सुपर्ण्ण ज्यु।
सेत दोष के पत्र, सरीखै वर्ण त्यु ॥
ताकौ मोल सुवर्ण, तुला इक जानियैं।
सुख संपति दातार, अधिक कर मानियै ॥ ६० ॥

वज्र जरै विपरीत जौ, कबहुं जरईया भूल।
दुष्ट दोप ता साग है, जरीया के सिर शूल ॥ ६१ ॥
करौ परीक्षा हीर की, जात राग रग रोल।
वर्ति गात्र जु दोप गुण, आकृत लाधव मोल ॥ ६२ ॥
ए दस भेद विचार कै, करहु परीक्षा हीर।
दोषवंत मणि देख कै, ताहि न करियै सीर ॥ ६३ ॥
लच्छन विन पुन भंग है, वरन च्यार कर हीन।
शून्य मंडली ताहि कौ, कहियै रत्न प्रवीन ॥ ६४ ॥
हीरा निर्मल गुणहि युत, योग मंडली धार।
देवहि दुर्लभ होई सो, गुण है तासु अपार ॥ ६५ ॥

अति निशाद अठकूण है, पुनः पट्कूण विशाल।
सो हीरा दिन प्रति धरै, मुकुट बीच भूपाल ॥ ६६ ॥
कोऊ कठ भुजानि मध्य, धरै ताहि धन धान।
रंण अभंग सुख संग तैं, उत्तम गुण सतान ॥ ६७ ॥
भूषन हीरन को कहूँ, धरै गर्भिनी नारि।
गर्भपात निह्चै हुयै, कह्यो तासु निरधार ॥ ६८ ॥
गंधक अरु रसराज मिलि, वज्र योग रस राज।
नरपति सेवत सुख लहै, भोग योग यह साज ॥ ६९ ॥
कबहुं कपट न कीजियै, फल वाको अति दुष्ट।
मान महातम सब गलै, अतहि उपजै कुष्ट ॥ ७० ॥
कृत्रिम से जो ठगत है, वह है कर्म चडाल।
हत्याकारक मनुज कुं, कहियै जाति चंडाल ॥ ७१ ॥

कृत्रिम परीक्षा :—

कृत्रिम कौ संसै पड्यौ, रत्न अछै शुद्ध अग।
ताहि परीक्षा कीजियै, क्षार, खटाइ संग ॥ ७२ ॥
जामै होवे कूर कछु, ताको वर्ण विनास।
पीछै धोवो सालि जल, निकले कूर प्रगास ॥ ७३ ॥
हीरा में हीरा घसै, सब सैं वड़ो कठिन्न।
ता कारण ए रत्न को, वज्र नाम धरि दीन ॥ ७४ ॥

अथ हीरा हीरी वर्णनम् :—

(प्रति में यह वर्णन नहीं मिला, स्थान रिक्त छोड़ा हुआ है)

॥ इति श्री हीरा प्रवन्ध प्रथम ॥

❀ मुक्ताफल विचार ❀

घन तें कर तें संख तें सीप, मच्छ अहि वश।
शूकर तें मुक्ता हुवै, आठैं खानि प्रशंस ॥ १ ॥

घन मोती वर्णन :—

घन मोती कबहु गिरत, हरत अपछरा बीचि।
जैसी है बिजुरी चमकि, तैसी ताहि मरीचि ॥ २ ॥
सो मुक्ता सुरपुर वसै, सुरगण ताकै जोग।
मानव सैं पावैं नहीं, ताकों उत्तम भोग ॥ ३ ॥

गज मोती वर्णनम् :—

विंध्याचल ताकै निकट, वीभ्र महावन सोइ।
भद्र जाति हस्ती तिहां, ताकै मस्तक होइ ॥ ४ ॥
दूजो स्थान कपोल तैं, ए दो मुगता हीन।
लंब गात्र पीयरी भनक, दुष्ट निफल कहि दीन ॥ ५ ॥

मच्छ मोती वर्णनम् :—

तिम तिमंगल मच्छ कै, मुख मह मोती होइ।
मानस कुं नाहिं मिलैं, देव प्रयालै सोइ ॥ ६ ॥
गुंज मान तसु गात्र रुचि, पाडल पुष्प समान।
किंचित् छाया हरित हुइ, ता सम ना कोऊ आन ॥ ७ ॥

सर्प मोती वर्णनम् :—

कोऊ वृद्ध फणिंद कै, फणधर मोती जोइ।
अति उज्वल नीली भनक, फल अशोक सम होइ ॥ ८ ॥

ताकौ धारत भूप जो, विष पीड़ा नहिं होइ।
गज बाजी सुख सपदा, जा घर मुगता सोइ ॥ ६ ॥

वंश मोती वर्णनम् :—

उत्तरदिशि वैताढ्यगिरि, ता ढिग है कोउ वश।
आठ अधिक शत गठ है, ताकी जाति सुबश ॥ १० ॥
ताके ऊर्द्ध विभाग मे, नर मादी की जोड़ि।
ता सम मोती ना मिलै, जो खरचै धन कोड़ि ॥ ११ ॥
ता मझि देव निवास है, पूरै पूरण ऋद्धि।
गज वाजी अरु सुन्दरी, दायक ऋद्धि समृद्धि ॥ १२ ॥
तीन साझि पूजै जुगति, धरि थिर चित्त सदाय।
रोग दोप विप वैर का, भय कवहु नहि थाय ॥ १६ ॥
उज्वल अति द्युति चीकनी, वेणु कपूर मरीचि।
उग्र पुण्य के योग तें, रहिहै पुरुष नगीचि ॥ १४ ॥

शंख मोती वर्णनम् :—

उदधि वीच जो संख है, तिन सै नावत हाथ।
लघु वन्धु लक्ष्मी तणो, ता संग सपत साथ ॥ १५ ॥
संध्या रुचि सम वान है, गुण जाका असमान।
पुण्ययोग तैं सो मिल्यां, लक्ष्मीपति सो जान ॥ १६ ॥

शूकर मोती :—

वन वाराह कोऊ किहां, ता सिर मोती जाणि।
अति सुन्दर है शास्त्र में, वेर मान परमाण ॥ १७ ॥

सीप मोती वर्णनम् :—

सीप तें मोती नीपजै, सो मानत सब लोग ।
मास आसोजै ऊपजै, स्वात जलद सयोग ॥ १८ ॥
मुक्ता आगर सात है, नाम कहुं निरधार ।
जल में जेती भात है, तेती जात विचार ॥ १९ ॥
सिहलद्वीपी काहली, वारण आरब ठीक ।
पारसीक वावर भलो, नाम कह्या तहतीक ॥ २० ॥
ज्योति बढै अति चिकनी, चिलक मधु सम रंग ।
अति वर्तु लता सोभही, सिंघल काहली अंग ॥ २१ ॥
वारण आरब श्वेत है, ज्योति चन्द्र सम होत ।
तामे पीरी रुचि तनक, निर्मल अधिकी ज्योति ॥ २२ ॥
स्वेत द्यु ती जु निर्मलो, पारसीक तसु जाण ।
रंग ज्योत कै भेद तै, च्यारु ठाण पिछाण ॥ २३ ॥
स्वर्ण सीप उदधि मे, रहि हैं सूप समान ।
ताको मुक्ता अति सरस, जाती फल तसु मान ॥ २४ ॥
देवै दुर्लभ होइ सो, ताके मृगमद गंध ।
कोडि एक सुवर्ण को, ताहि मोल प्रतिबन्ध ॥ २५ ॥
अति परतापी क्रात से, अधिक ज्योति ता अंग ।
ता गुण अपरंपार है, कुंकुम सम ता रंग ॥ २६ ॥

मुक्ताफल के फलाफल विचार कथन :—

पट गुणी नव दोप है, तीन छाय अठ मोल ।
रत्न विशारद युं कहै, सात खाण अठ तोल ॥ २७ ॥

नव दोष कथन :—

सीप फरस रु जाठरा, मच्छ नेत्र पुन लाल ।
त्रि आवर्त्त चापल्यता, म्लान दोष तसु भाल ॥ २८ ॥
दीरघ एक दिशा कह्यो, निप्रभाव निस्तेज ।
वृद्ध च्यार तुछ पंच है, गिणल्यो धरकै हेज ॥ २९ ॥

चार वृद्ध दोष :—

सीप लग्यो मोती भण्यो, स्पर्श दोष तसु पोष ।
मच्छ नेत्र सो देखियै, सो मच्छाक्षी दोष ॥ ३० ॥
रक्त तुच्छ जल बीच में, सो जठरा तुम जाण ।
चौथो दोप जु रक्तता, वड के च्यार पिछाण ॥ ३१ ॥
सुक्ति स्पर्श मोती भयो, सदा धरै दुख पोप ।
ताकै संग तै होन नहिं, कबहुं तनिक संतोप ॥ ३२ ॥
द्रव्य हरत है जाठरा, मच्छ नेत्र दुखकार ।
रक्त दोप आयु हरे, च्यारहि दोष निवार ॥ ३३ ॥

लघु पंच दोप कथनम् :—

तीन चक्र जामै वण्या, करै जु धन के नास ।
बहुरगी को दोप है, चपल कुजस को वास ॥ ३४ ॥
मलिन मध्य मली कहौ, करै जु बल की हानि ।
दीरघ मुक्ता योग तें, मंदमती वह जानि ॥ ३५ ॥
तेजहीन निस्तेज तें, उद्यमता संग हीन ।
पाच दोप लघु जाणि कै, ता तैं त्याग जु कीन ॥ ३६ ॥

सामान्य दोष कथन :—

देख शर्करा जलगि रह्यौ, फटी ज तामें रेख।
वेध्यो अगज दोष तै, मोल ताहि कम लेख ॥ ३७ ॥

पीरी तामै छबि परै, एक ओर गुण चोर।
सो मुक्ता कुन काम कौ, आयु हरत वह दोर ॥ ३८ ॥

षट गुण कथन :—

तारा ज्योति प्रथम्म है, द्वितीयह भारी तोल।
अति चिकनाई तीसरौ, ओर कह्यौ अति गोल ॥ ३९ ॥

गात वडै ए पाचमों, छट्ठो निर्मल तेज।
ए फलदायी जगत में, धारौ अति धर हेज ॥ ४० ॥

छाया विचार कथन :—

सेत पीतरु मधु समी, कही छाई इह तीन।
एहिज छाया लीन है, ओर छाय नहिं लीन ॥ ४१ ॥

उज्वल भारी चीकणौ, वर्त्तुल निर्मल तेज।
दर्पण ज्योति लीजता, कवहु न कीजै जेज ॥ ४२ ॥

मोल प्रमाण :—

गुंज एक तें दाम धरि, सात रजत सुजगीश।
दोइ गुंज सम ताहि कै दाम धरौ तुम वीस ॥ ४३ ॥

तीन गुंज शत अर्द्ध है, मोल असी चिहुं गुंज।
पाच गुंज द्व शत कहो, चार सया छः गुंज ॥ ४४ ॥

सात गुंज तन सात सै, एक सहस अठ गुंज।
चौदहसै नव गुंज कौं, द्वाविंशत दस गुंज ॥ ४५ ॥

एकादश गुंजा कहै, अठावीस शत जाण।
द्वादश गुंजा मोल है, च्यार सहस्र समान ॥ ४६ ॥

तेरह रती प्रमाण है, छह सै छ हजार।
यातै वाढि तुला चढै, ताहि मोल अविकार ॥ ४७ ॥

रत्नपरीक्षा जाणका, यह है सब को बोल ।
तोल सवाया तोल है, मोलहि दुगुणा मोल ॥ ४८ ॥

तिगुण वढ्यां तें बोलियै, मोतिन तिगुणा मोल।
तीस गुंज तातें वढ्या, ताहि चौगुणा मोल ॥ ४९ ॥

आठ तीस गुंजा चड्या, ताहिं पंच गुण मोल।
एक लछि ऊपर अधिक, एक सहस पुन बोल ॥ ५० ॥

मोती चौसठ गुंजको, ताहि लेत नर कोइ।
कोर एक तसु देय कै, मोल लेत है सोइ ॥ ५१ ॥

सामान्य मोल भेद कथन :—

सबगुण मोती युक्त है, मच्छ नेत्र कहु होइ।
ताकै गुण सहु व्यर्थ है, ताहि न ग्रहज्यो कोइ ॥ ५२ ॥

कृत्रिम परीक्षा कथनम् :—

मुक्ता कौ भ्रम मेटवा, लोन गोमूत्रहि लेइ।
सेत वसन तें बांधिकर, प्रहर च्यार धर देइ ॥ ५३ ॥

पीछै मर्दन कीजियै, हथारी कै बीच।
कूड़ कपट ताकौ सहू, काढत है वह खींच ॥ ५४ ॥

नर मादा मोती की परीक्षा कथनम् :—

उजल विमल सुवृत्त है, सब गुण मोती धार।
निदू॔षण क्राते अधिक, सो मुगता श्रीकार ॥ ५५ ॥
अैसे मोती युग्म है, चौवीस रती प्रमाण।
अठ चौलीसा गुंज सम, नर मादी तसु जाण ॥ ५६ ॥

॥ इति मुक्ताफल विचार ॥

मानक व्यवहार

रोहणाचल कै पास है, अवण गंगा विस्तार।
गिरि सरिता के बीच है, माणक तीन प्रकार ॥ १ ॥
तामें माणक नीपजै, नील रत्न पुष्कराग।
तीनुं एकहि खाण मे, संग होत तिहुं लाग ॥ २ ॥
पद्मराग पहिलो कह्यौ, सौगंधीं पुन भेद।
कुरुवंदि तीजौ कह्यो, तीनुं माणक भेद ॥ ३ ॥
रोहणाचल आदै कह्या, संघल डाहल ऊन।
रंधर तुंवर ए कह्या, तातै अधिक जवून ॥ ४ ॥
रोहणाचल सहु के सिरे, सिंघल कुकम जाण।
डाहल गौर्जर मध्य है, तु वर ज्ञान न जाण ॥ ५ ॥

रधू खान सो अधम है, नाम मात्र मण जाण।
रंग रूप तामै नहीं, उपजै मणकी खाण ॥ ६ ॥

चार खान का वर्ण कथन :—

पद्मराग अति सोभहि, चिकनी द्यु ति अति लाल।
निदू षण शोभै भलो, रोहणाचल ते भाल ॥ ७ ॥
पद्मराग लाली लियै, सिंघल ताकौ थान।
डाहल पीरी झाइ है, रंधू ताम्र सम वान ॥ ८ ॥
हरित प्रभा तैं जाणियै, तु वर मणि की खान।
क्राति राग कुं देख कै, सब कै आगर जान ॥ ६ ॥

सोलह छाय दश दोष कथन :—

माणक तीनुं वर्ग के, ताके भेद विचार।
सोल छाय दस दोष है, मोल जु तीस प्रकार ॥ १० ॥

दस दोष विचार :—

प्रथम विछाय द्विपद है, भंग जु कर्कर धारि।
मंस खंड पंचम लसुन, कोमल जड़ता धारि ॥ ११ ॥
धूम्र दोप चीरी दसम, वरणुं तासु विचार।
धार्यें ता संग ऊपजै, सुणज्यो सो अधिकार ॥ १२ ॥
त्रि छाया इकठी मिलै, अथवा छाया हीन।
वदन विछाई ताहि सैं, देश त्याग कहि दीन ॥ १३ ॥
जैसो पाव मनुष्य को, ता सम लंछन होइ।
द्विपद दोपी सो कह्यो, कचडी मुंहगो सोइ ॥ १४ ॥

तासें रिण में भंग है, मरण अचानक जाण ।
ताकुं कहुं न धारिये, आध घटी परमाण ॥ १५ ॥

भग होइ कर तैं परया, भंग दोष सोई होइ ।
तातें मूरख हीनमति, दीन हीन विदरोह ॥ १६ ॥

नारि धरै विधवा हुवै, वंश छेद तत्काल ।
ए लछण है भंग के, ताहि तजो प्रतिपाल ॥ १७ ॥

कंकर दोषी ते कह्यौ, गर्भित कंकर रूप ।
मित्र बंध सुख संग तैं, तातैं करत विरूप ॥ १८ ॥

लसुन दोष ताको कह्यौ, फल अशोक सम विंदु ।
दुष्ट विंदु सो मधु समो, महादुष्ट दुख कंद ॥ १९ ॥

चूरण लेहु कुरंज कौ, मर्दन कर ता संग ।
तनक तेज कबुहु घसै, ताको कोमल अग ॥ २० ॥

जड़ दोषी प्रकाश बिन, रंग बह्व जसु होइ ।
अपकीर्ति की खाण है, ससय धरो न कोइ ॥ २१ ॥

धूम्र दोष ते धूम्र सम, ते माणक वेकाज ।
हीनमती ता सग ते, धारत उपजै लाज ॥ २२ ॥

मस खंड सो जो कहुं, होइ है माणक बीच ।
ताको फल कुछ हीन है, ताहि न धार नगीच ॥ २३ ॥

जो माणक रेखा फीटियै, अवीरी तह नाम ।
धारन तै कुछ फल नहीं, मोलै तसु घट दाम ॥ २४ ॥

माणक रंग विचार—

तीन रग ताके कहुं, सुणज्यो हित चित आण।
फल अशोक कै रंग सै, दायक सो रिधि जाण॥ २६ ॥
माणक मधु कै वर्ण जो, सो फलदायक जाण।
बेर रंग सौं तै सदा, दुखदाई अरु हाण॥ २७॥
जड़ दोपी प्रकाश विन, रंग बद्ध जसु होइ।
अपकीर्ति की खान है, संसय धरो न कोइ॥ २८॥

सोलह छाय कथन :—

केसू सवल लोधू के, रंग दुपुहरी फूल।
इन्द्रगोप कोसभ कै, खजुवा चिरमी फूल॥ २९॥
केसर रग सिन्दूर कै, लाक्षा हिंग जु रंग।
पिक सारस के नेत्र सम, दार्यो कुसुम सुचग॥ ३०॥
ए सोरह छाया लियैं, माणक होत प्रसग।
माणक तीने वर्ग मे, सोलह छाय सुचंग॥ ३१॥

पद्मराग वर्णनम् :—

इन्द्रगोप के रग है, पिक चकोर की चक्षि।
दारौ फूल सुरंग जो, पद्मराग इन लक्षि॥ ३२॥

कुरुविंद वर्णनम् :—

लोधू दुपुहरी फूल कै, चिरमी आभ्र सरूप।
जैसि छाव सिंदूर की, ए कुरुविंद सरूप॥ ३३॥

सौगंधी वर्णनम् :—

केसर लक्षा हींगलू, अैसी छाय सौगंधि।
कछु झांई नीली लियै, छवि लाली अनुबंध ॥ ३४ ॥

सामान्य भेद :—

कान्तिराग छाया सहु, मैल होत सब तीस।
मोल भेद पहचान कै, धारैं अधिक जगीस ॥ ३५ ॥

काति रग उद्धंगती, और अधोगति जान।
पार्श्व गती रग होत है, तीनु अधम वखानि ॥ ३६ ॥

रंग विश्वा ज्ञान कथन :—

पद्मराग के रंग का, विश्वा जाणन हेत।
रत्नपरीक्षा शास्त्र में, एहिज धर्यो संकेत ॥ ३७ ॥

मणि विश्वा जाणै बिना, मोल न जानत मूल।
रंगभेद बूझ्यां विना, ताकी न मिटत भूल ॥ ३८ ॥

ता काजै इक मुंकरमै, धरियै सरस्यु सेत।
ता पर गुंजा एक सम, मानक धरियै हेत ॥ ३९ ॥

प्रात समै रवि किरण तें, ताकी प्रभा निहाल।
ताहि प्रभा तैं कणदवै, तेता विश्वा माल ॥ ४० ॥

अैसी भाति निहाल के, गिणीयै विश्वा रंग।
गात रंग विश्वा गिणी, धरियै मोल सुचंग ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण विश्वा च्यारतै, क्षत्रिय विश्वा तीन।
वैश्य दु विश्वे जाणियै, शूद्र हि एकज लीन ॥ ४२ ॥

माणक मोल कथनम् :—

माणक च्यारा ओर सु, पिंड होइ जब एक ।
द्वे शत मोल कहीजिये, ताको धरिय विवेक ॥ ४३ ॥

पद्मराग के मोल सैं, भाग चतुर्थ जु ऊन ।
कुरुवंदी कु जाणियै आध सौगंधि जबून ॥ ४४ ॥

एकै यव तें घाट है, एक ही यव तें बाढ ।
यव तें आठ प्रमाण लौ, दुगुणा दुगणा बाढ ॥ ४५ ॥

सौगंधी सत भेद सें, ऊरध गुन जो होइ ।
मोलै आठ गुनौ कह्यौ, इस में भूल न कोइ ॥ ४६ ॥

मध्य गुनी को मोल है, निश्चय सैं सत पाच ।
दैन लैन को मोलहै, मैं कहि दीनौ साच ॥ ४७ ॥

घाट सुघाटै ज्यु बढै, ताहि मोल अधिकाइ ।
घाट वर्ण तें हीन है, त्यों त्यों मोल घटाइ ॥ ४८ ॥

क्राति एक सरस्यु चढै, द्वे शत चढियै मोल ।
एक सरस्यु हीनतें, द्वे शत घटता बोल ॥ ४९ ॥

उत्तम आगर को वन्यो, होइ जु लछन हीन ।
तोल वाधि मोलै चढै, यामें मेख न मीन ॥ ५० ॥

मानक हरुओ हीन है, हीरो हरुवो वाढ ।
हीरो भारी हीन है, मानक भारी वाढ ॥ ५१ ॥

कुरुवदी सौगंध ते, पद्मराग गुन वाधि ।
हीन छाय ना होइ तौ, ताको गुन अति लाधि ॥ ५२ ॥

अच्छा माणक देत, है, ऋद्धि रमण भंडार।
शत्रु सबै भागे फिरै, ता सग तेज अपार ॥ ५३ ॥

परीक्षा कृत्रिम की :—

माणक देख्या काहु कै उपज्यो कुछ संदेह।
कृत्रिम कै ससय पड्या, करौ परीक्षा एह ॥ ५४ ॥

घरी दोई ताकुं घसौ, जे न होइ अविरुद्ध।
मन का धोखा टालिकै, मोल ग्रहौ धरि बुद्ध ॥ ५५ ॥

पद्मरागरु नील में, बज्र करत है लेख।
बज्र बिना जे रत्न है, यातें अधिक न देख ॥ ५६ ॥

मुसका चिहुं विश्वा लगै, ता पर चूनी जाण।
चूनी विश्वा वीस लौं, माणक ता पर ठाण ॥ ५७ ॥

एक गुंज तें आद ले, गुंज गुणो त्रय वीस।
पच दश विश्वा अधिक, माणक ताहि कहीस ॥ ५८ ॥

पाद हीन चौवीस लौ, माणक होइ वहाल।
तातै अधिको जो चढयौ, ताकुं कहियइ लाल ॥ ५९ ॥

इति श्री मुसका चूनी मानक लाल विचार कथनम्।

नील रत्न विचार

माणक जेती खान है, तेती खान जु नील ।
वर्ण च्यार ताके कहुं, सुनत न कीज्यो ढील ॥ १ ॥

श्वेत छवी ब्रह्मा कह्यौ, क्षत्रिय रक्त पिछान ।
पीत प्रभा से वैश्य है, शूद्र जु श्याम पिछाण ॥ २ ॥

च्यार गुण छ दोष है, छाय एकादश भेद ।
सोरह भेदे मोल है, गिणल्यो धरि उमेद ॥ ३ ॥

च्यार गुण वर्णनम् :—

पहिलै भारी गुण कह्यौ, चिकनाई अति ज्योति ।
रजक गुण के योग ते, ए च्यारे गुण होत ॥ ४ ॥

श्वेत वस्त्र ऊपर धर्या, वस्त्र प्रभा होइ नील ।
सब मे उत्तम ते कह्यौ, रंजकता होइ सील ॥ ५ ॥

उत्तम गुण नीला कह्यौ, लखमी दायक जाण ।
एकादश छाया कही, ताका करत बखाण ॥ ६ ॥

एकादश छाया कथन :—

नारायन कै रंग सम, मोर भमर की पांख ।
शुक कंठ पिक कंठ सी, सैन गऊखी आख ॥ ७ ॥

फूल पात सरेस कै, अरसी फूल समान ।
एकादश छाया कही, नील नीलोत्पल वान ॥ ८ ॥

सेन गऊ कै नेत्र की, ए दोइ छाय विरुद्ध ।
जेती छाया नील महि, ओर कही सब सुद्ध ॥ ९ ॥

दुग्ध लेहु गो भैंस कौ, निसभर ताके बीच ।
दुग्ध होत नीली छबै, ताकुं मन धर खीच ॥ १० ॥

इन्द्रनील मणी कह्यौ, चंद्र रेख तिन माहि ।
ता मण कै संयोग तें, दुख दूर न्हसि जाहि ॥ ११ ॥

ढांकत दूजै रंगकुं, रजक अपनै रंग ।
बाढ मोल ताकौ लहै, मणि है सोइ सुचंग ॥ १२ ॥

नील रत्न गुण युक्त है, निर्दोषी सुविवेक ।
ताकौ मोलज पंचसै, पिण्ड बण्यो यव एक ॥ १३ ॥
एक पक्ष रंजक धरे, दूजै पक्ष रंग हीन ।
तेजवंत चिकनी चिलक, ताकु उत्तम चीन ॥ १४ ॥

तीन अवस्था :—

हिम सींच्यौ सूर्य उदै, शोभत अलसी फूल ।
वाल कहो ता रंग सैं देखत क्रान्ति न भूल ॥ १५ ॥

वही फूल दुपहोर में, उपाय रुक्ष रुचि छीन ।
वही रंग नीला धरें, वृद्धि ताहि कहि हीन ॥ १६ ॥

सूर्य अस्त समै बनी, अलसी फूल जु छाय ।
जैसो जल सेवाल है, सो परिपक्व कहाय ॥ १७ ॥

च्यार दोष कथन :—

अभ्र छाय पुन कर्बुरो, रेख भग विंदु लाल।
मिटी उपल मध्य है, मंस खंड पुन जाल ॥ १८ ॥

अभ्र छाय जो नील कु, धरे नरेसर कोई।
तापर उल्कापात हो, वंश अचानक खोइ ॥ १६ ॥

कर्बुर दोषी संग तें, रोग असाध लहेइ।
रेख दोष तन पीत हुइ, वाघ वयाल भखेइ ॥ २० ॥

भंग दोष नीला धर्यै, नर पुरुपारथ जाइ।
नारी धारन जो करै, तसु भरता मरजाइ ॥ २१ ॥

रक्त विन्दु अति दुष्ट है, ताहि न धरज्यो कोय।
मध्य मिटीया दोष है, मास सरीरहि खोय ॥ २२ ॥

मध्य पापाणी दोसतै, लगैजु मस्तक घाव।
रेण भगी ता संग तै, लगै जु दुर्जन दाव ॥ २३ ॥

मस खंड कै योग तै, हरै जु सपति सुख।
आधि व्याधि चिन्ता करत, पुन देवहि अति दुख ॥ २४ ॥

भाति भाति के होत है, पृथवी माहि पापाण।
शुद्ध मणी वैही ग्रहे, रतन परीक्षा जाण ॥ २५ ॥

शुद्ध नील के सगते, वाधत लच्छि अभंग।
शनि पोड़ा व्यापै नहीं, यश सोभाग सुचग ॥ २६ ॥

॥ मरकत विचारो लिख्यते ॥

च्यार जाति पन्ना कह्यो, प्रथमै गरुड़ोद्गार।
इन्द्रगोप वश पत्र सौ, चवथो थूथाधार ॥ २९ ॥
गरुड़ोद्गार सदा भलौ, इन्द्रगोप सुखकार।
लक्ष्मी सपद पूरवै, मेटै विषहि विकार ॥ ३० ॥
भाग्यवत कु मिलत है, मरकत जे निर्दोष।
बारह छाया पच गुन, सात कहै तिहि दोष ॥ ३१ ॥

सात दोष कथन :—

रूखौ फूटौ मलिन है, कंकर मध्य पाषाण।
सिथली जठड़ा दोष है, करज्यो ताहि पिछाण ॥ ३२ ॥
रूक्षै राक्षा ऊपजत, शीघ्र रोग तसु अंग।
भंगद रिण में भंग है, लगै घाउ सिरभग ॥ ३३ ॥
मध्य पाषाणी सग तैं, बंधव वनिता वैर।
अंधा बोला दोहिला, ए सहु मलकी लैर ॥ ३४ ॥
पुत्र मरण ककर करै, जाठर सिंघ सरप्प।
शिथला दोषी संग तैं, गलै महातम दर्प्प ॥ ३५ ॥

पन्ना गुण कथन :—

गात वड़े जु स्निग्धता, स्वच्छ हरियाइ अग।
क ति वड़ी अखड है, पुन है रजक रंग ॥ ३६ ॥
गात वड़े मोलैं वड़ो, अति स्निग्ध वहु मोल।
हरी कान्ति यादा हुवै, वढती ताहि सु मोल ॥ ३७ ॥

नीलोत्पल पत्रै ठव्यो, दीसत स्वच्छ शरीर ।
स्वच्छ गुनी ताकू कहौ, जानहु लिछमी वीर ॥ ३८ ॥
क्रान्त घड़ी सोई लहै, दायक अधिकै सूल ।
गात अखंडित ताहि कौ, गिणता मोल न भूल ॥ ३६ ॥
रंजक सूर्य सामुहौ, धरके करो विचार ।
क्रान्ति हरीं ताकी अधिक, सो कहु रंजक सार ॥ ४० ॥

छाया विचार :—

सूवा मोरा चास पिछ, थूथ सोवा दूब छाय ।
पता फूल सरेसका, वेणु पत्र वतलाय ॥ ४१ ॥
ए सहु छाया मैं कही, पन्ना रतन मझार ।
तामे भेदा भेद कर, च्यारू वरण विचार ॥ ४२ ॥
नौली छायें श्याम कति, थूथा रग समान ।
नील श्याम ताकी कही, पहिली जात वखान ॥ ४३ ॥
रग हर्ये छवि श्वेत है, सरेसपत्र सम वान ।
सेत श्यामता नाम है, दूजी जात सुजान ॥ ४४ ॥
शुक पिच्छ सम रग है, कति सुवर्ण सरीखि ।
पीत नील ताकौ कहौ, तजी जाति परीख ॥ ४५ ॥
स्नेह द्युती वर्ण हरयौ, तनक तनक सेवार ।
जात चतुर्थी कही, रक्त नील निरधार ॥ ४६ ॥
पन्ना इतनी भाति का, नर पावै वड़ भाग ।
मद भाग्य कु ना मिलै, धारक सकल सोभाग ॥ ४७ ॥

चक्रवर्त्ती के योग्य है वासुदेव पद लाग ।
रत्न काकणी सो इहै, धार्यैं सकल सोभाग ॥ ४८ ॥
कोट सुवर्ण है ताहिकौ, पद्मराग सम मोल ।
थावर जंगम जे सहु, विष निर्विषता वोल ॥ ४९ ॥

मोल गुण कथन :—

सेत श्याम शुक पिच्छ सो, विस्तीरण गुण संग ।
दीसत तामै पछ जिस, ताहि मोल बहु चंग ॥ ५० ॥
जैसा फूल सरेस का, वर्णकहुं तसु साच ।
एकादश शत मोल है, पिंड होइ यव पाच ॥ ५१ ॥
रग हीन जु होइ तौ, ताहि मोल शत पाच ।
छाया वर्ग विचार कै, ताहि मोलकरि जाच ॥ ५२ ॥
अैसें यव की वाढता, बुद्धिवत कहि देत ।
यव आठाकौ मोलहै, सहस चोसठै हेत ॥ ५३ ॥
जो अनेक रगै वर्ण्यौ, लछन गुन सैं हीन ।
ताका देवो पंच शत, देत न होइ मलीन ॥ ५४ ॥

कृत्रिम परीक्षा :—

वुधहु चित मे ऊपज्यो, शुद्ध अशुद्ध विचार ।
अैसे भ्रम कुं मेटवै, ताहि सुनो उपचार ॥ ५५ ॥
पाथर संग मलीजियै, भजै नाहि अविरुद्ध ।
तातै वह पिछाणियै, जाति वरण ते सुद्ध ॥ ५६ ॥
महारत्न पाचू कहे, मुगता हीर पदम ।
नीला मरकत पाचमो, ताहि कह्यौ सहु मर्म ॥ ५७ ॥

॥ अथ चार उपरत्न विचार ॥

पुष्कराग गोमेद है, लहसुनिया प्रवाल।
ए उपरत्न चिहुं कह्या, गुण सुणज्यो तत्काल ॥ १ ॥

(१) पुष्कराग वर्णन :—

पुष्कराग चिहुं भेद है, जरद (१) सोनेला (२) जाण
धनैला (३) कर्केतनी (४) चारू लेह पिछाण ॥ २ ॥

पुष्कराग रंग वर्णनम् :—

पीत रंग पुष्कराग है, सणकै पुष्प समान।
निर्मल कांति पराग युति, चिकनाइ सगवान ॥ ३ ॥
निर्दोषी वर्णे विशद, कोमल अंग सुरंग।
स्वच्छ मनै अर्चा कियै, ता घर लच्छि अभंग ॥ ४ ॥
पुत्रलाभ ता संग तै, सब संपति कौ वास।
नृप संतोष धरै सदा, जस ताको जग खाश ॥ ५ ॥

(२) गोमेदा वर्णनम् :—

गोमेदक तासौ कह्यौ, वह गोमूत समान।
गात बडै अति निर्मलो, चिकनी द्युति ए जान ॥ ६ ॥

चार वर्ण वर्णनम् :—

ब्राह्मण वर्णे सेत है, क्षत्रिय होत अरन।
वैश्य पीयरे जानियै, शूद्र जु श्याम वरन ॥ ७ ॥
पीरी छवि ताकी सरस, विशद गात है जास।
गोमेदा उत्तम कह्यौ, मोल अधिक है तास ॥ ८ ॥

(३) लहसनीया वर्णनम् :—

तीन क्षेत्र पहचानियै, प्रथम ल्हसन के सार।
कनक क्षेत्र धु क्षेत्र है, पुष्पराज सिरदार ॥ ६ ॥
कनक क्षेत्र सब में अधिक, धु पुष्पराज जु हीन।
क्षेत्र एह ल्हसुन कै, गिणल्यौ धुरलै तीन ॥ १० ॥
म्लेच्छ खड के मध्य में, श्येनक आगर एक।
तामे ल्हसुन ठानियै, सधि सूत्र सुविवेक ॥ ११ ॥
पीत प्रभा जामे अधिक, मोर ग्रीव के रग।
कनक क्षेत्र है ताहि कै, संधि सूत्र तिहि संग ॥ १२ ॥
मार्जारी के नेत्र सम, झलकत तेज अपार।
अधारी निश के समे, चिलकै तेज अंगार ॥ १३ ॥
कर्कोदक ते जाणिये, कठिन चीकनै अंग।
अति ही कान्ति विशाल है, ता मझिसूत्र सुचग ॥ १४ ॥
एक दौढ अथ दोइ है, कहूं अढाई सूत।
शुद्ध सूत्र ते जानियै, महालक्ष्मी कौ पूत ॥ १५ ॥
सूत्र नेत्र दोनु नहीं, झलकत तारा जेम।
जवरजह सोनाम है, मध्य गुनी कहो पेम ॥ १६ ॥
तातै हीन जु क्रान्त है, उज्वल वस्त्र समान।
अधम गुनी सो होत है, कहियै चदरी थान ॥ १७ ॥

अथ प्रवाल अपरनाम मुंगा वर्णनम्

सिन्धु बीच पूरव दिसै, हेंम कुंदला सेल ।
मुंगा तहा निरतरे, ऊगत है अति फैल ॥ २० ॥
रंग दुपुहरी फूल सो, दार्यो कुसम समान ।
जैसो फूल कणेर को, पुन सिन्दूर कै वान ॥ २१ ॥
पाहण जेम कठोर है, धरै स्वाभावक रग ।
कीटक सगी ना हुवै, सो परवाल सुचग ॥ २२ ॥
मुंगा सीढी पाच है, रग भेद बाईस ।
कल रगा पहला कह्यौ, सहज रंग पभणीस ॥ २३ ॥
मिट्ठ रंगा अरु पावरा, फीका पचम जाण ।
घोर उतारस मिट्ठरग, पावर फींका माण ॥ २४ ॥

॥ इति प्रवाल समाप्तम् ॥

नवरत्न के रंगवर्णनम्—

हीरा मोती स्वेत लाल माणिक्क वखाणौ ।
नीला रंग है श्याम हरी छवि पन्ना जाणो ॥
सेत पीत गोमेद पुष्कराग तन पीरे ।
ल्हसुनी नेत्र विलाव कह्या मूंगा सिन्दूरे ॥
नवे रत्न नवरग है, रत्न परीक्षा जाण (नर) ।
वाणी एह सुचंग है उत्तम गुणको खाण ॥ २६ ॥

नवरत्न के स्वामी वर्णन कवित—

माणक स्वामी सूर्य, चंद्र मोती वखाणो।
मंगल मुंगा स्वामि, ईश पन्ना वुध जाणो॥
देव गुरु पुष्कराज असुर गुरु हीरा स्वामी।
इंदनील को ईश राहु गोमेदक धामी॥
.... लहसुनिया केतज कहै।
सकल मनोरथ नितफलै। नव रत्न स्वामी कहै॥ २७॥

नवरत्न के घर वर्णनम्—

॥ दोहा॥

वर्त्तुल च्यार त्रिकोण है, नाग पत्र पंच कोण।
आठ कोण गाडा समो सूर्यदिक ए भौण॥ २८॥
सूप समो घर राहुकौ, केतु धजा सम होइ।
यही भाति विचार के, नव घर दिनप्रति लोइ॥ २९॥

नवग्रह परच उच्च अंश वर्णनम्—

॥ कवित्त॥

मेष दश वृष तीन गिणहु मकरै अठवीसह।
कन्या से गिण पनर कर्क के पंच गिणीसह॥
मीन गिणौ सतवीस तुला के वीस पिछाणो।
मिथुन पनरै गण लेहु धणह पिण पनरै जाणुं।
अनुकम ग्रह जाणी करौ।
मुद्रा पुहची जुगत सें नर नरिंद निहचै धरौ॥ ३०॥

नवग्रह उच्च राशि वर्णनम्—

सूर्य मेषें जाणियै चंद्र वृषै उच्च जाण।
मगल मकरै उच्च है कन्या वुध पिछाण ॥ ३१ ॥
कर्क वृस्पति जाणियै शुक्र मीन ते उच्च।
एही मगतें जाणियै तुल तै होइ शनि रुच्च ॥ ३२ ॥
राहु मिथुन कौ उच्च है धन कौ केत पिछाण।
नौ ग्रहा की अनुक्रमे उच्च राशि ए जाण ॥ ३३ ॥

नवरत्न जड़नै का विचार वर्णनम्—

प्रथमै एक वनाइयै, वर्त्तुल गोल आकार।
तामै नव घर धारियै, विच घर माणक धार ॥ ३४ ॥
तापर पूरव दिश धरौ, गिणलो श्रेष्ठ प्रकार।
श्रेष्ठ धरै नव रत्न कुं, ता घर लच्छि अपार ॥ ३५ ॥
पूर्व अग्नी दक्षणी नैऋत, वायव्य पच्छिम जाण।
उत्तर दिग् ईशान लौ, ए दिशि आठ वखाण ॥ ३६ ॥
हीरा मोति प्रवाल धरि, गोमेद नीलक धारि।
लहसनिया पुष्कराज तें, पन्ना धारि सभारि ॥ ३७ ॥
परम उच्च जा दिन हुवै, तादिन जरियै सोड।
अही भाति नौ रत्न जर, धारन करौ स कोड ॥ ३८ ॥
दुःख सोग दूरैं हरै, दायक अभिनव ऋद्धि।
नव ग्रहे धारन किया, पुत्र कलत्र अति वृद्धि ॥ ३९ ॥

॥ इति श्री नवरत्न विचार संपूर्णम् ॥

नौरत्न नाम तादृश वर्ण—

हीरा १ तुलमीरी २ (पचरगी) माणक २१ सदली २

पन्ना १ मरगज २ (पचछाय) मोती १ लीला १ लाली २

पंच छाय पुष्कराग १ सोनैला २ ॥

धोनेला ३ पंचछाय ॥ ल्हसणिया १ ॥

जबरजद २ ॥ गोमेदा १ ॥ पचछाय ॥

इति नवरत्न नाम विचार ॥ शुभंभवतु ॥

॥ ॐ नमः ॥

॥ छूटक रत्न विचार लिख्यते ॥

स्फटिक रत्न विचार कथनम्—

फाटिक च्यार प्रकार है, सुणज्यो तास प्रबन्ध।
फाटिक है कान्ते कनक, घन रुचि है सोगध ॥ १ ॥
सूर्यकान्ति १ शशिकाति २ है, हंसकाति ३ जलकाति ४ ॥
ताका गुन मैं कहत हुं, मन मत धरजो भ्राति ॥ २ ॥

सूर्यक्रान्ति गुण वर्णनम्—

सूर्यक्रान्ति मणि लेइ करि, उजल रुत तल लेइ।
अग्नि झरत ता मध्य तें, ततखिण झाल उठेइ ॥ ३ ॥

चंद्रक्रान्ति मणि गुण वर्णनम्—

ग्रीष्म रित में नर कहुं, अति तृप व्यापति होइ।
चन्द्रकान्ति मुख मे धर्या, तिरषा मेटति सोइ ॥ ४ ॥

हंसगर्भ गुण वर्णनम्—

थावर जगम विप थकी, नरव्यापत कोउ होइ।
हसगर्भ जल खोल करि, पावत निर्विप होइ ॥ ५ ॥

जल क्रान्ति मणि गुण वर्णनम्—

जलक्रान्ति वंशाग्र धर, धरो जु जल के वीच।
नीर फटै चिहुं ओर कौ, ताहि न लागै कीच ॥ ६ ।

रत्न चिन्तामणि गुण कथनम्—

हीराक्रान्ति समान द्यु ति, दोप रहित निज अग।
पट कौनौ हरवौ तिरत, टाक सवा शुभ रंग ॥ ७ ॥

जा घरि चिन्तामणि रहै, तीन साङ्गि तिहि ठौर।
अरचाकरि फल लीजियै, ओरन की कहा टार ॥ ८ ॥

पीरोजा लच्छनम्—

॥ चौपाई ॥

पीरोजा जो पीयरें रगि, निर्मल दीठ करत तिहि सगि।
भाग्य जगत् अरु भजत दरिद्द,
वढत प्रताप करत रिपु रद्द ॥ ९ ॥

रक्तवर्ण पीरोजा जे वण्यौ, ताहि धरत फल गुरु मुख सुण्यौ।
वसीकरण या सम नहीं आन,
याहि धरौ मन धरि गुरु ज्ञान ॥ १० ॥

श्याम रंग, पीरोज प्रमान, ताहि धरत विष नाहिं निधान।
सर्पादिक विष अमृत पीयै,
त्यौ नर अल्प आयु बहु जीयै ॥ ११ ॥

मणि विचार कथनम्—

मैंढक मनि अरु मनुज मनि, सर्पन की मनि जानि।
ए तीनौं का जाति गुन, तुम्हें कहुंय वखानि ॥ १२ ॥

मैंढक मणि लक्षण चौपाई—

हरित वर्ण अरु होत त्रिकोण, सिंघारन आकारन और।
जोति बहुत गुंजा तिहि मान,
सोइ मैंढक मनि परमानि ॥ १३ ॥

मैंढक मणि गुण कथनम्—

जा घरि मैंढक मस्तक वनी, सदा जु होवत नर वह धनी।
धन विलसत नरपति दे मान,
वर अधिकार न खंडित आन ॥ १४ ॥

सर्प मणि कथन—

कज्जल सामल तनु जिहि रूप, अरु वर्त्तुल आकार अनूप।
तेजवंत दर्प्पन अनुहार, तामें प्रतिबिंबित आकार ॥ १५ ॥

तोल पाच गुंजा तिहि होत, कठिनाई एन गुन अधिक उद्योत।
वासिग कुल क्षत्र ह्वै नाग, ताके सिर उपजत यह लाग ॥ १६ ॥

सर्प मणि गुण कथन—

इन तें सर्पन कौ विप नसै, जल पखारि पीवत सुख लसै।
कचहुं कठ वंध तिहि भयौ, जलनहिं
उतरत तिहि यह भयौ ॥ १७ ॥
सर्प डक ऊपरि मन धरौ, लगै ताहि तु वी परि खरौ।
विप पीवत प्रफूलत सोइ, विप टारन यह और न होइ ॥ १८ ॥
पीछे धरियै भजन भरी उतारि परत पद्म माक्षि जुहरी।
होत नील छवि पय जानियै,
जल पखारि निज घर आणियै ॥ १९ ॥

नरमणि विचार चौपाई—

कोऊ उत्तम नर जो होइ, ताकै मस्तकि उत्पति सोइ।
चौकोनी ह्वै पाडुर रग, पीत छाय ताकौ तनि संग ॥ २० ॥
च्यार गुंज सम ताकौ तोल, वस्तु अनोपम होत अमोल।
याके ढिग यह रहत सग्यान,
सो नर पूजा लहत सयान ॥ २१ ॥

सोऊभाग्य अधिकारी कह्यौ, सो प्रधान नर शास्त्र हि लह्यौ।

तिहि रणमाहि न जीतहि कोइ,

जिहा विवाद तिहा विजयी होइ ॥ २२ ॥

अग्नि जाजात रहै न लगै घाउ,

यह नरमणि फलकौ कहै दाउ।

पढै गुनै सो होइ सग्यान, सुनत नराधिप दै तसु मान ॥ २३ ॥

॥ इति नरमणि विचार ॥

रत्नशिक्षा कथन—

रत्न जाति जेती विध कही, ताकौ राखन की विधि यही।

सहज्य वन्यौं त्यों ही राखिवौ,

घा करन घसिवौ घासिवौ ॥ २४ ॥

कवहौ लोहन घसीइ सोइ, श्याम रदन छेदन तें खोइ।

घरन मठारन गुन की हानि,

ग्यान विशारद गुरु की वानि ॥ २५ ॥

॥ इति रत्न धारन शिक्षा कथन सम्पूर्णम् ॥

— — — —

॥ चौरासी रत्न नाम ॥

पद्मराग (१) पुष्पराग (२) गिनहौ पन्ना (३) कर्कतन (४)।
वज्र (५) अनै वैडूर्य (६) चद्रकान्ते (७) वलि मनि भन ॥
सूर्यक्रान्ति (८) भनीश नवम जलक्रान्ति (९) कहीसह ।
नील (१०) अने महानील (११) इन्द्रनील (१२) सुजगीसह ।
रोगहार (१३) ज्वरहार (१४) है । विभवक (१५) विपहर (१६)
शूलहर (१७) शत्रुहरन (१८) सिरदार है ॥ १ ॥
रुचक (१९) अनैराग कार(२०) लोहिताक्ष (२१) अरुविद्रुम (२२)
मसार्गल (२३) हसगर्भ (२४) विमर (२५) अंक (२६)
अजनद्रुम (२७) अरिष्ट गिनौ अठवीस (२८) शुद्धामुक्ता (२९)
श्रीकान्तह (३०) शिवकर (३१) कौस्तुभ (३२) प्रभानाथ (३३)
शिवकंतह (३४) वीत सोग (३५) महाभाग (३६) हैं ।
सौगंध (३७) रत्न गगोदमणि (३८) प्रभकर (३९)
सौभाग है (४०) ॥ २ ॥
अपराजित (४१) कौंटीय (४२) पुलक (४३) सुभग (४४)
नें धृतिकरि (४५) ।
ज्योतिसार (४६) गुणमाल (४७) स्वेनरुचि (४८)
अरु पुष्टिकर (४९) ॥
हसमाल (५०) अशमालि (५१) पुनः भणियं देवानदह (५२)

गिणियै फाटिक खीर (५३) तेल फाटिक (५४) युति चंदह (५५)
नरमैंडक मणि (५६-५७) जाणियै ।
गरुड़ोद्गार (५८) भुयग मणि (५९)
चिन्तामणि पहिचानियै (६०) ॥ ३ ॥

॥ मधुकरमणि व्यवहारो ॥

अनेक रूप अनंत गुन, चिदानद चिद्रूप ।
भयभजन गंजन अरी, रजन सकल सरूप ॥ १ ॥
ताहि नमनकरकै गुनहुं, मणिके भेद विचित्र ।
जाके रूपरु गुन सुन्या, लहत भूप वर चित्र ॥ २ ॥
दक्षिण दिश रेवा नदी, वहैजु अति गंभीर ।
रत्न पहार तहा रहै, गिरवर मंडन धीरे ॥ ३ ॥
तहा गरुड़ उद्गार तें, महानदी मणि काल ।
चली ज्यौति परकास कर, पाप पवन भख व्याल ॥ ४ ॥
नाम हिंमा तें प्रगट हुई, मणी जु नाना रूप ।
भोगद मोच्छद गदहरन, सुकल गुनन कौ कूप ॥ ५ ॥

॥ चौपाई ॥

प्रथम मन्त्रमय देह वनाय, गो जीभी रस लेपहु काय ।
पाछहि रत्न परीक्षा करौ, शास्त्र वचन मन मे यह धरौ ॥ ६ ॥
तप्त हेम सम वर्ण जु होइ, नीली रेखा जामहि कोइ ।
सेत रंग धर रेखा पीत, रक्त रेख धर धरियै चीत ॥ ७ ॥

श्याम रेख जामे परछाइ, नीलकंठ ता नाम कहाइ।
ज्ञान भोग सों देत जु घनों,
दीरघ जीवत कर यह हम सुनौ ॥ ८ ॥
यो मनि हुय नक्षत्र कैमान, सेत रेख ता मध्य कहात।
सो मनि राखत होत कवीस,
वढत आयु सुख भोग जगीस ॥ ६ ॥
यो मनि कारी लियैं रेख, विल्ली नयन समौ फुनि देख।
सोई करत धन लाभ अनेक, यह राखन कौ धरहु विवेक ॥१०॥
मणि जो लाली तन में धरै, अरु पारद रुचि तनकिकपरै।
इन्द्रनील रेखा छवि सेत, द्रव्य देव ताकौ संकेत ॥ ११ ॥
शुद्ध फटिक सम रूप जु होइ, नीली रेखा तामैं कोई।
विष्णु रूपना मानिक को नाम,
देत राज मन पूरन काम ॥ १२ ॥
कृष्ण विन्दु या मणि के मध्य, सो मनि पूरत सगरी सिद्ध।
पीत श्वेत रेखा नहीं वनी, स्वच्छ नाम ताही कौ गिनी ॥१३॥
वन्यौ कवूतर कठ समान, ता महि सेत सिंदु ठहरान।
ताकौ दृढ चित करि जो धरै, ता तनकी विष पीरा हरै ॥१४॥
सारग नयन समी रुचि याहि, महा मत्त गज नेत्र लखाइ।
श्वेत विंदु कवहुं तहा रहै, ताको विषहर सद्गुरु कहै ॥ १५ ॥
केइ हर्य केते है लाल, के दामिनि शुभ रुचि सुविशाल।
के पिक लोचन छाया वने, ए सवहिन के गुन यों सुने ॥ १६ ॥
करि वाधत कोऊ नरराज, भूत प्रेत व्यतर सव भाजि।
जात और पीरा तिहि टरै, पृथ्वीपति जु प्रीति वहु करै ॥१७॥

नाना रंग धरत तन माझि, नाना रेखन की तहां झांकि।
बिन्दु अनेक परे तनुकहौं, नाग दर्प हर ताहिज लहौं ॥ १८ ॥
लाभकरन दुखहरन जु सुन्यौ, हम अपनी रुचि ताकौ बन्यौ।
कहत ईश जग सुख के काजि, सबे उपद्रव टरत अकाज ॥१६॥
नील वर्ण सुंदर तनु भयौ, बिन्दु पाच गुन ताकौ ठव्यौ।
निर्मल अंग छाय तिहि लाल,
वृत्त गरुड़ सुन कहौ अन आल ॥ २० ॥
जो सिंदूर छाय तनि गहै, रेखा सुंदर तामें रहै।
कृष्ण वर्ण कछु लीयै सरूप, टारत विष अमृत गुन रूप ॥ २१ ॥
कासी रंग धरत मनि कोइ, नानाविधि रेखा बहु होइ।
बिन्दु भाति भातिन के बने, ज्वर नाशन गुन ताके गिने ॥२२॥
पीयरी छाया लेत अनूप, रेखा द्वै ता मध्य सरूप।
सेतबिन्दु सिहि मध्यहि परै, विच्छू विप उतरै कहुं डरै ॥ २३ ॥
इन्द्नील सम याकी सोभ, सेत पीत गुन रेखा सोभ।
नेत्र रोग टारत यह शूल, जल पीवत ताकौ जन भूलि ॥ २४ ॥

॥ दोहा ॥

श्वेत पीत रेखा वनी, हरित वर्ण तन छाय।
ताको जल पान जु कीन, विप सव देत वहाय ॥ २५ ॥
गिहौ वर्ण पीयरी तनिक, गज नयन सम तात।
सेतविन्दु ता मध्यगत, सिटत अजीरन पात ॥ २६ ॥
लाली आधे तनि लीइ, अर्द्ध रहत पुनि श्याम।
रक्त शूल वक्ष (चक्षु) हर, कहौ सही गुन धाम ॥ २७ ॥
निर्मल स्फाटिक सौ वन्यौ, तनक श्याम कछु लाल।

विष वीछु काटत पुरत, मेटत तनु दुख जाल ॥ २८ ॥
अर्द्ध कृष्ण पुनि अर्द्ध महि, लाली उजरी छाय ।
तनक परत सब विष हरत, कहत गुनी ठहराय ॥ २९ ॥
रक्त देह पुनि रेख तिहा, रक्त बनी शुभ छाय ।
भमर परत ता मध्य यह, गरुड़ नाम ठहराय ॥ ३० ॥
यातें सर्प रहै कदा, ओर विषनि कहा वात ।
सूर उदय तम ना रहत, गुन इह कहायत भ्रात ॥ ३१ ॥
पीत अग पीरी परी, रेख रक्त पुनि ताहि ।
सकल रोग हर जानियै, मृगनयनी सुखदाय ॥ ३२ ॥
पीयरे तन कारी परत, रेख विन्दुअन लेख ।
मेटत विष अहिराज कौ, औरन कौन विशेष ॥ ३३ ॥
कूष्माण्डी फूलन भनक, तामे विन्दु अनेक ।
रोग सकल नयना हरत, यह गुन याकी टेक ॥ ३४ ॥
रक्त वर्ण वहु विन्दु युत, तेज पुंज तिहि देह ।
ए सब विषनासन कहौ, यामें नहिं संदेह ॥ ३५ ॥
विंदुनाभ यह नाम मनि, महा तेज तिहि माझि ।
कृष्ण विन्दु भूषित सकल, रोग हरन गुन साझि ॥ ३६ ॥
आम्र फल समान रुचि, ता महि कारे विन्दु ।
सोह पुत्र सुख देत तुम्ह, कुल कुमुदन को इन्दु ॥ ३७ ॥
दार्यो पुहुफ समान द्युति, कृष्ण विंदु कन आन ।
सो सौभाग्य करै प्रिया, यह गुरु वच परमान ॥ ३८ ॥
कुंद फूल सम मनि वन्यौ, वन्यौ वृत्त आकार ।
सो विष मर्दन जानियै, गुरुवचननि अनुहार ॥ ३९ ॥

छागज नेत्राकार मनि, मजारी नयनाभि ।
गरुड़ तेज सम तेज ह्वै, पूजत पइयत लाभ ॥ ४० ॥
मनि मयूर चित्रज बन्यौ, कछ्रयक स्फाटिक ज्योति ।
सो सब राजा ताहि कै, मन वंछित फल होत ॥ ४१ ॥
मनि शुक पिच्छ समान ह्वै, सेत बिन्दु तिहि माभि ।
विघन कोरि मेटत मनी, अरिनि सकैत न गज ॥ ४२ ॥
पारद वरन समान रुचि, ता महि उजरी रेख ।
आयु वढत ता संग तैं, या महि मीन न मेख ॥ ४३ ॥
सकल वर्ण या रत्न महि, नाना रेख सरूप ।
अर्थ विविध पर देत सौ, मान देत वर भूप ॥ ४४ ॥
विविध रूप धर विविध मनि, दीसत है जग मांहि ।
ते सब गरुड़ समान है, विष मर्दक गिन ताहि ॥ ४५ ॥
उदर मध्य उजरी भनक, कृष्ण वर्ण तिहि पीठ ।
सर्प सरूप बन्यौ सरस, विष नासत द्दग दीठि ॥ ४६ ॥

॥ चौरासी संग जाति वर्णन ॥

१ एमनी, २ हकीक, ३ दाहिण फिरग, ४ पारस, ५ रेसम, ६ सलहमानी, ७ कपूरी, ८ पन गम्म, ९ वाफेल, १० फिटक, ११ विलोवर, १२ दतला, १३ तुलमिरी, १४ सोनेला, १५ धोनेला, १६ तावड़ा, १७ लाजवर्ग, १८ जवनीया, १९ गोदंता, २० तन जावरी, २१ नेसावरी, २२ भसमी २३ वाचागोरी,

२४ गोरी, २५ जवरजद, २६ मरगज, २७ दहीचल, २८ वागुर, २६ सहसवेल, ३० चमक, ३१ विछीया, ३२ सदली, ३३ चुंदड़ीया, ३४ मुसा, ३५ झीला, ३६ वादल, ३७ मकडाणा, ३८ मरवर, ३६ गिलगच ४० मगसेलिया, ४१ हावुरा, ४२ कसोटी, ४३ जाफरान, ४४ कुरंड, ४५ सीमाक, ४६ अरणेटा, ४७ पलेवा, ४८ लीली ।

॥ चौरासी संग विवरण ॥

१ संग एमनी जाति—१ हप्सानी, २ आकूदी, ३ सरवनी ४ खभाइती ।

२ पीरोजा जाति— १ नेसावरी, २ भसमी, ३ भोटगिया ।

३ दाहिण पिरंग जाति—१ लोहाइ, २ मिसाई, ३ तुकराई, ४ चिल्हाई ।

४ सग रेसमकी जात—१ सग कपूरी, ३ सग अगूरी ।

॥ क्रय विक्रय व्यवहार कथनम् ॥

॥ दोहा ॥

रत्न परीक्षा ए कहीं, ताते मोल कहाय ।
क्रय विक्रय के भेद विनु, द्रव्य लाभ कहा थाइ ॥ १ ॥

देश काल गति वूझ कै, गाहक सपति देखि ।
मोल करै सोऊ सुवर, यह विवहार विशेषि ॥ २ ॥

मिष्ट वचन बहु मान तें, गाहक लेह वुलाय ।
मिलत परस्पर हेत सें, आसन देहि विछाय ॥ ३ ॥

पान फूल सौगंध की, बहुतें कर मनुहार।
आदर कर सतोष तें, मोल कहो सुविचार ॥ ४ ॥
जो कोउ अति निपुण है, जानै रत्न विचार।
तो वह साखी लेह कै, मोल कहौ निरधार ॥ ५ ॥
कर पर ढांक्यै वस्त्र तें, लैन दैन संकेत।
दस बीस शत सहस्र की, कर अंगुली मग देत ॥ ६ ॥
रत्नविशारद लोक जे, मुख हित बोलैं मोल।
कहियै हाथ पसारि कै, मणि मोतिन कौ तोल ॥ ७ ॥
ऐसी विधि से जो करै, क्रय विक्रय व्यवहार।
ताकै पर बहुतै रहै, मणि माणक भंडार ॥ ८ ॥
॥ इति क्रय करण विधिः ॥

नवरत्न महिमा कथन :—

॥ कवित्त ॥

पन्ना परम निधान, पास जब लगौ हीरा।
मुत्ताहल प्रवाल, गुणहि गोमेदक धीरा ॥
लीलालाभैं लक्ष, लेत बहु मोल लसणीया।
पुष्कराग की शोभ, सोइ है अति ही हसणिया।
मणि नायक माणत मुदै।
कुंदन वारह वानसै, ए नव घर दिन प्रति उदै ॥ १ ॥

फल कथन चौपाई :—

सुघर पुरप जो याको धरै, ताहि सुखी निहचै यह करै।
राज्य मान लक्ष्मी होइ घनी, निहचै रहत ताहि घरि वनी ॥२॥

लोक सकल तिहि देवत मान, सुखी होत गुरु मुख यह ज्ञान।
इह नवरत्न विचारज भयौ, कहत अबै फल इन कौ नयौ ॥३॥

ग्रन्थालङ्कार वर्णनम्

॥ छप्पय ॥

विद्या विनय विवेक विभौ वानी विधि ज्ञाता।
जानत सकल विचार सार, शास्त्रन रस श्रोता ॥
पढत गुनत दिन रयन, विविध गुन जानि विचच्छन।
कला वहुत्तरि धारि, धरै वत्तीसहु लच्छन ॥
कुलदीपक जीपक अरिय, भरिय लच्छि भडार तिहि।
होहि रत्न व्यवहार सें, इह कारन धारन किरिय ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

ता कारन कीनौ सुगम, ग्रंथ जु मो मति सार।
सज्जन तुम शुद्ध कीजियौ, भूलचूक आचार ॥ ५ ॥
श्रावन वदि दशमी दिनै, सवत अढार पैंताल।
सोमवार साचौ सुखद, ग्रंथ रच्यौ सुविशाल ॥ ६ ॥
खरतर गच्छ जाणो खरो, सोटिम वड़े मंडाण।
सागरचंदसूरीश की, ता मध्य शाखा जाण ॥ ७ ॥
ता शाखा मे दीपते, महो पाठक सुजगीश।
आगम अर्थ भडार है, पद्मकुशल गणीश ॥ ८ ॥
प्रथम शिष्य तिनके कहूं, वाचक पद के धार।
दर्शनलाभ गणी कहे, ताहि शिष्य सुविचार ॥ ९ ॥

पं० संज्ञा धारक प्रवर, तत्त्वकुमार मुनीश ।
ग्रंथ रच्यो बहु हेतधर, दिन दिन अधिक जगीश ॥ १० ॥
मेरु रहै भूमंडलै, शशि सूरज आकाश ।
पाठक तौलुं थिर रहै, लक्ष्मी लील विलास ॥ ११ ॥

॥ इति रत्नपरीक्षा ग्रंथ सपूर्णम् ॥

(१) स० १८७१ मिती भाद्रवा सुदि १ दिने लिपिकृता ।
पं० जयचंद ॥

यादृशं पुस्तक दृष्ट्वा, तादृशं लिखितं मया ।
यदि शुद्ध मशुद्धं वा, मम दोषो न दीयते ॥ १ ॥
गगन धरा विध मेरु गिर, धरै सहा ससि भार ।
युग च्यारुं चिर जीवज्यो, पोथी वाचणहार ॥ २ ॥
पोथी प्यारी प्राणथी, हिर हिवड़ा को हार ।
कोड़ जतन कर राखजो, पोथी सेती प्यार ॥ ३ ॥
पोथी माहे गुण घणा, कहियै केता वखाण ।
जयचद ए पोथी लिखी, वाचो चतुर सुजाण ॥ ४ ॥

सुश्रावक पुण्यप्रभावक साहजी मौजीरामजी तत्पुत्र गुलाबचंदजी झाल बाबु पठनार्थम् ॥ श्रीमहिसापुर नगरे ॥
[गुटकाकार पत्र ३०]

(२) संवत् १९११ का शाके १७७८ का मिती कार्तिक सुदि १३ लिखी मकसूदाबाद बालोचरगंज मे वड़ी पोशाल ।
पोथी ईसरदासजी दूगड़ की ॥ श्रीरस्तु ॥ शुभभवतु ॥१॥ श्लोक संख्या ५०१ ॥ [पत्र १८ राय बद्रीदास म्युजियम]

वाचक रत्नशेखर कृत

रत्नपरीक्षा

ॐकार अनेक गुण, सिद्धि रूप परगास ॥
पाचुं पद यामें प्रगट, सुमरिन पूरन आस ॥ १ ॥
अलख रूप यामे वसै, अनहद नाद अनूप ॥
ब्रह्मरंध्र आसन सजै, रच्यो अनादि सरूप ॥ २ ॥
सुमरिन याकौ साधि के, रचिहु ग्रन्थ मति[1] आनि ॥
रत्नपरीछा देख के, भाषा करहु वखानि ॥ ३ ॥
आन कवीसर के किये, संसकृति सब ग्रन्थ ॥
तातैं मो मन मैं भई, भाषा रस गुन ग्रन्थ ॥ ४ ॥
सो० भाषा रस को मूल, भाषा सबको बोधकर।
तातें हम अनुकूल, भाषा कारन मन कह्यो[2] ॥ ५ ॥
कानौ वगला मा[3] दोव, ताके मध्य विभाग।
नदी तपती या तीर तहाँ, वसत नगर नृप लाग ॥ ६ ॥
सूरति गुन मूरति जिहां, वसत लोक वन आढ।
ताहि विलोक कुवेर कत, मान धरति मनि गाढ ॥ ७ ॥
तहाँ वसत दातार मनि, गुनी धनी शुचि सोल।
भाग्यवन्त चतुरन चतुर, भोम साहि लद्धि लील ॥ ८ ॥

---

१ मति, २ करूँगा, ३ ना।

शंकर शंकर तास सुत, कुल मंडन जस जास।
ताहि विलोक विचछनहि, होवत हीय प्रगास ॥ ६ ॥
श्री श्री हंस उद्योत कर, धरमवन्त धरि धीर।
सकल साहि सिरदार वर, भंजन दारिद नीर ॥१०॥
ताकी इच्छा इह भई, रतन सबन[1] में सार।
याकी भाषा करि पढे, गढे[2] हीयनहि हार ॥११॥
ताकि रूचि सुचि साधि कै, रचिहुँ चित धरि चोप।
मन वच क्रम मग पाइ वर, मन जिन आनहुं कोप ॥१२॥
वाचक रत्न प्रकाश कर, रत्न परीछा भेद।
कहत रत्न व्यवहार इह, मन सौं धर्यो उमेद ॥१३॥
संवत सतरह से अधिक, साठि एक करि औन।
अगहन सुदि पंचमी दिने, गुरु मुख लहि गुरु भौन ॥१४॥
ऋषि सबै करि जोरि कै, मुनि अगस्ति ढिग आई।
पूछत रत्न विचार सब, विधिसौं प्रणमी पाय ॥१५॥
सो० सुर असुरनि के इद, अरु विद्याधर नाग फुनि।
मुगट कंट करि वन्द, कर हृदयादि सिंगार सब ॥१६॥
तहा लगे जे रत्न, ताकी उतपति जानिवी।
कहौ मुनि करि यत्न, श्रेष्ठ सबे मुनि विचि हो ॥१७॥
चौ० सुनौ सबै मुनि कहौ विचार, उतपति थानकि वर्णाकार।
जाति दोप पुनि गुन अरु मूल, लैन अलैन सब अनुकूल ॥

---

१ तबे संसार, २ गहै हियन दृढ हार।

जो सब देवन को है वध्य, वलि दानव तिहु लोगनि मध्य।
सब देवन सो हन्यो न जाय, यग्य काज प्रारथना पाय॥
तिनि दीनी अपनी तव काय, दे देवन सनमुख ठहराई।
देह किये वज्री मन वज्र, वल मस्तक छेद्यो धरि वज्र॥
दो० हन्यो जवें वलि दैत्य तव, रुधिर विन्दु सव देखि।
वज्रनाम देवनि धर्‍यौ, श्रेष्ठ सवनि मे लेखि॥
वल सिरतें ब्रह्म जु भयो, भुज से छत्री जानि।
वैशि नाभि ते प्रगट हुअ, शूद्र चरन ते ठानि॥
ते सवहिन च्यारू लीयै, सुर असुरनि मुनि यक्ष।
नाग विद्याधर किन्नरनि, भुपन करन सुदक्ष॥

अथ वज्र के आकर कथन :—

दो० तिहु लोक परसिद्ध कीय, ताके आकर आठ।
युग मे द्वै द्वै अनुक्रमहि, ए आगर[1] गन ठाट॥
कृत्त मे कौसल अरु कालिंग, त्रेता हेमज फुनि मातंग।
द्वापर पौंडरू सोरठ खानि, कलि सोपार वेणुज द्वै जानि॥
च्यारू युग के आकर[2] कहे, शास्त्र पंथ गुरु ढिग यौं लहे।
महिमा तेज सवं गुन आध, आगर वांटि लेत सुत[3] साध॥
इम विधि युग में आगर होय, होई अनुक्रम जानहु सोई।
अव मातौ दीपन की रीति, सुनत चित्त वाढत वहु प्रीति॥
दो० चारु युग की जे कही, द्वै द्वै आगर वात।
ते सव जम्वुद्वीप की, आननि और विख्यात॥

---

[1] ए आदिनी का ठाठ. [2] आगर, [3] गुन।

षट द्वीप नै तेज जस, मिटे न आधे मान।
जसो याको रूप गुन, ताको त्युही जान॥
च्यारो वर्ण विचारि के, करूऊ परीक्षा शुद्ध।
ज्यो गुन मूल लखै सवै, फल पाइयइ अविरुद्ध॥
संख फटिक कै मान छवि, शशि रूचि प्रवल प्रकाश।
चिकनाई संयुक्त फुनि, सो ब्राह्मन शुचि वास॥
जो हीरा लाली लीयइं, पीयरी तामै झाई।
ताको छत्री मुनि कहत, तुमे सदा समुझाई॥
वज्र पीयरे तनि वन्यौ, जीये[1] सेत पर छाई।
वैश्य वरनीये ताहि को, कहे अगस्ति बनाई॥
श्याम रंग हीरा लीयइ, तामे तेज अनन्त।
शुद्र जाति तासौ कहौ, इहि मुनि कह्यो जु तन्त॥
चौ० इह विध हीरा लछन कहै, वर्ण परीछा गुण करि गहै।
निकट रहै ताकौ फल सुन्यौ, जुदो-जुदो करिके जो बन्यो॥
ब्रह्म-ब्रह्म हीरा जो धरै, वेद चार पाठी फल करै।
सर्व जग्य कीनो फल होई, सात जन्म विद्या फल सोई॥
छत्री-छत्री हीरा पास, शत्रु सवे ह्वै ताके दास।
सब लछन पूरन जो होइ, रन दुर्जन भय वैर न कोई॥
वैश्य वैश्य हीरा अनुसरे, सो धन कला सवै करि धरै।
चातुरता सब कारण दछ, इहि विधि फल पावै परतछ॥

---

१ लीयै।

चौ० शुद्र शुद्र राखे जो हीर, धन धान्य की लहै न पीर।
पर उपगारी अरु वलवंत, लोग कहे यह नर है सन्त॥
शुद्र जाति हीरा जो होई, गुन संपूरन लछन सोई।
ताको मोल लहे वहु मानि, इहि विधि वोले मुनि की वानी॥
ब्रह्म जाति हीरा गुनहीन, ताको मोल नहीं मति हीन।
गुन करि मोल सकल जन वाच, यामें कहा कथन में साच॥

दो० हीरे च्यारों वर्ण के, तामे कोउ होय।
मीच अकाल रु सर्प गद, वैर वन्हि भय खोय॥

सदोष हीरा को फल कथन :—

जे फल निर्दोषनि कह्यौ, तासौ इह विपरीत।
ता कारन निर्दोप ले, भूपन धरो सुरीत॥

अब हीरों के गुण दोप कथन :—

दो० पाँच दोप गुन पांच फुनि, छाया चार विचार।
मोलवार परकार यह, करो शास्त्र मग धारि॥

पांच दोप भिन्न भिन्न कथन :—

मल विंदु यव रेख यह, काकपदनि मिलि पाच।
यह ढिग राखि ताहि को, स्थान मान फल साच॥
धारा अंतरगति रहे, कौण माफि मल खोय[1]।
वज्र अग्रमल कहत हैं, रत्न विशारद होई॥

चौ० मध्ये मल भय अग्निहि करई, धारा मल दृष्टिक उर धरइ।
कौण अग्र मल यश को हरें, ताको पंडित फल उच्चरें॥

१—गोइ

अथ बिंदु के प्रकार कथन :—

आवर्तिक पुनिवर्त कर, रत्नबिंदु यव रूप।
एच्यो विधि जानीयै, विन्दु दोष दुख कूप॥

याहिन को फल कथन :—

दो० आयु वृद्धि धन वृद्धि पुनि, होत जिहि आवर्त।
ताकौ फल निह्चै लहै, धरज्यौ मर्त अमर्त्य॥
यामै वाती सी बनी, ताकौ धरै नरेस।
सो नर गद पीड़ा लहै, यह फल कह्यो विशेष॥३६॥
रक्त विन्दु जिहि वज्र महि, सोई धरे फल देखि।
त्रिया पुत्र छ्य दोष ह्वे, देश त्याग यव लेखि॥३७॥
रक्त पीत अरु सेत यव, यह[1] मुनि कहै जु तीन।
ताकौ धारत फल कह्यो, तामै मेप न मीन॥३८॥
रक्त वर्ण यव छ्य करत, गज वाजिन महाराज।
पीत वंश छ्य कहत फुनि, धारत होत अकाज॥३९॥
सेत यवाकृति देखि कै, धरै जु हीरा कोइ।
ताकौ धन अरु धाम बहु, लछि लील घरि होइ॥४०॥

सो० यव कौ गुन है एक, दोष दोय कोविद कहे।
धारहु धरिय विवेक, रत्नपरीक्षा गुन लहै॥४१॥
पुनि रेखा च्हिुँ भेद, वाम दक्ष अरु विपम मग।
उर्द्ध गता ए वेद, याकौ फल सु विचार ढिग॥४२॥

१—भेद कहे मुनि तीन

सो० पासैं डावे रेख, सो हीरा अलपायु कर।
यामैं सोधी देखि, सो राखि बहु सुख करै ॥४३॥
बिसमी यामैं होइ, रेख सोइ बंधन करी।
ऊरध रेख फल जोइ, शस्त्र घाउ छिनमै लगे ॥४४॥
इह रेखन के तीन, दोप एक गुन गुरु कहै।
कबहों होहि न दीन, जो गुरु सीख सदा गहै ॥४५॥
दो० जो हीरा षटकोण है, तीखा लघुता सूल।
पुनि अठकोना आठ दल, काकपदी तिहि कूल[1] ॥४६॥
काकपदी जु काकपद, सिरसी रेखा होइ।
ताकौ फल हम कहतु है, गुरु मुख देखहु सोई ॥४७॥
सो हीरा जिहि ढिग रहत, ताकौं आनत मीच।
सुनत सयाना ना गहै, नही आनत घर बीच ॥४८॥
चौ० बाहिर फाटा हीरा होई, अरु अन्तर्गत फाटा सोइ।
भग्न कोट पुनि वृत्ताकार, सो फल देन समर्थ न धार ॥४९॥

अथ वज्र के पांचों गुन कथन :—

दो० बाहिर मध्यरु अग्रत, समता[2] होइ सुग्यान।
सो हीरा कौ प्रथम गुन, कहत कुंभ भू मान ॥५०॥

अथ मतांतरे प्रकारांतरेण पांच गुन कथन :—

दो० हरुओ अठ कोनो षटकौन, तीखी धारऽरु निर्मल जौन।
इन गुन पंच सहित कर सेव, ता भूषण कौं धारहि देव ॥५

1—वस 2—तमना

अथ छाया गुन—

चो० सेत पीयरी राती स्याम, इह छाया च्यारौं गुन धाम।
च्यार वर्ण कौगिणी लीजइ, ब्रह्म आदि अनिक्रमि कीजई ॥ ५२ ॥

अथ तोल को भेद कथन :—

धारा अग अग्रत तल[1] देखि, लछन सवे शास्त्र विधि लेखि।
पाछे तुला चढाई मोल, कहौ परीछक वाढ़ै तोल ॥५३॥

अब तोलन को मान कथन :—

सो० सरषप आठै सेत, मान चढ़े तंदुल तुला।
वज्रन को संकेत, मोल करन मन मै धरौ ॥ ५४ ॥
वज्र तुल्य[2] परमान, पहिले पिंडु जु कलपीयै।
तापि उन के मोल, त्रिधा उरध मध्यम अधम ॥ ५५ ॥
ज्यां भारी त्यो मोल, अधम मध्यते अधम फुनि।
हरवै उत्तम मूल, यामै कछू न विचारना ॥ ५६ ॥

सो० भारी हीरा होइ, मोल त्रिविध ताकौ कह्यौ।
लघुता लीयै जु कोइ, ताहि को पुनि तीन विधि ॥ ५७ ॥
अति हरओ जो होइ, वज्र सोइ षट भेद गिन।
भेद चार विधि सोइ, मोल करत यौ रतन विद ॥ ५८ ॥
पहिलै हीरा देखि, पिंड मान मन में धरौ।
पीछे तोल विसेष, मोल मान मुनि ते कहौ ॥ ५९ ॥
यव मिति याकौ गात्र, तोल एक तंदुल समौ।
मोल अर्द्ध शत मात्र, ताकौ कहौ निसंक मनि ॥ ६० ॥

१—तन २ मुल्य।

पिंड मान यव दोय, तोल चढ़ै तन्दुल तुला।
मोल चोगुणो होइ, कहौ सयान वयान करि॥ ९१॥
पिंड मान यव तीन, तंदुल एक समो वजन।
मोल आठ गुन कीन, रत्नपरीछक नर निपुन॥ ९२॥

पुनि मोल के भेद कहतु है—

चौ० याके पिण्ड समान, तोल पुनि जानियइ।
ताको मोल पचास, ठीक करि ठानीयें॥
रत्नशास्त्र मग जान, कहै इहि भाँति सौ।
ताको मग तुम हेरि, कहौ मन खाति सौ॥ ९३॥
या हीरा को मध्य, दुगुण होइ तोलइ तई।
ताकौ चौगुणो मोल, कहौ मुख वोलंतइ॥
याकौ त्रिगुणो मोल, पिंड तोल तै जानीयें।
ताकौ मोल विचार, च्यारि सें मानिये॥ ९४॥
पिंढ मान गिन लेउ, पंच गुन वजन सौं।
ताकौ धन शत पंच, कहो तुम सजन सौं॥
होहि पंच गुन पिण्ड, वज्र चढतैं तुला।
मोल तै लहै सत आठ, सही गुन तै भला॥ ९५॥
याहि पट गुनो गात्र, तोल के पात्र तें।
सहस्र एक तस मोल, देत द्रग मात्र तैं॥
सात गुनौ जो पिंड, तोल तैं वाढि है।
हीरा लहै मोइ, सहस दोय काढि है॥ ९६॥

जानौ इन ही भाँति, गात ज्यों-ज्यो बढ़ै।
चढत तुला तब तोल, दीन तुलतै चढ़ै॥
बाढ़ै त्यौं त्यौं मोल, मुनीसर यौ कहै।
तुम हौ जानौ जान, मोल लघुता लहै॥ ६७॥

वज्र मध्य इहि भाँति, अधिक ज्यौ ज्यौ कहै।
तातै भाग ज एक, एक घटतै रहै॥
ताकों मोल सुबोल, अठार गुन सुन्यौ।
लक्षमान इहि रीति, प्रीति करि कै भन्यों॥ ६८॥

दो० जिहि हीरा के भाग द्वै, जल माहि तिरै जु सोइ।
मोल लहै छत्रिस गुन, संसय धरौ न कोइ॥ ६९॥
तीन भाग तिरते रहै, बहुत्तरि गुन तिन मूल।
लह्यौ कह्यौ मुनिराज नै, यामै कछु न भूल॥ ७०॥
ज्यों ज्यों पिंड प्रमान तै, लघुता गुन होइ वाढ॥
वज्रमोल त्यों त्यों सरस, सहस बहुत्तरि पाठ॥ ७१॥
भार वडो पिंडहि वढ़ै[1], त्यौ मोलन की हानि।
जिहि भाँति वढतो कह्यौ, घटत तिहि परमानि॥ ७२॥
जो है गुन करि छीन, ज्योतिवंत ताकी कला।
ताको मोल जु हीन, कह्यौ विचार उत्तम सदा॥ ७३॥
या हीरा मे ज्योति नहीं, अरु लछन गुन सोइ[2]।
ताको मोल जु करत सव, ससय धारक होइ॥ ७४॥

---

१ घटे, २ कोइ।

ता कारन चित थिर ह्वै, आतुरता करि दूर।
लघु कर पुरनि[3] दृष्टि दे, मोल कहो मन पूरि॥ ७५॥
पाछै वोलि सुजान नर, जुगति जरईआ[4] हाथ।
दीजै फल लीजै बहुत, लछि लील सुख साथि॥ ७६॥
ज्यो सविता को तेज अति, कहा करै दृग हीन।
त्योही ज्योति विना धरै, सो नर होत जु छीन॥ ७७॥
ना जड़िहौ ना पहिरिवौ, ज्योति रहित यहि रूप।
ताकौ गुन कोउ नहीं, जैसो अधम[1] सरूप॥ ७८॥
यो हीरा उत्तम गुनहि, सो धारो उत्तम संगि।
उत्तम रत्न सुवर्ण जुरि, सोभत ताहि संगि॥ ७९॥

सव हीरन में श्रेष्ठ वज्र निरूपण—

अडिल्ल—जो हीरा जल माहि तिरं सुनिपण सू
सेत दोप के पत्र सरीखे वर्ण त्यौ
ताको मोल सुवर्ण तुला इक जानीयइ
कहत रत्नविद कोटि म्राच करि मानीयं॥ ८०॥

चौ० सव ऋषि मेलि कही यों वात, मंडलीक को करहु विख्यात।
कवहो जरईआ होई अजान, इह विपरीत जरयं सुख हानि॥८१॥
मुख अरु धारा कौण जु लहै, ताकौ थान हृदय सव गहै।
जरिया परीछि विना जो जरे, ताके सिर इन्द्रायुध परं॥ ८२॥
इहि विधि आठौ भेद सुचित्र, वाह्य अभ्यन्तर लहै विचित्र।
जो नर नरपति आगं कहै, सो नर मान थान थिर लहै॥ ८३॥

---

३ पुरपनि, ४ या, १ अंध।

अब रत्न के दस भेद कथन—

दो० सो० जाति राग[1] रंग रोल[2] वर्त्ति[3] गात्र[4] गुण[5] दोष[6] फुनि।
आकृति[7] लाघव[8] मोल[9], ए[10] दश भेद विचार सुनि॥ ८४॥

अथ वज्रनि के क्रय-विक्रय के देश कथन—

दो० आगर पूरब देश के, कासमीर मध्यदेश॥
सिंघल देशरु सिंधु फुनि, इहाँ वज्र क्रय लेस॥ ८५॥
यौं हीरा चारु वरण, लछिन बिन ही भंग॥
सो हीरा सुनि मण्डली, योग नाहि गुन भंग॥ ८६॥
जिहि कारण लछिन रहित, हीरा माहि जु कोई॥
देव दैत्य अरु नाग खग, करत प्रवेशन लोई॥ ८७॥
एते गुन संयुक्त होई, योग्य मण्डली होई[1]॥
देवहि दुर्लभ होइ जहाँ, सोई उत्तम ठाम॥ ८८॥

हीरा के क्रय विक्रय को व्यवहार कथन—

अडिल्ल—गाहक आप बुलाई, बहुतर आदर कीइ।
आसन सुन्दर गन्ध, पहुपमाला लीइ॥
सवै सभा जन बोल मान बहुतै दीयै।
मुख तै गुन अरु विचरेफु है,
ऊपरि टाकै वस्त्र समस्या मोल है॥ ८९॥
लाख सहस संकेत करै कर आगुली।
लेत देत ढिग[2] मोल कहौ इह क्यौ बुरी॥
कीजै हाथ पसार द्रव्य संख्या सदा।
मुख हिन बोलहु बोल तौल[3] गुन को मुदा॥ ९०॥

---

१ नाम, २ दिढ ३ तोल।

दो० जो कोऊ होवे दक्ष अति, जानै रत्न विचारि।
तोऊ साखी एक करि, मोल कहो निरधारि ॥९२॥
कूर करत कोऊ रत्न, ठगत सयान अयान।
ते मध्यम नर नरग गति, लहत दुख असथान ॥९३॥
हत्याकारक सैं[1] अधिक, तातें करहु न कोई।
फल याकौ अति दुष्ट गति, कृत्रिम करहौ न सोइ ॥९४॥
अथवा कृत्रिम शुद्ध महि, ससय उठत तरंग।
तबहि परीछा करि गहौ, क्षार खटाई संग ॥९५॥
क्षार खटाई लेह पुनि[2], खरे धरे खुरसान।
तातें तिलजु धरें नहीं, यह हीरन परमान ॥९६॥
या मे कूर कछु होइ, ताकौ वर्ण विनाश।
पाछ धोवत शालि जल, खिरन कूर परगास ॥९७॥
इसें[3] कूर अरु साच की, करत परीक्षा होई।
कूड़ा तजे साचाहि गहौ, दुरजन हसे न कोई ॥९८॥
यामै नाहीं कूर कछु, सो लोहन के साथि।
घसे न भेदे और कछु, ताकौ ल्यौ तुम हाथि ॥९९॥
हीरा मे हीरा घसे, लसे न कोउ और।
ता कारन यह वज्र को, मान[4] धर्यौ मुनि भोर ॥१००॥
अबै इहां कलि बीच नहीं, जाति शुद्ध अठ अंग।
षटकोनो पुनि देखि गुन, साधत सकल सुरंग ॥१०१॥

१—सयो २—पुनि ३—ऐसे ४—नाम

ऐसे सुन्दर शुद्ध गुन, ताहि सकल भूपाल।
मुकट माडि मस्तक धरै, करिहु जु कृपा कृपाल ॥१०२॥

कोऊ कंठ भुजानि मध्य, धरै ताहि धन धान।
रत्न अभंग सुख संग अरू, उत्तम गुन संतान ॥१०३॥

जो भूषन हीरन जस्यौ, धरै गरभिनी नारि।
गर्भपात होई ताहि कौ, कह्यो मुनीश विचारि ॥१०४॥

गंधक अरु रसराजि मिलि, वज्र योग रसराज।
नरपत सेवत सुख लहै, भोग योग इह साज ॥१०५॥

अथ मौक्तिक व्यवहारो निरूप्यते :—

ॐकार अनन्त गुन, यामें सकल प्रकास।
ताकौ ध्यान हियै धरी, मोतिन कहूं विलास ॥१॥

वज्र बात सबहिन सुनि, मुनी सबन के ईस।
अब मोतिन उतपति कहौ, मन धरि बिसवा वीस ॥२॥

जिहि भाँति उतपन्न है, मोल तोल परमान।
जुदै जुदै करि त्यों कहौ, ज्यो देवै नृप मान ॥३॥

सो० सुनहौ तत्व जिहि मान, कहौ तुमइ संछेप तै।
जिहि जिनको विग्यान, सभा लोक आछे पतै ॥४॥

मुक्ताफल की आठौ खानि कथन :—

दो० घन तै[१] करितै[२] मछते[३], अहि[४] संख[५] अरु वंश[६]।
मुनि वराह[७] सीपनि[८] सुनी, मुक्ता खानि प्रसंस ॥५॥

थानि आठ कोविद कही, तामे सीप प्रसिद्ध।
मोल लई कलि में अधिक, अंगीकृत करि सिद्ध[1] ॥ ६ ॥

प्रथम मेघ मोतिन को व्यवहार कहतु है—

अडिल्ल—घन मोती जु होइ सोइ आकाश तें।
हरत देव तिहि बीच भूमिकापास तें॥
[2]जिहि विमान ले जाहि अपछरा भोग कौं।
सुख विलसें संसार सदा रति योग कौं ॥ ७ ॥
याकौं ज्योति प्रकाश दामिनी भानु सौं।
निरख्यो काहू जाइ होइ मन आन सौं॥
सुर सिद्धनि के काज आज इह जानीयें।
ताको भोग विलास ताही को मानीयें ॥ ८ ॥

अब गज मोतिन को विचार कहतु है—

सो०—गज मोती गजराज, कुंभस्थल तें प्रगट हुई।
अरु कपोल तें साज, दोई थान मुनि पें सुने ॥ ९ ॥
थोरी उतपति ताहि, ना लेवौ ना पारिखौ।
मुनि वच धरि मन माहि, गज मोती गिनवौ अकज ॥१०॥
रतन शास्त्र मग जानि, इन दोऊ अधमजु कहे।
मान आभरनि मानि, छाया पीतली लउ रहै ॥११॥

अब मछ मोती कहतु हैं—

सो०—मछ जाति उतपन्न, मुक्ता वृत वरन शुभ।
मत्स्यादि तिहि तिन्नि, गुंजमान जानहु गुनी ॥१२॥

१—सिद्ध. २—जिम, ३—ये।

दो०—तिमि तिमिंगिल मछ के, मोती परयन दीठि।
[1]दीन भाग्य नर की कहूँ, यह मुनि कहै वसीठ ॥१३॥
पाडल पहुप समान रुचि, नाग लौक हे ताहि।
मनुज मध्य पईयइ नहीं, कहत मुनि ठहराहि ॥१४॥

अथ सर्पइं मोतिन को सरूप कथन—

चौ०—अति उज्ज्वल उपरितनि छायै, तामै नीली झाख न झाही।
तन अशोक फल जैस मानि, ता मोतिन अति उतपति जानि॥१५॥
ताकौ धरै नरेसर कोई, विष पीड़ा ताहि न होई।
यौ अगस्ति मुनि बोलति वानि, यामै कूर नही सही जानि॥१६॥

दो०—जाके घरि मुगता सरस, ताके सुन्दर राज।
गज अरु वाजि समाज सब, धन विलास सुख साज ॥१७॥

पाचों की खानि वंश ते कहतु है—

अड़िल्ल—दिशि उत्तर वेताढ्य पहार - महार है।
रूपा को सो रूप तहा न विचार है॥
ताकौ कूट विचित्र चित्र देखत लहै।
वाके ढिग कोउ वंस-सु-वस मुनी कहै ॥१८॥
पर्व एक शत आठ गिने गिनि राखीयै।
अर्द्ध भाग ता मध्य छिद्र दे दाखीयै।
नर मादी दोइ होइ जानि मन रंग सौ।
मुगता सुन्दर रूप वंश वे संग सौ ॥१९॥

१—हीन।

तामें देव निवास आस सब काज की।
पूरै पूरन रिद्धि दीय सुख साज की ॥
जाके घरि यह होइ सोइ कुल अन्य तें।
पावत सुन्दर राज पुरातन पुन्य तें ॥२०॥

गज अरु सुन्दर वाजि सुरूपा सुन्दरी।
पुहपमाल ले हाथ सखी ढिग है खरी ॥
छत्र धरें एक नारि वजै बहु किन्नरी।
ढारत चामर दोय मनु यह भूचरी ॥२१॥

सो०—जाकें ढिग यह होइ, ताहिन काहू की कमी।
कहै मुनी तिहुं लोय, ताकौ यश मिथ्या न गिनि ॥२२॥

अथ ताको लेवे को विधानु कहतु हैं—

अडिल्ल—ता देवन के वशि जाण मुगता वन्यौ।
राक्षस राखै ताहि महामुनि तें सुन्यौ ॥
ताकौ डर मनि राखि ताहि वली दीजीयउ।
कर नीके जु विधान भली विधि लीजीयउ ॥२३॥
नाधरू सब विधि जान मान करि वोलीयें।
पठउ ता ढिग ताहि हीया निज खोलि कें ॥
सो सब देवन साधि करें वसि आपने।
नातरि लेवौ वाहि कहौ किहि विधि वने ॥२४॥
पुनि ता मोतिन काजि विप्र वर आनीयें।
वेद उकत तहा मंत्र भलीगति ठानीयें।
फीन प्रतिष्टा तास होम दिन दिल जानि कें ॥
पुनि निज मन्दिर आनि महूरत जानि कें ॥२५॥

दो०—तिमि तिमिंगिल मछ के, मोती परयन दीठि।
[1]दीन भाग्य नर की कहूँ, यह मुनि कहै वसीठ ॥१३॥
पाडल पहुप समान रुचि, नाग लौक हे ताहि।
मनुज मध्य पईयइ नहीं, कहत मुनि ठहराहि ॥१४॥

अथ सर्पंइ मोतिन को सरूप कथन—

चौ०—अति उज्ज्वल उपरितनि छाये, तामै नीली झाख न झाही।
तन अशोक फल जैस मांनि, ता मोतिन अति उतपति जानि॥१५॥
ताकौ धरै नरेसर कोई, विष पीड़ा ताहि न होई।
यौ अगस्ति मुनि बोलति वानि, यामै कूर नही सही जानि॥१६॥
दो०—जाके घरि मुगता सरस, ताके सुन्दर राज।
गज अरु वाजि समाज सब, धन विलास सुख साज ॥१७॥

पाचों की खानि वंश ते कहतु है—

अड़िल्ल—दिशि उत्तर वेताढ्य पहार - महार है।
रूपा को सो रूप तहा न विचार है॥
ताकौ कूट विचित्र चित्र देखत लहै।
वाके ढिग कोउ वंस-सु-वंस मुनी कहै ॥१८॥
पर्व एक शत आठ गिने गिनि राखीयै।
अर्द्ध भाग ता मध्य छिद्र दे दाखीयै।
नर मादी दोइ होइ जानि मन रंग सौ।
मुगता सुन्दर रूप वंश वे संग सौ ॥१९॥

१—हीन।

तामै देव निवास आस सब काज की।
पूरै पूरन रिद्धि दीय सुख साज की॥
जाकै घरि यह होइ सोइ कुल अन्य तै।
पावत सुन्दर राज पुरातन पुन्य तै॥२०॥
गज अरु सुन्दर वाजि सुरूपा सुन्दरी।
पुहपमाल ले हाथ सखी ढिग ह्वै खरी॥
छत्र धरै एक नारि वजै वहु किन्नरी।
ढारत चामर दोय मनु यह भूचरी॥२१॥
सो०—जाके ढिग यह होइ, ताहिन काहू की कमी।
कहै मुनी तिहु लोय, ताकौ यश मिथ्या न गिनि॥२२॥

अथ ताको लेवे को विधानु कहतु है—

अडिल्ल—ता देवन के वशि जाण मुगता वन्यौ।
राक्षस राखै ताहि महामुनि तै सुन्यौ॥
ताकौ डर मनि राखि ताहि वली दीजीयइ।
कर नीके जु विधान भली विधि लीजीयइ॥२३॥
साधक सब विधि जान मान करि वोलीयै।
पठउ ता ढिग ताहि हीया निज खोलि कै॥
सो सव देवन साधि करै वसि आपने।
नातरि लेवौ वाहि कहौ किहि विधि वने॥२४॥
पुनि ता मोतिन काजि विप्र वर आनीयै।
वेद उकत तहा मंत्र भलीगति ठानीयै।
कीन प्रतिष्टा तास होम हित दिल आनि कै॥
फुनि निज मन्दिर आनि महुरत जानि कै॥२५॥

दो०—लगन महुरत देखि के, घर आन्यो नृप ताहि।
या घर में यह राखीयो, तान सांझ ता माहि ॥२६॥
सुन्दर धुनि वाजित्र फुनि, मंगल दीप बनाइ॥
अरचा करि दुहौ एकठे, राखहु लछिन[१] राई ॥२७॥
यह मुगता जा घरि रहें, ता घरि दुख नहीं कोउ।
थावर विष जंगम कह्यौ, भय नहीं इनकौ होउ ॥२७॥
राग द्वेष अरु राजभय, कौ न उपद्रव आन।
दुख-नाशन सुख करन यह, कहै अगस्ति मुनि ग्यान ॥२६॥

चौ० - इन्द्रहि एक समय मनि आनि, राजा हेतु बनाए बानि।
वंश अनोपम कीए विशेखि, तामें इनकी उतपति देखि ॥३०॥
पाछै कलि उतपति भई,[२] तब दानव अदृश्यता दई॥
तातै वंश अदृश जु भए, रत्न परीछक मुनि ते लहे[३] ॥३१॥
तिहि वंशन में मोती एह, बोरमान ताको गिनि लेह।
महाज्योति घन उपल समान, निरमलता जबि इहि अनुमान॥३१॥

दो०—ताकौ सेत सरूप यह, जैसो वंश कपूर।
इहि विधि मोती वंश कै, यामें नाहिं न कूर ॥३३॥
नर मादा मोती कहे, इहे वंश[४] के भेद।
संखन में मुनि कहन को, मन में धरै उमेद ॥३४॥

अथ सख तै कहतु हैं—

सोरठा—दानव अरि श्रीकृस्न, ता कर संखन ते भए।
तातै अति ही विष्णु, ढिग राखत पातक गए ॥३५॥

---

१ भराई २ पीछे कलि व्यापन जब भई ३ मुनियो कहि गये ४ वंशन

चौ०—मोती जो संखन ते गह्यौ, संध्या रुचि सम ताको कह्यौ ॥
रंग देखि मन होवहि खुशी, ताको लेत चतुर उलसी ॥३६॥
पुन्यहीन कौ सोइ न मिले, भर समुद्र सो संख जु चलै।
तातै काके नावे हाथ, कौन गहे तिहि मोतिन साथ ॥३७॥
दो०—इह मोती संखनि कौ कह्यौ, लहै शास्त्र मग मानि।
अब शूकर मुख तैं भयो, ताको कहौं वखानि ॥३८॥

अथ सूकर के मोतिन को विचार कथनं—

दो०—जब वराह रूप जग कह्यौ, नारायण वर देह।
तब ताकौ वंशहि भयौ, सूकर मुगता तेह ॥३९॥
सोई फिरे वन माहि जिही, ताहिन कोउ ठौर।
स्वापद विचरे नाहि डर[1] जाये ताकी दौर ॥४०॥
ताके मस्तक ते भए, वेर मान परमान।
ता मोतिन की छवि कही, सूकर दाढ समान ॥४१॥
पुनि वराह मोती वन्यौ, गिन्यौ जु ताकौ वर्ण।
अति सुन्दर शास्त्रनि कह्यौ, गुरु मुख सुन्यौ जु कर्ण ॥४२॥
रतन परीक्षा करनि पुनि, धरि अपनी मन माझि।
वानि प्रमानिहि मोल करि, वानि न होवत वाझि ॥४३॥
वलि के दान निपात जिहि, थान भए तिहि थांन।
आगर मुगता के भए, कहै ग्रंथन मे ग्यान ॥४४॥
परे समुद्रनि माझ जिहा, तहा स्वाति जल जोग।
मुगता सीपनि ते भए, जानत सिगरे लोग ॥४५॥

१—नर

प्रथम सिंघल अरू दूसरो, आरब पुनि पारसीक।
तीन गिले बावर सुन्यौ, च्यारौ आगर ठीक ॥४६॥
सिंघलद्वीपनि को भयौ, मुगता मधु सम रंग।
ज्योति अधिक चिकनी चिलक, पहिलै आगर संग ॥४७॥
बावर आगर ते धवल, ज्योति चन्द्र सम देखि।
निरमल पीयरी रूचि तनक, बनक दूसरै लेखि ॥४८॥
निरमलता जलसेत द्रुति, पारसीक तिहि जाति।
ए च्यारौ किलियुग कहै, सीपन मुगता माहि ॥४६॥
तहा उदधि जल वीचि है, सीप सुवर्ण समान[1]।
सब समुद्र गति ताहि सुनि, ताको मुगता मान ॥५०॥
ताकौ मुगता अति सरस, दरस देव को दूरि।
मान लहै यहै कहा, गुन लछन कौ पूरि ॥५१॥
तातै मुगता जानीयइ, जाती फल सम रूप।
कंकुम रूचि व मृग अयन, कोमल स्निग्ध सरूप ॥५२॥
सो सुवर्ण रूचि सींप सौं, मुगता जानहु मीति।
ताकौ मूल कहै मुनी, सुनि आनौ तुम भीति ॥५३॥
जेती पृथिवी वीच नर, सहस एक करि ठाढ।
तेती सुवरण दापीइ, मोल याहि तै वाढ़ ॥५४॥

आन सीपन के मोतिन कौ विचार कथनम्

चौ०—अब मोती कलियुग को माझि, गहत देत गुन लछन साझि।
ताको और सीप तै लाग, याहिन को सुनि मुनि महाभाग ॥

१—सुवान

अव विस्तार जगत जिहि रीति, ताकी उतपति सुनिधरि प्रीति।
पहिलै आगर च्यारौं कहै, तामे सीप सरद ऋतु लहै॥
आवत निकट समुद्र जल तीर, गहत स्वाति जल निज मुखवीर।
फिर समुद्र जल सीप समाई, मास आठ साढ़े ठहराई॥५७॥
पूरन दिन पूरन गुन भयौ, नांतरि काचौ यह गुन कह्यौ[1]।
अरु अधिके दिन तापरि जाय, तौ मोती विनसै तिहु वाय[2]॥५८॥
ता कारन दिन लीजै गिनी, यही वात मुनि मुख तै गुनी।
यहि[3]प्रमान वरखा कन कह्यौ, तिहि प्रमान मुगतासन[4]भयौ॥५९॥

अव मोतिन के गुनदोष तोल मोल कहतु है—

दो०—नवदोष रु षट गुन कहै, छाय तीन मनि आनि।
तोल मोल आठौ गिनौ, रिखवानी इह जानि॥६०
रत्न विसारद गुन कहतु, जो मुगता गुन हीन।
ताकौ मूल कहै कहा, कहत होत मुख [illegible]
सच अजव पूरन वन्यौ, ताके तीन [illegible]
उत्तम मध्यम अरु अधम, मोल करहु [illegible]
चौ०—सीप फरस पहिलौ कहै दोष, मछाक्षी [illegible]
जाठर दोप लहौ तीसरौ, चौथौ रक्त [illegible]
दोष त्रिवर्त पंचम सुनि भाई चपलता [illegible]
म्लान दोप सप्तम गिनि लीजै, एक [illegible]
निःप्रभाव निस्तेज कहावै, नवमं [illegible]
चीन्हौ दोप वड मानि कै [illegible]
यह नव दोप विचारि कै [illegible]

१ गह्यौ, २ निश्चैविडंवाय [illegible]

वर दोषनकि वात सुनि, कहौ तोहि गुरु ग्यान।
मोती सौ लागौ जिहा, सपरस दोप कहात ॥६६॥
मछ नेत्र सम देखि कैं, सो मछाक्षी दोप।
जो गुरु सेवै सो लहै, यामैं कैसो रोष ॥६७॥
इसद रक्त जलपेट मध्य, सो जठरागत दोष।
चौथै धरि जु रक्तिमा, राखिन धरौ सन्तोष ॥६८॥

अब इन च्यारौ दोषन कौ महिमा कथन—

चौ०—शुक्ति स्पर्श मोती धरै जेह, कष्ट लहै तिहा नहीं सन्देह।
मछाक्षी पुत्रहि दुख देत, रत्न परीछक कबहु न लेत ॥७०॥
जाठर दोष करत धन नास, आरक्तक प्रानन को त्रास।
इह च्यारन को फल मनिआनि,राखौ पहिरौ जिन मुनि वानि॥७१॥

अब सामान्य पाँचौ दोष को विचार फलम्—

त्रिवर्त मध्य आवर्त तह तीन, पहिरै सो नर होइ अदीन।
चपल दोप देखत बहु रंग, अपयस करहि तजो-तिहि सग ॥ ७२ ॥
मलिन दोष अन्तर मल जिहा, बल की हानि रहै यह तहा।
पारस दीरघ लछन एक, और दीरघ कुन गहै चिनेक ॥ ७३ ॥
इनकै धरइ होहि मति भ्रम, दिगमूढ़ो इन कीन प्रसंस।
पंचम दोष निस्तेज कहाय, तेजहीन यह देहु वताय ॥ ७४ ॥
यह राखत आरस निस्तेज, तन होवत नहीं उद्यम हेज।
अल्प मृत्यु कारन तन पीर, पाच दोप फल धर मनि वीर ॥ ७५ ॥
इन पाचन को फल है एह, यामैं कछु नाहिन सन्देह।
अव मोतिन के गुन की वात, सुनि भईया करिहौ विख्यात ॥७६ ॥

दो०—गुन पट मोतिन के कहै, कुंभ सुतनि भ्रात।
तिन ढिग राखहि ना भलौ, शास्त्र रीति यह वात॥ ७७॥

सो०—तारक ज्योति समान, याकौ ज्योति प्रकाश पुनि।
प्रथम एह गुन जान, गुण गनती कर लेत हो॥ ७८॥
भारी तोल जु होइ, यह गुन जानहु दूसरो।
चिकनाई लै सोइ, गुन जानहु तुम तीसरो॥ ७९॥
गात वडो गुन जानि, चौथौ मुनि वानी कहै।
गुन पंचम यह गंनि, वर्त्तुलता छठओ विमल॥ ८०॥

इन छहो गुन सयुक्त मोती अंग धर्‍यौ कौन गुन करै सो कहतु हैं।

चौ०—सव मुनि पूछति है रिपिराय, दोपहीन मोती जो पाय।
राखैं निज तनि जो ठहराय, फल ताकौ कहौं मैं जु वनाय॥८१॥

मुनि अगस्ति कहतु है,

सुनो मुनिश्वर रत्न के जान यह विध मोतिन करहु वयान।
नव दुपन विन गुन छह संगि, छाया तीन सहित तन रंगि॥८२॥

छाया तीन सौ कहतु हैं—

छाया सेत रु मधु कै वानि, अरु पीयरी यह तीनौ जानि।
यह सव ही गुन मोती धरैं, जात पाप ताके खरे॥ ८३॥
और वर्ण मोति ना भलौ, राखत दुख उपजत एकलौ।
अव उतम आकर को भयो, भारी चिकनौ वर्ण ही नयौ॥ ८४॥
तीन मुक्ता कौ मोल जु सुनौ, गुंज तीन ते ले करि गिणौ।
तीन गुनौ यह भांतिनि मोल, पंचासह ५० चौ गुंजा तोल॥ ८५॥

मोल चोरासी चिरमी पाच, छह गुंज तोले मूल जु सांच।
सात गुंज द्वै सत पुनि चारि, आठ गुंज चौ सत वर धारि ॥८६॥
नव गुंजा सत सातज लहै, अठयासी ऊपरि मुनि कहै।
दसे सहस एक अठसठि बाढ, मुनि अगस्ति कहै यह विधि पाठ॥
गुंज ग्यारह याकौ तोल, चौदहसै अठयासी मोल।
द्वादश गुंजहि सै वाईस, साच कहत मत मानहु रीश ॥८८॥
सहस दोय सत सातरु साठि, तेरह गुँज मोल मुख पाठि।
चउदह गुँज मोल लहे तीन, सहस च्यारि सै ऊपरि लीन ॥८९॥
पनरह रती सहस पट मान, छ सौ विहुत्तरि[1] मोल विग्यान।
इत नै तोल अधिक जो बढ़े, ताकौ मोल सुनौ यौ बढ़े ॥९०॥

अथ परिभाषा कहतु है—

दो०—मंजाडी सुनि तीन सम, मासा कहतु मुनीश।
च्यार माष तै मान भनि, तोल मान निस दीस ॥९१॥
साण दोय कलंज कहि, मुनि अगस्त मुख वाच।
दूपक दश तै निष्क मुनि, सोइ टंका साच ॥९२॥
कहत कलंजउ ताहि सौं, ताल पदहि पुनि साख।
मासा द्वय तै आन कुछ, मै जाड़ी मुनि भाख ॥९३॥
मुनि मंजाड़ो तीन कौ, दोई दोइ करि खण्ड।
वाके पंच समान गिनि, मास मांन कौ पिंड ॥९४॥
मंजाडी पुनि मंजुगिन, जो मुगता इक गुँज।
आठ सात[2] ताकौ कहौं, मोल देहु मति पुंज ॥९५॥

१—तिहुतरी, २—ताल।

चौ०—जो मुगता तन्दुल अठमान[1], ताकौ मोल कलंज प्रमान।
तापर चढत सात अधिकात, बारह गुंज छवै कहि भ्राति॥९६॥
चढत तौल चावल बाईस, सोलह गुन एक सत अठईस।
पुनि छतीस चावल तिहि तोल, जुग पचीस द्वै सत २२५ तिहिमोल
यह विधि पनरह रति प्रमान, चढ़त कह्यौ मुनिवच अनुमान।
त्रिक-त्रिक बढत त्रिगुनौं, हीन होत घट-घट भनौं॥९८।

दो०—तीस गुंज ऊपर चढत, तीन चौगुनौ मोलि।
गुंजा आठ तीसह अधिक, पंच गिनौं गुन बोल॥ ९९ ॥
एक लछ सत सहस, इक सतहतरि वाढ़।
परम मोलि रिसि कटत इह, यातै[2] अधिक अनाढ॥२००॥
पुनि पुरान पुरुपनि कह्यौ, ताको मत मनि आनि।
तोल विचारु मोल संग, कहौ जु मो मति मानि॥ १॥
सरपव आठ सुसेतलौ, ता सम तन्दुल एक।
गर्भपाक तिहि नाम धरि, साढी कहौ विवेक। २॥
तिहि च्यारिनि मानि गिनि, करि ल्यौ गुंजा मानि।
ता सौ मोतिन मोल को, होत सयान वयान॥३॥
पुनि सीपनि मोतिन भयो, होइ सुवृत सुतेज।
प्रभावंत अरु रूचि विमल, तोल गुज भरि लेज॥४॥

सो०—ताको मोल पचीस, वीस कहो मुनि ईस ने।
यामै कहा जग रीस[3], रतन परीछक कहतु है॥५॥

१—वद्ध, २—आने, ३—ईस।

इहि भाँतिन यह मोल, गुंज-गुंज उत्तम बढै।
पै गुन दोष रू मोल, वाढ़ि घाटि चातुर गढै॥६॥
पुनि चौसठि गुंजनि कह्यौ, गह्या नक इकरूप।
ता सम मोती कोरि इक, मोल देत वर भूप॥७॥
इहि विधि बढ़तै मोल की, वाढ़ि घाटि तै घाटि।
करिहौ धरौमनमानि करि, कढ़ि तोल पुनि काटि॥८॥
जिहि ग्रन्थे जिहि विधि लह्यो, तिहि विधि कह्यो बनाइ।
दोस हमें कछु नाहिं नै, मुनि वच मग ठहराय॥९॥
तिहि देशहि जो तोल होई, राखहु सोइ परमान।
चूक परे तुम अन्यथा, होत मोल महि हानि॥१०॥
तातै मन में आनि यह, जा देशन विख्यात।
सोई ठहरत ठानियइ, कहत कुंभ भू भ्रात॥११॥
मोतिन मोल सदा कह्यौ, गुंज उरद अनुमान।
बढ़त तोल मोलजु बढै, घटतै घटत निदान॥१२॥
पून्यो शशि पूरन कला, ता सम मोती होइ।
वृत्ताकार रु प्रौढ़ तनु, सुन्दर मुगता सोई॥१३॥
सब अवयव संयुक्त तनु, तामै कबहु होइ।
मछ नयन दूषन तवै, मत लेज्यो यह कोइ॥१४॥
दोप सकेरा फल रह्यो, फटीज तामै रेख।
वेध्यो अंग सुदेखतै, मोल करहु घट देखि॥१५॥
जाकी छवि पोयरी परी, एक औरि गुन चोर।
ताहि धरे वे भोहि रे, आयु छय की दौर॥१६॥

ता मोती को पहिरवौ, कबहु न कीजै मित्त।
जिन के राखे सुख नहीं, तिन पर कैसो चित्त ॥१७॥
छोटे तनि भारी निपट, सेत विमल पुनि गात।
मधु निभछायरूहत्तता, चिकनाई लसकात ॥१८॥
सो मुगता उत्तम कह्यौ, करिहौ यतन करि मोल।
बिना शास्त्र को जानीयै, लीजै गुरु मुख बोल ॥१९॥
प्रलय होत आगम घटत, ता कारन कलि मांहि।
शुद्ध मोल कलना विकट, कहत कछु ठहराइ ॥२०॥
तोऊ वच ग्रहि वरन के, कीजै मूल प्रमान।
पुनि जो देश विसेस यह, सोइ तोल ठहरान ॥२१॥
मुनियो सास्त्र प्रमान तै, लहै वडन ते दोप।
ताकौ छोरि रिपी कहै, अलप दोप कहा धोप ॥२२॥
कोऊ विग्यानी पुरप, करेजु मुगता आप।
ठग वगनी विद्या गहै, सन्तन होत सन्ताप ॥२३॥

ता मोतिन की परीक्षा कहतु है—

छप्पय—

प्रथम गहौ गोमूत भरहौ, भाड़े मनि आणि।
तामै लोवणु डारि ले ताहु को पुनि छानि॥
सेत वसन ले वांधि, धरहु मुगता मध्य ताके।
दिवस एक पुनि राखि, ता पर थारो यौ वाके।
तनि दीजै कीजै आग गहै हथारी पर दिह।
सारी पुमन सुन्दर रहत, सो गहिने लाइक लहह ॥२४॥

अथ गौजेर देशानुसारेण मोती कौ मोल कथन .—

दो० पानी चौदह ववकौ, भाग लेहु चौबीस।
ताहि मानि मोलजु कह्यो, यह गूजर अवनीश ॥७५॥

अव मोल करत द्रव्य की संज्ञा कथन—

दो० विग्रह तुंग पुरान पुनि, कहत सोई अब दक्ष।
मुद्रा ताहि को कहतु, युग-युग फिरत प्रतछ ॥२६॥
विग्रह तुंग जु तीससै, होत एक दिनार सौं।
सुवरन अरू रूप्य तजि, तावा की सी धारि ॥२७॥
वाकी संज्ञा कुप्य धरि, ता तेरह परमान।
धरण कह्यौ पुनि सिक्त यह, कहौ लहौ गुरु ग्यान ॥२८॥
अपने अपने देश को, करो मोल व्यवहार।
शास्त्र सिद्ध हम हौ कहौ, या कौ अवन विचार ॥७९॥

॥ इति द्वितीयो वर्ग ॥

अथ माणिक्य व्यवहारो भिधीयते

दो० अलख रूप आनन्द मय, अमल ज्योति परगास।
याहि के सुमरिन सधै, सकल काज सुष वास ॥१॥
तीन लोक सुख वास को, इन्द्रहि हन्यो जु दैत्य।
वलि नामा ताको रुधिर, लीयौ आप आदित्य ॥२॥
रुधिर लेइ भू मध्य तिहि, ठयौ एक तसु ठौर।
दसमुख भय लेखै लखी, की ई आकर यह दौर ॥३॥

कौन ठोर ठ्यो सो कहत है—

चो०—सिंहल देश देशनि महिसार, श्रवण गंग तेहि मध्य उदार।
तहां रक्त ताको तिहि ठयो, वाको कौतुक हरि विधि भयो॥४॥
दुहु कंठ तहा होत प्रकाश, जैसे करत खद्योत विनास।
जल महि झलकति पावक रूप, इहि विधि दीसत सदा सरुप॥५॥
पदमराग मणि सुन्दर वन्यौ, ताकौ भेदु त्रिविधि करि सुन्यौ।
प्रथम सुगन्धिक १ अरू कुडविंद २, पदमराग ३ तीनों यह छन्द॥६॥
तीनो उतपति एकहि ठांउ, वरण भेद सिगिरि के नाउ।
जोगन कौ समुझन के हेत, मुनि अगस्ति भेदहि कहि देत॥७॥
दोहा—सुनौ मुनी मुनी कहतु है, उतपति आगर जानि।
गुन सरूप मोलजु सुन्यौ, पांचौ कहो जु ठानि॥८॥
चौपाई—पदमराग उतपति यह कही, मणि के आगर सुनि जु [illegible]
एक एक छाया मनि आणि, भिन्न भिन्न करि [illegible] [illegible]
सिंहल देश हि आगर एक, डाहल दूजौ [illegible]
रंध्र देश तीसरे बखानी, तुवर कहियतु [illegible] १० ॥
ताके ढिग मलयाचल देखि, च्यारि ग्यानि [illegible]
अवै सवै जन जानत ऐह, ताकौ भिन्न [illegible] ॥ ११ ॥
पदमराग सिंहल को वन्यौ, लाखी [illegible]
डाहल को कछु पीयरी भास, [illegible]
हरी काती तूवर सुनि सुनि, [illegible]
सिंहल को उत्तम ठहराय [illegible]

दोहा—रन्ध्र देश माणिक अधम, तुवर कहे तस ज्ञान।
अधमाधम गुनहीन यह, नाम हि रतन कहाय ॥ १४ ॥

आगे इनके गुन दोष मोल कथन :—

सो०—तीन वरग के आठ, दोपरू सोलह गुन कहै।
मोल करन कौ ठाठ, तीस भाँति गुरू वचन तै ॥ १५ ॥
पदमराग मणि नाम, पुनि सुगन्ध कुरूविन्द दुइ।
वाछित पूरन काम, आठों दोष विचार लें ॥ १६ ॥
प्रथम दोष विछाय, द्विपद कहौ पुनि दूसरौ।
भिन्न जु तृतीय कहाय, कर्कर चौथो जानीये ॥ १७ ॥
पंचम लसुनिये दोप, कोमल छठउ देखियइ।
सप्तम जडता पोष, अष्टम धूम्र बनाय कहो ॥ १८ ॥

प्रथम विछाय दोष कौ रूप कथन :—

दोहा—छाया तीन हूं जाति की, मिलत परसपर देखि।
तामि कही तुम ठानियौ, दोष बिछाय विशेषि ॥ १८ ॥
सुनि कुंरूविंद सुगंधितै, पदमराग गुन वाधि।
छाया हीन न होय तव, धरत करत धन आढ ॥ १६ ॥
याकौ राखि पाइ नर, नर होवत नरराज।
अरिगन डर भागे फिरत, करत कौरी व राज ॥ २० ॥

चौ०—तिहां वरग महि धरत छवि छाँय, ता मुख पंकज करत विछाय।
देश त्याग घर कौ ह्वै त्याग, यह राखन कौ कहौ कहा लाग ॥

द्विपद दोप कथन :—

चौ०—जसो होवत मन ई पाय, ता सम लक्षन जहाँ ठहराय।
द्विपद दोप वाकौ करि लेहु, ताकौ लेन कछु जिन देहु ॥ २२ ॥

इनके ढिग राखे दुःख होइ, भंग होत रण माझिहि जोइ।
पतन अचानक जानहुँ भई, याकौ कोउ न राखत दई॥ २३॥

अव भिन्न दोप कहतु है :—

करतै परतै भंग जु लहै, भंग दोप ताही सौं कहै।
रतन परीछक ताहि न धरै, धरै ताहि फल ऐसो करे॥२४॥
सो नर मूरख अरू मतिहीन, दुःखी होत मुख वोलत दीन।
कहै अगस्ती सुनि मोरी वानि, ताकौ राखत एती हानि॥२५॥
पुत्र नास पुनि त्रिया वियोग, नारि धरत विधवा फल योग।
वंश छेद करै रोग विकार, ए सिगरे भिन्नन परकार॥२६॥
भिन्न दोष मानक जो पायौ, विना द्रव्य तौउ करि लायौ।
करत न सुख मन रहत उदास, या कारन कहा इनकी आस॥२७॥

अव कंकर दोप कहतु हैं—

याके गर्भित कंकर रूप, कंकर ताकौ कहत सरूप।
ककर दोप मुनीसर वानि, तिनकौ फल सुनि राखि न जानि॥२८॥
जाके तन संकर गत दोप, ता तीनि आठ हौं गुन पोप।
ता कारण फल इनको दुष्ट, जानि तजत नर जो है शिष्ट॥२६॥
पुत्र वन्धु पशु मित्रजु होइ, आश्रित जन-धन मनउ कोइ।
कष्ट मगन सवहिन कौ करि, ता कारन इनि कोऊ न धरै॥३०॥

अथ लसनु दोप कहतु है—

लहसुन कुलीयन के अनुहारि, यामे विन्दु परयौ मध्य धारि।
फल अशोक सम ताकौ रङ्ग, लसुन दोप ता मानिक सग।

अथवा मधु सम वर्ण जु लीजई, बिन्दु पर्‌यौ ता माणिक कीजई।
याहु लहसुन दोष मुनि कहै, पंचम दोष सुनै सोइ लहै ॥३२॥
याकौ फल नहीं औगुन रुप, नाम दोष को सहत सरूप।
आगे छठइ दोष दिखाय, सब भूतन सौं कहत बनाय ॥३३॥
कोमल दोष कहतु है मुनि, कोमलता ताकी बहु सुनी।
घसे घसत ज्यु घासै और, कोमल दोष ठहरान मरोर ॥३४॥

कोमल दोष परीक्षा कहतु है—

जा माणिक कौ घसै बनाय, चूरण काठ करज सुकाइ।
तातैं तोल घटै नहीं रती, यहै भाँति कोमलता छती ॥३५॥
कोमल दोष भाँति कही तोन, यामइं कहीयइ मेख न मीन।
वर्ण भेद तैं जानहु भेद, तामै कछ्यन उपजत खेद ॥३६॥
प्रथम अशोक समौ ह्वै रंग, ता कौमल कौ राखि प्रसंग।
प्रबल तापरू भोग विलास, सबै सधै पूरन मन आस ॥३७॥
पुनि जो मधु के रङ्गनि बन्यौ, सो लछमी दाता हम सुन्यौ।
जाकौ रङ्ग वेरनि के मानि, ताकौ फल सुन्दर नहीं जानि ॥३८॥

सप्तम दोष कथन—

सो०—जिहि माणक को रंग, वद्ध होइ परकास दिनु।
जडता ताके संग, लहीइ कहीइ दोप इह ॥३९॥
याकौ राखि नाहि सुख, होवत कवहुं कछु।
अपकीरति जग माहि, वाढि काढि कोई न गुन ॥४०॥

धूम्र दोष मुनिराज, कहत आठमौ धूम्र सम।
सिंहल वन्यौ अकाज, राखत मतिहानी करै ॥४१॥

निर्दोष मणि धरै ते फल कहतु है—

कवित्त—कहत अगस्ति मुनीश ईश सब दिन कौ सांची।
पदमराग शुचि राग धरत चिकनाईत काची॥
सुंदर ताकौ रूप सूर उगत छवि ओपै।
जो नर धरत सग्यान आन तसु कोऊ न लोपै।
पहिरतै अंग आणंद अति गो भू कन्या दान फल।
पुन्य होत यग्यन[1] कीय सोइ मानिक राखत अमल ॥४२॥

आगे सोरह भांति की छाया कहतु है—

कवित्त—प्रथम कमल पुनि लोद, फूल फूलतनि झाइ।
लाखा रस वन्धुक विल, कचोलन ठहराई।
इन्द्रगोपन्नि की वानि जानि केसर रस चखि।
पिकलोचन रु चकोर, नेत्र समौ लखि॥
चीरमीअ आध सिन्दूर सम, पुनि कसुंभ दार्यौ हसत।
विकसत फूल सिवल[2] समी, इह सोरह छाया कहत ॥४३॥

दो०—पदमराग १ कुरुविन्द, सौगन्धिक तीनौ मिली।
सोरह छाय अमन्द, मुनि अगस्ति मुख तें लही ॥४४॥
पुनि अगस्ति सुप्रसन, करत रिपीसर सब मिली।
जुदे-जुदे जग विष्णु, कहौ कौन भांति भए ॥४५॥

१—यापनकीइ २—संवल

चो०—अब बोले मुनिराज प्रवीन, पद्मराग छाया कुन लीन।
सोरह मैं जोती ह्वै ताहि, सो तुम पेकुँ कछु बनाहि ॥४६॥
रक्त समल की छाया एक, सारस नयन चकी सुविवेक।
चखि चकौर की तीनौ गिनी, विकसत दास्यौं चउथी सुनी।
पिक लोचन सम छाया मिली, इन्द्रगोप छाया बहु मिली।
झलकत खजूया कहै मुनि भूप, पद्मराग सातौं छबि रूप ॥४७॥
ससा रुधिर लोध्र को फूल, फूल दुपहरी चीरमी मूल।
रूचि सिन्दूर प्रगट सुनय कौफूल, लाली लीयै करूविन्द न भूल ॥४६॥
अब सौगन्धिक छाया यहै, लाख हींगलू केसर गहै।
कछुक नील छवि लाली घनी, इह सोभा सौगन्धिक बनी ॥५०॥

इनहु कौ मोल विचार कहतु है—

दो०—मुनि अगस्ति मुनि सौ केहत, छाया कही व मूल।
एक एक त्रिक त्रिक गिनत, नव भेदन कौ मूल ॥ ५१ ॥
कांति रंग इकईस विध, तीस सवै मिलि होत।
मोल भेद विस्तार अब, करत मुनि उद्योत ॥ ५२ ॥
कांति रंग उरध गति, और अधौगति जानि।
पार्श्व गती जे व्यै[1] मध्यम, अधम तीन यह ठानि ॥ ५३ ॥

ज्योति रंग कैसे जानीयै सो कहतु है :—

जो मनि वाहिर ठानीयइ, अगनि राशि सम ज्योति।
परै धरै ता नाम कहि, ज्योति रंग सोइ होत ॥ ५४ ॥

१—ठो।

पुनि प्रभात रवि मुख समी, या मानिक की कांति।
वा में दरपन ज्योति परत, झाई आप अन भ्राति ॥ ५५ ॥
इन दुहु भ्राति विलौकतै, ज्योति रंग ठहरान।
पुनि आगे सव जाति सुनि, कहत मांनि मन आनि ॥ ५६ ॥
रतनपरीछा जान नर, पद्मराग ले रत्न।
कै विसवा कौ रंग यह, जानि लेहू करि यत्न ॥ ५७ ॥
पाछें मोल विचार कहि, सोऊ लहै नृप मान।
अविचारै लघुता घनी, वनी ठनी विनु ग्यान ॥ ५८ ॥
ता कारन इक मुकर ले, धरीइ दिनकर देखि।
ता पर सरसौ सेत रूचि, ताकी पंकति लेखि ॥ ५९ ॥
ता पर गुंजा एक कौ, माणिक राखहु वीच।
जव एकहि पिडजु वन्यौ, यव तिर[2] हुग कहा वीच[3] ॥ ६० ॥
ताहि वाल रवि किरन तें, परत ज्योति रवि रूप।
जेते सिरसौ गिनि कहौ, ते ते विसे सरूप ॥ ६१ ॥

सो०—ता माणिक की जाति, जाने चाहौ चतुर नर।
तासौं एसी भांति, राखि देखि ठहराय कहि ॥ ६२ ॥

एक ही छत्री व्रह्म द्वय, तिहौ वेस गिन मीत।
च्यारौ शुद्र सराहीयै, पाचौ विपय प्रतीति ॥ ६३ ॥
ग्रंथांतर सै कहत है, मुनि मत वोल प्रमान।
सुनहु घर नर साधि कै, देहु लेहु गुरु ग्यान ॥ ६४ ॥

२—तिरछग। ३—पीच।

जौ मानिक ह्वै एक, चिहुं और अरू ऊरध दल।
ता कौ कीयइ विवेक, द्वै सत गिन लीजीयइ॥ ६५॥
पद्मराग यह मोल, कुरुविंदी कह्यौ ऊनगिनि।
चौथे भागन भूलि, अर्द्ध सुगंधिक ठानि॥ ६६॥
उरध मध्य अरु हीन गिन, लेचा भांति भली।
द्वै सत दस नही हींन, सत पंचोतरि साठि पुनि॥ ६७॥
हीन कहत मुनि केइ, सत्तहतरि अपनी उकति।
तासौं जानत तेइ, हमें सिद्ध वच मन्यता॥ ६८॥
इक यव हीतै एक, बढतै आठ प्रमान लै।
दुगन दुगन सुविवेक, मोल बढत मुनि वचन यहै॥ ६९॥
सौगंधिक मति भेद, उरध गुनी होवै कहौ।
आठ गुनौ कहै वेद, मोल लेहि मुनि वचन सौं॥ ७०॥
मध्य मुनी मनि दाम, सतहतरि सत पाच मिलि।
देन लेन यह ठाम, मुनि वच मोल हीयइ धरौ॥ ७१॥
ज्युं ज्युं न होवे घाट, त्यौ त्यौ सत आधा घटत।
यह मनि मोल न घाट, मुनि वांध्यौ मन माडि धरि॥ ७२॥
एक वरण के मानि, मात्रा पुनि सरमत यहै।
ता घटतै घटि वांनि, वढै वढत मोल ज सरस॥ ७३॥
दो०—एक सरसौ जो वढत, या मानिक छवि ताहि।
मोल वढत घटतै घटत, इह मुनि मुख ठहराहि॥ ७४॥
पुनि कुरुविंद सुगंध की, जे छवी ऊनी होइ।
एक सरसौ द्वै सत घटत, जानत आनत कोइ॥ ७५॥

सो०—या मानिक कौ तोल, अधिक होइ रुचि छीनता।
ता मानिक को मोल, अधिकाधिक ठहराइयै॥ ७६॥

दो०—रतन जान केते कहत, जंबूद्वीप न मांझ।
कोरि छत्रीस उगणईस लछि, चौदह सहस ज साझि॥७७॥
च्यारौ युग आगर इतें, होत कहत मुनिराज।
कूर साच वे ई लहत, के जानत महाराज॥ ७८॥
उपजत सिंहलद्वीप कौ, लछन युत सुभ गात।
भनक भली आगर यही, पद्मराग ठहरात॥ ८०॥
या कौ भाग जु छठउ, रंध्र देशि मनि जाणि।
अरू उंवर कोऊनगिनि, यौं है सिंहल खानि॥ ८१॥
तातै भागजु तीसरें, कल पुर भयो जु ऊन।
महा मुनीसर वच विनां, कहि नर जानत कौन॥ ८२॥
जा मानिक की वहुत रुचि, ताकौ मोल जु वाढ।
ज्योतिवंत लछन रहित, हीन मोल कहौं वाढ॥ ८३॥
आगर उत्तम को वन्यौ, होइ जो लछन हीन।
तोल वाढ मोल जु वढत, कहत न हूजें दीन॥ ८४॥
हलुओ अरु कुंअरोजन हौ, गहत न कोऊ आहि।
ज्यौं ज्यौं भारी देखीये, सौ सौ लीजै ताहि॥८५॥
हीरो हरुउ त्यौं भलो, पद्मराग गरुआत।
यह लेनौ देनौ अधिक, मोल हरख उपजात॥८६॥
देखत मानिक काहू कौ, उपजत कछु सन्देह।
सहज तथा कृत्रिम वन्यौ, ताहि परीक्षा एह॥८७॥

घरी[1] दुईक करि एक पुनि, घसै जु होई असुद्ध।
इहि भाँति करि पारिखौ, धन दे लें अविरुद्ध ॥८८॥
पद्मराग अरु नील मनि, घसत वज्र तै होइ।
डरे शस्त्र न घासीयई, घसत विगारत सोई ॥८९॥
इहि अधिकार विचित्र हुय, पद्मराग मनि मानि।
अब आगै विस्तार सुनौ, नील मणी गुरु ग्यान ॥९०॥

इति तृतीयो वर्ग—

प्रणव नमत पातक गए, भई सकल सुख रिद्धि।
इह सानिधि कहुं नीलमनि, विवरण ताकी सिद्धि ॥१॥
चो० बलि नामा दानव कहि मुनी, इन्द्रहि हन्यौ बन्यौ इह गुनी।
दांत आस्ति लौंहू दश दिसा, गए भए लोचन कहा बसा ॥२॥
इन लोचन तौ आगर भयौ, इन्द्रनील मनि नाम जु ठयौ।
सिंहळ देश नील भलि बनी, मानहु देव गंग सम गिनी ॥३॥
ताके तीर नेत्र तहा ठए, इन्द्रनील अति सुन्दर भए।
कछु कलिंग उतपति तूं जांनि, आगर अधम लह्यौ मुनि बानि ॥४॥
सिंहलदीप भयौ जो नील, तीन लोक परिसिद्ध न ढील।
जेइ कहियत नील कलिंग, तेई नाम धरत धरि लिंग ॥५॥
कलिंग देषि यह होत सदोष, इन संग्रह कौ धरहौ न पोप।
मनुज लोक मांहि आगर दोय, चारि जाति यामें मुनि होई ॥६॥
सेत नील छवि जाकी वनी, ताकी ब्राह्मण जाति सुनी।
रक्तनील छाया तनि लीयइ, ताकौ छत्री कहि करि दीनीयई ॥७॥

१—घड़ी

पीयरी प्रभा वैस गिनि लेहु, कारी नीली सूद्रक देहु।
इह भाँति वर्ण जु जानीयइ, ताके लछन मन आनीयइ ॥८॥
घेनु नयन सम याकी भास, अरु सेनन चखि होत प्रकाश।
यह दोऊ गिनी इनही भले, रीपि केई युंही कहि मिले ॥९॥

अथ नील मनि के दोष गुण छाया कथन—

दो०—दोष छहै गुन चारि सुनि, पुनि छाया दश एक।
सोरह भेद जु मोल के, ताकौ कहुँ विवेक ॥१०॥

अडिल्ल—प्रथम दोष आकाश पटलछाया लीजयइ।
दूजै कर्वुर दोष पोष जान हो हीई।
पुनि तृतीय यह दोष रेख करि होत है।
चौथे भंग जु दोष रत्न विन्दु युं कहे ॥११॥

पचैं मिटे या दोष मध्य गत याहि कै।
षष्टम मध्य गत होहि पाषाण जु ताहि कै।
अव इन दोषन होई फलाफल जौ कहूं ॥
जैसे कहे मुनिराज तिहि विधि हुं लहुं ॥ १२ ॥

अभ्र छाया दोष मणी लै जे धरै।
नर नारी मध्य कोल ताहि वंसु छय करै ॥
ता पर उलकापात अचानक देखीयै।
प्रथम दोष फल एह मुनीवच लेखीयै ॥ १३ ॥
कहत कवरा दोष दूसरो ताही कौ।
फल जानौ तुम मित्र व्याधि भय वाहि कौ ॥

दुगध उदधि नर जात वेद जो कंहु मिलै।
तऊ न ता तन रोग योग किहि विधि टलै॥ १४॥
दोष तीसरौ रेख मध्यगत आखीइ।
फल ताकौ यह होय हीए महि राखीइ॥
या नर के कर मध्य रहै इह सुन्दरी।
ता तनि पीरा होय सुनहौ तुम सुँदरी॥ १५॥
पुनि तिहि वाघ वयाल भयाकुल जे नखी।
द्रष्टी जीप है जेइ तेइ करै नर कौ भखी।
दोष एह सुनि कानि मानि गुरु वांच कौ।
तजो नील मणि[1] एह देह सुख साच कौ॥ १६॥
इन्द्रनील मनि जेइ धरै गुन भंग कौ।
अलप जोर लहै भंग सोई नहीं संग कौ॥
मिथा विभूषण जानि आनि अगनि धरै।
विधवा होइ विग्यान नाहि निहचै मरै॥ १७॥
कहिकै चौथो दोष सुनौ अब पाच वो।
इन्द्र नील के मध्यमिहि सुनि पांचवो।
ताकौ राखत अंग पीर होइ मास तै॥
रोम रोम गिनि लेहु देहु किहि पास तै॥ १८॥
नील मध्य पाषान दोष छठ सुन्यौ।
याकौ फल रिपि राय कह्यो त्योंही धुन्यौ॥
भंग होइ रण माझि वाझि वानी लही।
लागै मस्तक घाउ दाउ दुरजन लही॥ १९॥

इह बहु दोष कौ फल भयौ। आगै च्यारौ गुन कथन :—

दो०—कहै अगस्ति मुनि सबन कौ, सुन हौ गुनी गुन एह।
च्यारौ चरचा करि कहुं, मन थिर सुनि हौ तेह॥ २०॥
(पहिलै भारी [1] दूसरै चिकनाई तिन हौ गुनी गुन एह।
च्यारौ चरचा करि कहुँ, मन थिर सुनिहौ तेह॥ २१॥
पहिलै भारी दूसरै, चिकनाइ तिन जानि।
ज्योति भलीउ इह तीसरौ, चौथे रंजक मानि॥ २२॥
सेत वस्तु ऊपरि धरै, अपनी छाया ताहि।
देत करत निज रंग कौ, रजक कहोइ वाहि॥ २३॥
फिरि बौलै मुनिराज सौ, रिपि सब गुन एह।
आगै छाया सुनन कौ, लागै निहचै तेह॥ २४॥
गुन छाया के योग तें, होत मोल परकास।
तातै कहत अगस्ति मुनि, सुनहो ताहि प्रभुदास॥ २५॥

छप्पय—प्रथम मोर पर रूप[1] दुतीय नारायन रंगह[2]।
तृतीय नील सम छाय[3] कपूर वल्ली फल संग्रह[4]॥
अरसी फूल जु पाच[5] कंठ कोकिल[6] छठउ गिनि।
भमर पक्ष सम सात[7] सरस फूल न अठउ मनि॥
कमल नील नव कीर गिन हौ दशइ शुक कंठहि समी॥
ग्यारह ही धेन नयन सरिम मन भ्रम राखौ हैं भ्रमी॥ २६॥

चौ०—ए एग्यारह छाया रूप, करत परीछा पहिरन भूप।
छाया देखि करत जौ मूल, ताकौ कछुय न होवत भूल॥ २७

दो०—पिंड प्रकाश रू दोष गुन, लछन ए सब चीन्ह।
करहौ मोल तुम रतनविद, होवत मन न मलीन ॥ २८ ॥
और परिषो करन कौ, गो भेंसन पय लेहि।
राति रहै पुनि काढि तिहि, देखहु पय दाग देह ॥ २६ ॥
जो पय नीली छवि धरै, तो कहीइ मणी नील।
एसे परीछक रतन कौ, कबहु न कीजै ढील ॥ ३० ॥
शास्त्रहि सो सुन्दर कहत, इन्द्रनील मनि ईश।
चंद्र रेख या मध्यगत, सो कहि विसे जु वीस ॥ ३१ ॥
जो रंजक आगै कह्यौ, औरन को रंग सोइ।
अपनौ रंग आगै करै, बहुत मोल यौ होइ ॥ ३२ ॥

मोल कथन

चौ० इन्द्रनील यवमांन ज होई, पिण्ड प्रकाश बन्यौ गुन जोई।
ताकौ मोल अधिक कीजीयै, दोष रहित निहचै लीजीयै ॥३३॥
पिंड काति ताकी मनि माणि, मोल अधिक उनौ मतिमानि।
पुनि इह पारस रंजक कह्यौ, एक पछ रग है कहिठयौ ॥३४॥

दो०—पार्श्व रंग तासौ कहौ, निकट ठई जो वस्तु।
एक पछरंगहि धरै, सुनि[1] मुनि कहत अगस्त ॥३५॥
ताकौ मोल जु पंच शत, रतन शास्त्र मग देखि।
यव पिंडन ठहराय कहौ, गुनन वन्यौं तिहिलेखि ॥३६॥
जव आठन कौ नील मनि, चौसठ सहस प्रमान।
लहत द्रव्य उतकृष्ट गति, यातैं अधिक न आन ॥३७॥

१—मन

रतन जात जु कहत यह, देशकाल गति बूझि।
कही पमुख बातहिं ससी, लहीयइ सुधियन सूझि ॥३८॥
कह्यौ मोल विस्तार यह, कहत रत्नविद लोग।
वाल वृद्धि पुनि भेद युत, कहै लहै सुख योग ॥३६॥

प्रथम वालस्वरूप कथन—

हिम सीच्यौ दिन आदि, फूल ज्यौं फूलत नयौ।
आरसी खेतन मध्य, महामुनि यौं कह्यौ ॥
वाल कहति तिहि नाम, धाम वहु रूप कौ।
कहत कहा नर कोई, ज्यु भेडक कूप कौ ॥४०॥
त्यौहि फूल अमोल वन्यौ अरसीन कौ।
मध्य समे रूचि छीन भयो तिहि दीन कौ।
कारीय रूपी ज्योति भई दई दे दई।
याहिन कौ कहै वृद्ध, मुनि मनियु भई ॥४१॥
पुनि इक अरसी फूल सीत जल सीचतै।
रवि डूवति तिहि काल वन्यौ तिहि वीचतै ॥
ज्यौं जल परि सेवार रंग तिहि भाँति कौ।
सो परिपक्व कहावई रहा इन भाँति कौ ॥४२॥
भाँति भाँति वहु रत्न पृथ्वी माहे जानीयै।
होत पखान अनेक परीछा ठानीयइ ॥
नीलमणी निरदोप धरे जो अंग सौं।
ता घरि लछ भराय कहै मुनि रत्न सौं ॥४३॥

आयु वृद्धि आरोग्य प्रताप सदा बढ़ै।
पुत्र पौत्र बहु मित्र महा यश करि बढ़ ॥
ताहि सनीचर दोष न होइ सदा सुख सो रहै।
इह विधि कुंभ मुनीश नीलमनि गुन कहै ॥४४॥

चतुर्थो वर्ग—

अथ मरकत व्यवहारो निरूप्यते—

दो—प्रणव नमूँ सब गुन मयी, यामैं पांचहौ रूप।
याहि कै सुमरिन सधै, पावत सिद्ध स्वरूप ॥१॥

सब मुनि मिलि पूछत मुनी, कुंभ भूत गुरु ग्यान।
मरकत मनि के भेद तुम, कहौ बनाय वखान ॥२॥

कहत अगस्ति सुनौ सबै, मरकत मनं की बात।
बलि अंगन तै इह भई, सबै रतन की जाति ॥३॥

बलि, मासन पेसी परत, धर वासुकी नाग।
अति उछक निज गेह प्रति, गरूड़ द्रगनि हूय लाग ॥४॥

देखि गरुड़ तिहि लेन मनि, कीयौ भयौ भयभीत।
पस्यौ वासुकी वदन तै, धारा मध्य यह रीत ॥५॥

विषम ठौर दुरगम दुधर, पस्यौ विधुरि सब ठाउ।
म्लेच्छ देश जलनिधि निकट, पोट पहारनि दाउ ॥६॥

धरणीधर नामा सु गिरी, महा आगर भयौ जानि।
मरकत मनि अरकत तहा, महामुनी वानि ॥७॥

चो०—भाग्यवन्त देखत यह मनी, महारत्न गुरु वानी सुनी।
अल्प भाग्य देखत हौ[1] कैसे, देखत जाकौ होयरौ हसे ॥८॥
सपत दोष गुन पाच जु वनै, छाया आठौ काननि सुने।
बारह भाँति मोलनि की गिन्यौ, याकौ व्योरो आगे सुनो ॥९॥

अथ दोष कथन—

दो०—रूखन १ फूटन २ दूसरौ, तीजौ मध्य पषान।
कंकर मलिन रु जठर फुनि, सिथल सात यह मान ॥१०॥

फल कथन—

रूखो राखत पास कहा फल अग की।
व्याधि एक शत आठ उठत न संग की॥
भंग होत छन माहि ताहि फूटक कहौ।
ताहि धरे सिर घाउ खडग कौ तिहि भयौ॥ ११॥
पन्नो दोष पषान समान है।
ताकौ फल निज वंध वैर मुनि जन चवै॥
मिलिन दोष जिहि गात भ्रात वातै लहै।
अंध वधिर फल जानि मांनि करि को ग्रहै॥ १२॥
कंकर दोष विचित्र त्र[2] फल विधवता।
पुत्र मरण अध होउ कोउ नही पता॥
पन्नो जाठर दोष जरावै भूपना।
सिंह सरप भय जानि ताहि क्यौ राखना॥ १३॥

१—देखत कहो कैसे २ त्रस फल

सिंह लख पुनि होइ पाहि मुनि मरकतै।
राखै कोउ ताहि जीत ना किरि कितै ॥
कह्यौ सातहौं दोष मुनी मुख वाचतै।
फल धरि हियरा माहि गहौ गुन सांच तै ॥ १४ ॥

दो०—प्रथम स्वच्छता गुरू यतन, स्निग्धह अरु गुरू पिंड।
हरिन[1] तनू रंजक पनौ, सप्तम[2] कांति अखण्ड ॥ १५ ॥

यह गुन को विस्तारकथन :—

चौ०—नील कमल दल उपरि ठयौ, दीसत स्वच्छ नीरकन भयो।
ऐसे निर्मलता जहाँ होइ, स्वच्छ गुनी पन्नौ कहौ सोई ॥ १६ ॥
गुन भारी जानहु तिहि तोल, अधिक जान ठहरावत मोल।
चिकनाई यातै तनि बनी, गुन चिकनाई कहीय ठनी ॥ १७ ॥
पिंड बड़ौ गुन चौथो कह्यौ, हरि तन गुन पंचम लहौ।
रञ्जक गुन कौ यहै विचार, ले पन्नों करि धरि निरधारि ॥ १८ ॥
धरत सूर सनमुख सब लोक, तन छाया ना रङ्ग विलोक।
यांकी कांति बनी बहु भली, कांति रत्न गुन सातों मिली ॥१६॥
आगे छाया आठ प्रकार, सुन हो मित्र कहुँ ताहि विचार ॥
ताको अति उत्तम जानिये, द्रव्य देइ निज घर आनिये ॥ २० ॥
प्रथम कही सुक पक्ष समान, वंश पत्र सम दूजी जान।
तीजहि विधि होवत सेवार, चौथे दोव छवी अनुहार ॥ २१ ॥
पंचम मोर पिछ ज्यो होत, छठई फूल सरसौं की ज्योति।
सपतम मोरथूथ का रङ्ग, अष्टम चास पिछ सम भग ॥ २२ ॥

---

१ हरित, २ रूपनग

आठौ छाया कहि वनाय, पंच रत्न यातै ठहराय।
यामै च्यारौ वण विवेक, छाया भेद करि तिहि छेक ॥ २३ ॥
जिहि पन्नहि नीली ह्वै छाय, कृष्ण काति तामै झरकाय।
थूथा रंग समानैं रंग, नील स्याम मरकत कह्यो चंग ॥ २४ ॥
पन्नो हरित स्वेत वनि रह्यौ, सरस पत्र सम वनकजु कह्यौ।
स्यामल सेत कहत तिहि नाम, और कहा ढूढत यह ठाम ॥ २५ ॥
शुक पिछ सम छाया तोइ, यातै[1] सुवरण कातिज होइ।
पीत नील पन्नो तेहि जानि, जाति तीसरी यह ठहरानी ॥ २६ ॥
इरि वर्ण रेखा तनि नही, चिकनाई दीसति द्युत सही।
तनक तनक सेवा रस नूर, रक्त नील पन्नो गुन पूर ॥२७॥
यही भाँति पन्नो गुन भूर, नर पावत पुन्यह अंकूर।
याकौ नाम पुरातन कहै, रतन काकणी गुरु वच कहे ॥२८॥
चक्रवर्त्ति कंठन में हुतौ, कारन हीति यह जुतौ।
तउ सकल गुन रंजक सार, पै दीसति नरपति भण्डार ॥२९॥
कोटि सुवर्ण लहियइ कहाँ, विप थावर जंगम नहीं तहाँ।
पद्मराग मोल जु मुनि कह्यौ, ताहि भाँति पन्नो पुनि ग्रह्यौ ॥३०॥
च्यारि भाँति पन्ना की जाति, गरूडोद्गार प्रथम विख्यात।
इन्द्रगोप दूजो यह भेद, तीजौ वंश पत्र नहीं खेद ॥३१॥
थोथा चोथा जाति वखानि, इन च्यारन सुनीय मुनि वानि।
थावर विप जंगम मनि सुद्ध, मेटत यामे नाहि विरुद्ध ॥३२॥
जल पईइ ताकौ जु पखारि, विप टारत मुनि वय अनुहारी।
पद्मराग को च्यार प्रकार, मोल धर्‌यौ तिहि इनहि विचार ॥३३॥

---

१ यामै

अडिल्ल—काति पिंड विस्तार विचछन लछना।
शुक पंखनि सम रूप मध्यगत पछनां ॥
वातै सेतह श्याम अधिक दे वाहि कौ।
दरवन कीजै ढील जु लीजै ताहि कौ ॥३४॥
फूल सरीस 'सुरीत'[1] कहौ पन्नौ।
मोल एक शत वाधि दशौ सो लेखि लै।
पाँच यवन कौ मान ताहि सत पंच की।
कीमति कीजै तान वानि लहि साच की ॥३५॥
इहि विधि यव की वाढि बढावै द्रव्य कौ।
बुद्धवन्त कहि देइ सदा गुन दिव्य कौ ॥
आठ यवनि के मानि कबहु जो पाईयई।
साठि सहस परि च्यारि सहस ठहराइयई ॥३६॥

दोहा—गरुड़ोदगारउ ए रमनि, लेई धरै कोउ हाथि।
लछन पूरन गुन सकल, विष वल नहीं तिहि साथि ॥३७॥
पुनि लछमी लीला चढ़त, ताही ते मुनिराज।
गरुड़ोद्गार सरस कह्यौ, मरकत च्यार हौ मांझि ॥३८॥
जो सदोष मानक करहि, मोल रत्नविद ऊन।
सो मरकत हूं कहत, अधिक करन कहौ कौन ॥३९॥
जामै होइ विचार चित, पन्नो सुद्ध असुद्ध।
ताहि घसत पाथर परनि, भजत नाहि अविरूद्ध ॥४०॥

१—सरीत, सरीप

ज्यौं अनेक रंगनि बन्यौ, पन्नो होत जु हीन।
ताकौ देवत पंचशत, मन मत करहु मलीन ॥४१॥
होत आध शतपत्र छवि, मोल मुनि की वाच।
ताहि लेहु ठहराइ तुम, मुनि वच गिनइ साच ॥४२॥
गरुड़ोद्‌गार सदा सरस, इन्द्रगोप इह दोउ।
एह घटि पईयत नृप घरहि, कहौ इक होवत कोउ ॥४३॥

इति मरकत व्यवहारो पंचमो वर्ग

अथ उपरत्न व्यवहारो निरूप्यते—

परम पुरप परमातमा अनहद अगम अनन्त।
नमन ताहि करि कै कहौ, और रत्न विरतन्त ॥१॥
महारत्न पाचौ कहै, अव उपरत्न वखानि।
कहौ सवै मुनि नृपनकौ, इह अगस्ति मुनि वानि ॥२॥
हीरा मोती पदम रूचि, नीली मरकत पांच।
च्यारौ रत्न उपरि कहत, होवत साच ही सांच ॥३॥

सो०—गोमेदक पुकराग, कहत लसनीयौ तीसरौ।
अरू प्रवाल महाभाग, चारि जाति उपरत्न यह ॥४॥

दो० फुनि फाटिक पंचम रहत, कनक कांति अरू लीन।
घन रूचि सौगंधिक सुन्यौ, कहत कहा करि ढील ॥५॥
गोमेदक तासौ कहत, जो गोमूत समान।
अति निर्मल भारी वन्यौ, चिकनाई जुति दान ॥६॥

पुनि उज्जल पीरी तनक, भनक होत बहुमूल।
वरण भेद च्यारौ वरन, प्रगट करौ हौ जिनि भूल ॥७॥
चौ०—सेत कांति ब्राह्मण तनु भन्यौ, रक्त वर्ण छत्री यह बन्यौ।
पीयरी भनक कहावै वेस, शूद्र श्याम छबि कहत विसेस ॥८॥

गोमेदक अधिकार सम्पूर्ण

अथ पुक्खराग कथन—

दो० पुष्कराग उपजत तहाँ, जहाँ देस कलहत्थ।
पीत वर्ण तामै अधिक, यामै नाहि अकत्थ ॥९॥
सिंहल देश तहा वन्यो, पिंगल तनु पुखराग।
सणी पुहप तनु रंग अथ, निरमल काति पराग ॥१०॥
चिकनाई कुंअरौ तनक, दोष रहित गुन पोष।
ताहि धरत अरचा करत, ता घर लछमी घोष ॥११॥
पुत्र लहि गुरू दुष्टता, पीर न ताहि स ग्यान।
जग मैं सोई सराहीयै, होवत नृप बहुमांन ॥१२॥

इति पुखराग : अथ वैडूर्य लहसुणीयौ कहतु है :—

दो०—म्लेछ[1] खण्ड के मध्य जहा, पेन[2] नाम अग एक।
ताहि निकट खानिज वनी, ताकौ रंग विवेक ॥१३॥
सिखी कंठ सम रंग जिहि, संधि सूत्र तिहि सांच।
वन्हि दीप्ति भारी सरस, इह मुनीस मुख उवाच ॥१४॥
कर्क्कर देश आगर सुनहौ, होवत पीयरी भास।
सूत्र शुद्ध जो होइ तिहि, ले मनि धरहु उल्लास ॥१५॥

१—म्लेछ। २—स्पेन।

दीपति जो अगार द्रुति, अंधीयारी निसि माझि।
क्षेत्र सुद्ध वैडूर्य तिहि, कर्कोद गहि साझि ॥१६॥
होत विडाल नयन सम, मध्य सूत्र गत देखि।
पुनि लहसुनि रुचि देखियतु, मध्य नेत्र सु विशेप ॥१७॥
इनि दोउनि उत्तम कहत, पुनि कठिनाई अंग।
चिकनाइ मरकत तनक, निरमल तालि संग ॥१८॥
मोल करहो मतिमान पुनि, देश काल ठहराउ।
लहसुनीया विधि यह कही, मूगा कहत वनाय ॥१९॥

अथ परिवारि (प्रवाल) कहतु है—

दो०—दिशि पश्चिम लवनोद तहा, हेमकंदला सेल।
रहत वारि मध्यग सदा, ता कूलनकी एल ॥२०॥
तहा मूङ्गा की खानि है, रग दुपहरी फूल।
पुनि सिंदूर समानि छवि, दाख्यो पुहपनुकूल ॥२१॥
पुनि जावक रंग जु गहे, होवत इह छवि मान।
होत कठिन कीटन रहत, सो कहु सुन्दर जान ॥२२॥

प्रवाल समास

अथ चारों उपरत्न की महिमा कहतु हैं :—

चौ०—गोमेदक परवारी होइ, रूपा मुइरी मूल जु होइ।
लहसुनीया पुखरागन मूल, सुवरन मुद्रा करि सम तोल ॥२४॥
मन्द बुद्धि नर समुझन काजि, पंच रत्न मोल जु कहाे माझि।
हीरा मोती उज्जल कहै, मानिक छवि लाली ले गहै ॥२५॥

नील श्याम रंगनि जानीइ, पन्ना नीली छवि ठानीइ।
सेत पीयरी छवि गोमेद, पुखराज पीयरी छवि भेद ॥२६॥
लहसुनी हारित छवि लेत, लहसुन रंग कहत हित हेत।
परवारन छवि कहिं सिदूर, रंग कहत यह नाहि न कूर ॥२७॥
कही परीछा यह मुनिराय, मोल कहत यातै ठहराय।
हस्त समस्या वस्त्रनि करौ, गुपत मोल यह मुखि जिनि उच्चरौ ॥२८॥
देश काल गाहक गुन देखि, व्यापारी व्यवहार विशेषि।
करत मोल सोड जस लहै, इह विधि सीख मुनीसर कहै ॥२६॥

इतनै नव रत्न की परीछा भई। आगे नवग्रह के रत्न कहतु है।

चौ०—पद्मराग रवि मनि जानीयइ, चन्द्ररत्न मोतिन ठानीयइ।
मंगल मूगा स्वामी कहौ, बुध पन्ना सामी मनि गहौ ॥३०॥
देव गुरू पुकरागन मिती, शुक्ररत्न हीरा यह थिती।
नील मन्द की कहीयइ सही, राहु रत्न गोमेदक लही ॥३१॥
केतु कहत लहसुनीया मुनि, इह भांतिन मुनि मुखतें सुनी।
अब आकर कहत मुनि लेहु, दिसि कहीइ तिहा तिहि जरि देहु ॥३२॥
सूर्ज परि[1] वर्तुल करि लेहु, च्यार कोण चंद्रहि धरि देहि।
घर त्रिकोण मंगल ठहराय, शशि सुत नागरि पत्र ठहराय ॥३३॥
पंच कौण घर गुरु कौं करे, शुक्र आठ कोणो ले धरै।
शनि घर करि शकटनि आकार, सूप समौ घर राहु विचार ॥३४॥
केतु ठौर ध्वज के अनुमान, यह घर करि मुनि वच ठहरान।
वर्त्तुल सुन्दर करि सुन्दरी, ता नर पहुची कर पै धरी ॥३५॥

१—घरि।

उच्च राशि अंश शनि ग्रहहोइ, उदयवंत अपनी द्युति जोइ।
फल दायक लायक तिहि काल, जरीयै भरीयै घर बहुमाल ॥३६॥
मेख राशि दश अंसनि सूर, वृख के तीन अंश शशि सूर।
भौम मकर अब वीस प्रमान, कन्यागन पनरह बुध मान ॥३७॥
करक अरु पंचम गुरू उच्च, शुक्र मीन सतवीस[1] समुच्च।
तुलहि शनीसर वीस हि अंस, राहु मिथुन बोलत मुनि वंश ॥३८॥
केतु कहत मुनि राहु सरूप, इहि विधि सहि धि लेहु सुखभूप।
इन विधि नव ग्रह जरि लीजीइ, जतना आपनैं करि कीजीइ ॥३९॥
प्रथम एक वर्त्तुल आकार, घर कीजे ता मध्य विचार।
कहत अगस्ति मुनि क्रम जानि, यह[2] सरूप बनाइ सुठानि ॥४०॥
दिसि पूरवतैं अनुक्रम लीयें, सृष्टि पंथ मन अन्तर कीय।
जरि दीजैं निज सनुमुख हीर, इह पूरव जानहु तुम धीर ॥४१॥
अग्नि कूॅण मोतिन ले धरौ, यामै कछु धोपा जिनि करौ[3]।
दिशि दछन मूगा ले धरि, नैरति[4] गोमेदक तहा जरी ॥४२॥
नील रत्न पश्चिम गिनि लाग, ताहि धरत उधरत यश भाग।
वायु कोन लहसुनौं देहु, फल उत्तम ताकौ गिनी लेहु ॥४३॥
पुखराग उत्तर हि भलौ, पन्ना ईश कौन ले मिलौ।
मानिक मध्य सबहि ठहरात, यही भाति मुनि मुन्न की बात ॥४४॥

कौन समय जरीए ताको—

दो०—शुभ मुहरत शुभ लगन दिन, उदयवन्त जो होइ।
ताकौं जरीय जुगति सौं, फल उत्तम कर सोइ ॥४५॥

१—सतवीस। २—यह। ३—धरौ। ४—नैर्ऋति।

अथ फल कथन—

सुघर पुरुष याकौं जो धरै, ताहीं सुखी निहचै यह करै।
राज्यमान लछमी ह्वै घनी, निहचै रहत ताहि घरि बनी ॥४६॥
लोक सकल तिहि देवत मान, सुखी होत गुरु मुख यह ग्यान।
इह नवरत्न विचार जु भयौ, कहत अबै मुनि इनतै नयौ ॥ ४७ ॥

इति उपरत्न मोल्य वर्णन नाम षष्टो वर्गः

अथ नाना प्रकार के रत्नकौं विचार कथन :—

प्रणव नमति मनि आनि पुनि, गुरु मुख आगम पाय।
मुनि अगस्ति मग दिढ गहै, आगै कहौं बनाय ॥ १ ॥
व्यास अगस्ति वराह अरु, रिषी सबै मिली एक।
रत्न उदधि मथि यह कहै, ग्यान मथान विवेक ॥ २ ॥
साठि नाम मुनि सुघर नर, कहौ पुराण प्रमाण।
ताहि समुझि नृप मान लहि, होत अग्यान सयान ॥३॥

कवित्त छप्पय—पदमराग[१] पुखराग[२] मिन हौ पनौ[३] करकेतन[४]
वज्र[५] अरु वैडूर्य[६] कांति शशि[७] सूरज[८] मति भनि।
नवम कह्यौ जलकंत[९] नील[१०] महानील जु ठान्यौ[११] ॥
इन्द्रनील[१२] ज्वरहार[१३] रोग हार[१४] सुगुन पिछान्यौ ॥
विभवक[१५] विषहर[१६] शूलहर[१७] शत्रुहरन[१८] पुत राग कर[१९]
लोहित[२०] रुचक[२१] मसारगल[२२] हंस गर्भ[२३] विद्रुम[२४] विभर[२५]
अंजन[२६] अंक[२७] अरिष्ट[२८] शुद्ध मुगता[२९] श्रीकातह[३०]
शिवंकर[३१] शिवकात[३२] हो ही प्रिय करत तह[३३]
कही भद्रक भ्रात[३४] आन आभंकर जान हो
चंद्रप्रभमित्त[३५] आनि सुपरि सागरप्रभ[३६] ठान हो

सुंदर अशोक[37] कौस्तुभ[38] अपर प्रभानाथ[39] वीतशोक[40] यहि
सोगंध[41] रत्न गंगोद कहि[42] अपराजित[44] कोटि यहि ॥ ५ ॥

चो०—पुलक[45] प्रभंकर[46] अरु शोभाग,[47]
सुभग[48] धृतिकर[49] पुष्टिकर[50] लाग।
ज्योति सार[51] गुण माल[52] वखाणि,
सेतरुची[53] हंस माल[54] प्रमाण ॥६॥

अंशुमालि[55] पुनि देवानंद,[56] खीर तेल फाटिक द्यु ति चंद।
मणि त्रिधा अरु गरुड़ोद्गार, चिंतामणि मिलि साठि प्रकार ॥ ७ ॥

अथ इन साठि रत्नकी जातिन मांझि काहू काहू रत्न की प्रसिद्धि है ताको लछन कहतु है :—प्रथम स्फटिक की जाति के च्यार नाम को दोहरा

सूर्यकांति शशिकांति दोइ, हंसगर्भ जलकांत।
इन च्यारन के गुण कहत, मुनि वच गहि निर्भ्रांति ॥८ ॥

चंद्रकांत गुण कथन :—

ग्रीषम रति नर कोइ, होइ अटवी पर्यौ,
लग्यो ताहि तन ताप तिसार्यौ तिहा अर्यौ।
चंद्रकांति ढिग होइ धरैं मुख माझि को,
मिटे ताहि तन ताप करें यह साखि को ॥ ९ ॥

सूर्यकांति गुन कथन :—

अडिल—सूर्यकांति मनि लेइ धरौ रवि तापमौ।
ताके नीचे ठानि गहै कर आपनौ ॥
रूई अति सुचि रूप तलै धरि ऊपनी।
झरति अगनि तिहि मांझि तुरत उठत जली ॥ १० ॥

अथ जलकात परीक्षा :—

जहाँ अगाध जल होइ, तहा इक वांस लै।
ताकै मुख जलक्रांत लगायो नां चलै।
ता वंशन तुम लेइ धर हौ, जीव वीच सौ।
जाइ लगै तिहि अग्र मगन ह्वै कीच सौ॥ ११॥
फटै वारि चिहु ओर कोर न्यारौं गहै।
दीसत्त भूमि सरूप भूप क्यौ कहतु है।
होवत यह बहु मोल तोल याकौ कहा।
कहीये लहीयहि याहि होत पुण्य जु महा॥१२॥

जलकांत भयो चौथो हंसगर्भ कहतु है।

हंसगर्भ जल मध्य सोधि तिहि लीजोइ
विष धतूरक व्याल श्याल तिहि दीजीइ
थावर जंगम दोऊ कोउ लोपत नही।
यह मुनि मुख की वानि जानि हम कौ कही॥ १३॥

अथ परीछा लछन :—

चौ०—पीरोजा जौ पीयरे रंग, निर्मल दीठि करत तिहि संगि।
भाग्य जगत अरु भजत दरिद, वढत प्रताप करत रिपु रिद॥ १४॥
रक्त वर्ण पीरोजा वन्यौ, ताहि धरत फल मुनि मुख सुन्यौ।
वसीकरण या सम नही आन, याहि धरौ मनि धरि गुर ग्यान॥१५॥
स्याम रंग पीरोज प्रमान, ताहि धरत विष नाहि निदान।
सर्पादिक विष अमृत पीयइ, त्यो नर अलप आयु बहु जीयइ॥१६॥

अथ चिंतामनि लछन—

हीरा कांति समान द्रुति, दोष रहित निज अंग।
षटकौनो हरवौ तिरत, टांक सवा सुभ रंग॥ १७॥
या परि चिंतामनि रहै, तीन साखि तिहि ठौर।
अरचा करि फल लीजीयइ, औरन की कहा दौर॥ १८॥

इति सप्तमो वर्गः

अथ मणि व्यवहारो निरूप्यते :—

अनेक रूप अनंत गुन, चिदानंद चिद्रूप।
भय भंजन गंजन अरी, रंजन सकल सरूप॥ १॥
ताहि नमनि करके कहतु, मनि के भेद विचित्र।
याके रूप गुन सुनत, लहत भूप वर मित्र॥ २॥
कौनौ कही कौन्यौ सुनी, कहाँ बनी तिहि भाँति।
कहत सुनत मज्जन वरन, आनंद अति उपजात॥ ३॥
ईश कहत उमया सुनत, तिहि भाति तिन ग्रहि पंथ।
भाषा मग ढिग आनियह, ग्रंथ जानि पुनि ग्रंथ॥ ४॥
ईश कहत इक दिन गयौ, ब्रह्मा लीय जु साथि।
सुनि सुन्दर रेवा तटहि, तीर्थ शुक्र मग हाथि॥ ५॥
रतन पहार तहा रहै, कहै ता माग सु इंद्र।
इंद्रहि ठयौ नयौ जु यह, मनुज ताप हर चंद॥ ६॥
वाके दर्शन ते सकल, पाप मुक्त हैं लोगु।
रोगी रोग विमुक्त हैं, गत संशय गत छे

तहाँ तीरथ पूजा करहि, मन इ मान करि ठौर।
ते पावत शिव पद सुथिर, कहत देव सिर मौर ॥ ८ ॥
तहा भवानी कुंड महि, करहि अष्टमी जानि।
नाहन पूजन भक्ति तै, होहि पाप मल हानि ॥९॥
यही जानि सब देवगन, करि तिहि कुंड स्नान।
फिर केदार गहे कहत, यह ग्रन्थनि मग मान ॥१०॥
पिण्डी गुरु पापी तहाँ, दरसन याके पाप।
भजत भजत कहत यह, ब्राह्मण हत्या ताप ॥११॥
चतुर्दशी अरु अष्टमी, पूर्णमासी आंन।
पूजत जे पुन्यातमा, सो शिव लोक निदान ॥१२॥
इन्द्र हि तिहा वज्र जु धर्‍यौ, धनदिहि धर्‍यौ जु कोस।
हम हूँ मन्त्र तहा धरै, सुंदर सुनि गुन पोस ॥१३॥
तहाँ गरुड उदगार तै, महानदी मनि काल।
चली ज्योति परकास कर, पाप पवन भष व्याल ॥१४॥
ता महिमा तैं प्रगट हुय, मनि यह नाना रूप।
भोगद मोछद गदहरन, सकल गुनन को कूप ॥१५॥

पार्वती कहतु है—

चौ० मणि लछन मो सो कहौ स्वामी, पूछत तुमसों हुँ सिर नामी।
जाहि भाँति जो मनि प्रभु होई, लेछन पूजन विधि कहो सोइ ॥१६

ईश्वर कहै :—

जहिं केदार तहिं जू जाय, प्रणमहौ पूजहुँ ताके पाय।
यथा शक्ति खेतल कौ पूजि, पूजा वल दीजै मन बूझि ॥१७॥

केइ हरै केते ह्वै लाल, के दामिनि सुम रुचि सुविसाल।
के पिकलोचन छाया बने, ए सबहिन के गुन यौ सुनै ॥२६॥
करि बांधत कोउ नर राज, भूत प्रेत व्यंतर सब भाजि।
जात और पीरा हि टरैं, पृथिवीपति प्रीति जु बहु करै ॥३०॥
नाना रंग धरत तन मांझि, नाना रेखन की तहा झाँकि।
विंदु अनेक परे तनु कहो, नाग दर्प हर ताहिज लह्यौ ॥३१॥
लाभकरन दुषहरन जु सुन्यौ, हम अपनी रुचि ताकौ वन्यौ।
कहत ईश जग सुख के काजि, सबै उपद्रव टरत अकाज ॥३२॥
नील वर्ण सुन्दर तन भयो, विंदु पाँच गुन ताकौ ठयौ।
निरमल अंग छाय तिहि लाल, वृत गरुड़ सुन कहों अनआल ॥३३
जो सिंदूर छाय तन गहै, रेखा सुन्दर ता महि रहै।
कृश्न वर्ण कछु लीये सरूप, टारत विप अमृत गुन रूप ॥३४॥
कारी रंग धरत मनि कोई, नाना विधि रेखा बहु होई।
विंदु भाँति भाँतिन के बने, ज्वर नाशन गुन ताकौ गिनै ॥३५॥
पीयरी छाया लेत अनूप, रेखा द्वै ता मध्य सरूप।
सेत विंदु तिहि मध्यहिं परे, विछु विष उत्तर कहा डरै ॥३६॥
इन्द्रनील सम याकी सोभ, सेत पीत गुन रेखा थोभ।
नेत्र रोग टारत यह शूल, जल पीवत ताकौ जिनि भूलि ॥३७॥

सेत पीत रेखा बनी, हरित वर्न तम छाय।
ताकौ जलपान जु कीजीइ, विप सब देत बहाय ॥३८॥
गिही वर्न पीयरी तन, गज नयन सम तात।
सेत विंदु ता मध्य गत, मिटत अजीरन पात ॥३६॥

लाली आधे तनि लीइ, अर्द्ध रहत पुनि स्याम।
रक्त शूल चख हर, कह्यो ईस गुन धाम ॥४०॥
निरमल स्फाटिक सो वर्न्यौ, तनक श्याम कछु लाल।
विष वीछू काटत पुरत, मेटत तनु दुख लाल ॥४१॥
अर्द्ध कृश्न पुनि अर्द्धमहि, लाली उजरी छाय।
तनक परत सब विप हरत, कहत ईश ठहराय ॥४२॥
रक्त देह पुनि रेख तहाँ, रक्त वनी शुभ छाय।
भमर परत ता मध्य यह, गरुड नाम ठहराय ॥४३॥
यातें सर्प रहै सदा, और विषनि कहा वात।
सूर उदय तम ना रहत, गुन यह कहीयत भ्रात ॥४४॥
पीत अंग पीयरी परी, रेख रक्त पुनि ताहि।
सकल रोगहर जानीयै, मृगनयनी मन माहि ॥४५॥
पीयरे तन कारी परत, रेखा विंदुअन लेख।
मेटन विप अहिराज को, औरन कोन विशेप ॥४६॥
कूष्माडी फूलन भनक, तामे विंदु अनेक।
रोग सकल नयनां हरत, यह गुन याकी टेक ॥४७॥
रक्तवर्ण वहु विंदु युत, तेज पुञ्ज तिहि देह।
ए सब विपनासन कह्यो, यामें कहा संदेह ॥४८॥
विंदुनाभ यह नाम भनि, महा तेज तिहि मांझि।
कृश्न विंदु भूपित सकल, रोग हरन गुन मांझि ॥४९॥
फल आमरन समान रुचि, ता महि कारे विंदु।
सोई पुत्र सुख देन तुम. गुन कुमुदन कौ इन्दु ॥५०॥

दारुयोपुहप समान द्युति, कृश्न बिंदु कन आन।
सो सोभाग्य करै प्रिया, यह हर वच परमान ॥५१॥
कुंद फूल सम मनि वन्यौ, वन्यौ वृत आकार।
सो विष मर्दन जानीयई, हर वचननि अनुहार ॥५२॥
छागज नेत्राकार मनि, मंजारी भय नाभ।
गरूड तेज सम तेज ह्वै, पूजत पईयत लाभ ॥५३॥
मनि मयूर चित्र जु वन्यौ, कछु यक स्पाटिक ज्योति।
सो सब राजा तसहि कै, मन वंछित फल होत ॥५४॥
मनि शुक पिछ समान ह्वै, सेत विंदु तिहि मांझि।
विघन कोरि मेटत मनि, अरि करि सकय न गांजि ॥५५॥
पारद वर्ण समान रूचि, ता महि उजरी रेख।
आयु बढ़त पामिय चढ़त, वा महि मीन न मेख ॥५६॥
सकल वर्ण या रत्न महि, नाना रेख सरूप।
अर्थ विविध पर देत सो, मान देत वर भूप ॥५७॥
विविध रूप धर विविध मनि, दीसत है जग मांहि।
ते सब गरुड़ समान तू, विपमर्दक गिनी ताहि ॥५८॥
उदर मध्य उजरी भनक, कृश्न वर्ण तिहि पीठ।
सर्प सरूप वन्यौं सरस, विष नाशत दृग दीठि ॥५९॥
सुनि उमया ईस जु कहत, यहै रत्न कीषा वात।
हम हौ कहीं तुम हौ सुनी, यही भाँति ठहरात ॥६०॥

यही मणि विचार—

दो०—मैडक मनि अरु मनुज मनि, सर्पन की मन जानि
ए तीनौं की जाति गुन, कहतु हमै जु वखानि ॥६१॥

माटक मनि लछन—

चौ० हरित वर्ण अरु होत त्रिकोण, सिंघारन आकारन और।
जेत वहुत गुंजा त्रिहि मान, सोई मेडक मनि परिमान ॥६२॥

ताको फल कहतु है—

या घरि मेडक मस्तक वनी, मनि होवत सो नर है धनी।
धन विलसत नरपति दै मान, वर अधिकार न खण्डत आन॥६३॥

अथ सर्प्पमनि लछन कहतु है—

कजल सामल तनु जिहि रूप, अरु वर्त्तुल आकार अनूप।
तेजवन्त दर्प्पन अनुहार, तामै प्रतिविंवत आकार ॥६४॥
तोल पाँच गुंजा तीहि होत, कठिनाई गुन अधिक उद्योत।
वासिग कुलछैत्री द्वै नाग, ताके सिर उपजत यह त्याग ॥६५॥

ताको गुन कहतु हैं—

इन है सर्पन को विप नसे, जल पखारि पीवत सुख लसै।
कवहूँ कंठ वन्ध, तिहि भयौ, जल नहि उगरत तिहि यह कयौ ॥६६॥
सर्प डंक ऊपरि मनि धरो, लगि ताहि तूँवी परि खरो।
उतरि विप पीवत नर सोई, विष टारन यह और न होई ॥६७॥
पाछै धरीय भाजन भरी, उतरि परत पय माँझि जु हरी।
होत नील छवि पय जानीयइ, जल पखारि निज घरि आनिये॥

नरमनि विचार—

कोउ उत्तम नर जो होइ, ताके मस्तक उतपति होउ।
पोफोनो है पांडुर रंग, पीत छाय ताके तनि संग ॥६८॥

च्यार गुंज सम ताकौ तोल, वस्तु अनोपम होत अमोल।
याकै ढिग यह रहत सग्यान, सो नर पूजा लहत सयान ॥७०॥
सोऊ भाग्य अधिक नर कह्यो सो प्रधान नर शास्त्र लह्यौ।
तिहि रण मांहि न जीतिहि कोई, जहाँ विवाद तहा विजयी होई ॥७१॥
अग्नि जात रहै न लगै घाउ, यह नरमनि फल कौ कहि दाऊ।
पढ़ै गुनै सो होई सग्यान, सुनत नराधिप देत मान ॥७२॥
रत्न जाति पाछै युँ कही, ताकौ राखन की विधि यही।
सहज बन्यौ त्यौ ही राखिवौ, घाट करन घसिवौ घासिवौ ॥७३॥
कब हौ लोह न घसीयई सोई, स्याम रदन छेदन फल खोई।
घरन मठारत गुनकी हानि, ग्यान विशारद मुनिकी वानी॥७४॥
पुनः अगस्ति मुनि कहतु है—
हम ही तुम सौ यह सुनो, रत्नपरीछा जिहि विधि बनी।
भाग्यवन्त नरके इह हेत, करत परीछा गहि संकेत ॥७५॥
पठत सुनत याकौ धरि ग्यान, ताको देवत नरपति मान।
करत निरन्तर यो अभ्यास, लछमी ता घर पूरन आस ॥७६॥
जस जग में ताकौ विस्तरै, रत्न विविध ताके घरि भरै।
यामै कछुअन जानहो कूर, रहत रिद्ध घरि होत सनूर ॥७७॥
अथ ग्रंथालकार कथन—
अडिल्ल—मुनि अगस्ति वच मांनि कहो यह रत्न की।
बात सवै गुन जांनि आनि मनि यत्न की॥
भाषा को सुख पाठ ठाठ सज्जन गहै।
यह मो मति अनुहार सार यामै कहै ॥७८॥

अति सरूप गुण धाम काम आकृति वन्यौ।
याकौ यश कैलास कास विकसित सुन्यौ[1] ॥
चन्द्र किरण मुगतानि वानि तिहि जग फिरै।
आन नहि कोऊ जोरि होरि कहौ क्यों करै ॥७९॥

छप्पइ—विद्या विनय विवेक विभो वानी विधि ग्याता।
जानत सकल विचार सार शास्त्रन रस श्रोता ॥
भीमसाहि कुलभान साहि संकर शुभ लछन।
पढन गुणत दिनरयन विविध गुन जानि विचछन ॥
कुल दीपक जीपक अरीय भरीय लछि भण्डार जिहि।
होहि रत्न व्यवहार रस इह प्रारथना कीन तिहि ॥८०॥

दो०—ता कारन कीनौ अलप, ग्रन्थजु मो मति मानि।
सज्जन सुनि सुध कीजीयउ, जहाँ घट मात्र जानि ॥८१॥
अंचल गछपति श्रीअमर, - सागरसूरि सुजान।
ताके पछि वाचक रतन, - शेखर इतिऽनिधान ॥८२॥
तिनि कीनी भापा सरस, पढ़त होत बहुमान।
प्रथम लेख सुन्दर लिख्यौ, विबुध कपूर सग्यांन ॥८३॥
रवि रशि मंडल मेरु महि, जौ लौ हूअ आकाश।
पढै सो तौ लुं थिर लहै, लीला लछि विलास ॥८४॥

इति श्री वाचक रत्नशेखर विरचिते रत्न व्यवहारो सारे
श्री नच्छी शंकरदास मिदेण मणि व्यवहारो नामाष्टमो वर्ग
इति रत्न परीक्षा ग्रन्थ सम्पूर्ण

१—[illegible]

पन्ना परम निधान, पास जब लगै हीरा
मुक्ताहल प्रवाल, गुणहि गोमेदक हीरा
लाला लाले लख्य फेर बहु मोल लसणीया
पुखराज कौ शोभ, ताहि कूँमूल नहसणीया।
....मत नायक माणक मुदै
कूंदन वारह वान युत ए नव धरहि प्रति उदै ॥१॥

अलमांस हीरा[1], आकूत मांणक[2] जमरौत पन्ना[3] स्याह आकून लीला[4] मलवारी मूंगा[5] इंनरहुल लसणीया[6] जरदे आकून पुखराज[7]

हीरे की जाति—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र

रङ्ग पांच हीरा[1] पुखराज[2] दतला[3] तुलमरी

पुखराज की जात—जरद[1] सोनेला[2] ओनेला[3] कर्केतन[4]

लसणीये की जात – लसणीया पुराणा[1] लसणीया नया[2] गांदना

लसणीया क्षेत्र—कनक क्षेत्र[4] धुक्षेत्र[2] पुखराज क्षेत्र[3]

माणक जात—माणक[1] केडा[2] नरम[3] तनजावरी[4]

पन्ना की जात—पन्ना[1] पुराना पन्ना[2] पनगम[3]

पीरोजा जात—नेसावरी[1] भसमी[2] मोहगीया[3]

अमनी जात—हम्मानी[1] आकूदी[2] सरबती[3] खभाइती[4]

हीरा[1] माणक[2] मोती[3] पन्ना[4] लीला[5] मूंगा[6] गोमेदक[7] लसणीया[8] पुखराज[9] लाल[10] पीरोजा[11] एमनी[12] कर्केतन[13] वैडूर्य[14] चंद्रकंति[15] सूर्यकंति[16] जलकंत[47] नील[18] महानील[19] इन्द्रनील[20] लोहितह[21] रूचक[22] मसारगल[23] हंसगर्भ[24] विद्रुम[25] विपर[26]

हिरण्यगर्भ[२७] अंजन[२८] अंक[२९] अरिष्ट[३०] श्रीकात[३१] शिवकर[३२] शिवकंत[३६] कौस्तभ[३४] प्रभानाथ[३५] वीतशोक[३६] सौगंधकरत्न[३७] गंगोद[३८] पुलकित[३९] प्रभंकर[४०] ज्योतिसार[४१] गुणमाल[४२] सेतरूची[४३] हंसमाल[४४] अंशुमालि[४५] हकाक[४६] दाहिण फिरङ्ग[४७] पारस[४८] मरकत[४९] सलेमानी[५०] संगइशोम[५१] संगकपूरी[५२] कपूरजटी[५३] कपूर[५४] पचगम[५५] वाफेल[५६] फिटक[५७] फिटक बुलोचा[५८] दंतला[५९] तुलमरी[६०] सोनेला[६१] धोनेला[६२] नावग[६३] चिलोर[६४] लालडा[६५] पटोलीया[६६] मुसका[६७] लाजवरङ्ग[६८] हसानी[६९] जवनीया[७०] गोदंता[७१] तनजावरी[७२] नेसावरी[७३] भसमा[७४] चूना[७५] वावागोरी[७६] गोमरली[७७] जवरजद[७८] संगमरगज[७९]

परिशिष्ट (१)

॥ अथ नवरत्न की परीक्षा लिख्यते ॥

१—माणक रंग लाल श्री सूर्जजी को रतन ॥ असल पुराणी खाण घाट कुतबी तलफसार बीस विश्वा रङ्ग रत्ती एकरो होवे तो मोल रुपीया पाचसै पावै आगे सवाई तोल अर दूणो मोल पावइ ॥ १ ॥

२—मोती श्री चन्द्रमाजी रो रतन रंग सुफेत। असल पूतली पडतौ दाणो रती सवा रो होय तो रुपीया सौ १०० रो होय आगे सवायो तोल दूणो मोल जाणवो ।.२॥

३—मूँगो रग लाल वीडबन्ध मंगलजी को रतन दक्षण देश मे उत्पन्न मासं १ रो असल रंग होय बेऐब होय ॥३॥

४—पन्नो रंग हस्यो वीड़दार असल पुराणी खाण रत्ती १ रो घाट कुतबी तलफसार वीस विश्वा रंग होवै तो रुपीया २००) रो जाणवौ। आगे सवायो तोल दूणो मोल। श्री बुध देवता को रतनः ॥४॥

५—पुखराज रंग जरद तथा सुपेत श्री बृहस्पत देवता को रतन असल पुराणी खाण रती बीस रो होय तो रुपीया पांच सौ री कीमत पावं पछै सवायो तोल दूणो मोल जाणवौ ॥ ५ ॥

६—हीरो रंग सुपेत असल गंगाजली घाट कुतबी शुक्र देवता को रतन। रत्तो होय होवे तो रुपीया हजार एक मोल पावै ॥ ६ ॥

७—नीलम रंग नीलो अलसी रा फूल के रंग श्री शनीसर जी को रतन। असल पुराणी खाण घाट कुतबी रती पांच रो होवै तो बेजरम बेऐव तो दाम रुपीया पांचसै मोल पावै॥ पछै सवाइ तोल दूणो मोल जाणवो॥

८—गुमदक रंग गुडीया श्री राहु देवता को रतन बीड़दार

६—लसनीयो रंग जरद अथा सीहीमायल केत देवता को रतन जात तीन कनखेत १ धुमकेत २ कृष्णकेत ३ कनककेत रंग जरद १ धूमकेत धूम्रवर्ण २ कृष्णकेत काले वर्ण ३

॥ इति नवरतन नाम सम्पूर्णम्॥

परिशिष्ट (२)

अथ मोहरां री परीक्षा लिख्यते

कैलासगिर पर्वत ऊपरि लीला विलासी महादेवजी बैठा थकां सिखर पाषांण लेई ने हाथ सुं घसी ने मोहरा कीधा। तिवारे पारवती हठ निम्र करी सकोमल वचने करी महादेवजी ने आप वस करी ने मयणमय कीधो। वलद सारिखो करी किंकर थको करी ने पूछिवा लागी—ए वटां रो कारण किसुं? तिवारे महादेवजी पारवती आगे बीहतें थकें मोहरां री परीक्षा कही। श्री गुरुप्रसाद थकी भेद कहीजै छै। मोहरां सघला री आ परीक्षा छै। "ॐ ह्रीँ श्रीँ सर्व काम फल प्रदायकं कुरु स्वाहाः॥"

वार २१ दूध मन्त्री मोहरो दूध माहे मूंकीजे प्रभाते जोईजै दूध जमै तो लक्षण जोईजै। जिको मोहरो सघलोई सोना रै वर्ण होय, नीली पीली धवली काली राती माहे रेखा होय, तीको नीलकंठ मोहरो कहीजै तीको तीरे राखीजै तो समस्त सम्पदा लक्ष्मी भोगवै। घोड़ा चौपद पामीजै ज्ञान विद्या पामीजै कवीश्वर होय घणी आयु होय १।

जिको मोहरो रूपा सोना रै वरन होय धवली रेखा होय धवला विंदु होय काला विंदु होय मिनकी सारिखो होय तिको मोहरो धन धन लाभ दीये, तिण मे संदेह नहीं २।

जिको मोहरो पचाया पारा रे वरण होय राता पारा सारिखो होय वरसालेरा इन्द्रधनुप सारिखो होय दोय तथा तीन धवली रेखा होय तिको मोहरो नारायणजी सारिखो कहीजे, तिणा थी सर्व अर्थ सिद्ध होय भलो प्रताप करइ अस्त्री ने वलभ होय सुख दाता होय ३।

जिको मोहरो पाडुर वर्ण होय माहि धवली रेखा होय मोर पीछ सारिखी माहें मोज होय तिण थी द्रव्य लाभ होय, ठकुराई घणी होए महाईश्वर धनवंत होय ४।

जिको मोहरो कास्मीर रा फूल सरीखो होय ऊजलो होय माहे नीली रेखा होय काला बिंदु माहे होय महातेजवंत होय, तिको मणि परीजे सघलाई काम अर्थ सिद्ध होय मन वंछित फल पूरे ५।

जिको मोहरो पील वर्ण होय धवली मांहे रेखा होवे, मणि रे वर्ण सरीखी दस अथवा थोड़ेरा विंदा होय तिको मोहरो सगला गुणा करि संजुक्त कहीजे। तिण थी वेरी रो नाश होवे, सघला ई रोग नासै ६।

जिको मोहरो पारेवा रा गला सरीखो वर्ण होए, धवला बिंदु माहे होवै साप रा गला सरीखी मांहे मोज होवै अथवा नोलिया वर्ण सरीखो माहे मोज होवै, तिको मोहरो सुंध मणि सारिखो कहीजे तिण थी सवे विष नासै। अफीम वचनाग, सोमलखार, साबू, सिंदूर, प्रमुख विष नासै तिको मोहरो अमोलक कहीजै ७।

जिको मोहरो हिरण रा वर्ण सरीखो महा तेजवंत होवै, हाथी री आंख सरीखी माहे बिन्दी होवै अथवा धवली बिन्दी होए हाथी री आंख रे आकारे होये धवली रेखा विंदी उजली होए तेज करती होए मणि सारिखी बिन्दी होवैं तिण थी भली अस्त्री पामीजै घणा दीकरा होवै, अनेक प्रकार रा विष नासै, संग्राम मांहे जय होये, शत्रु रो नास होवै, वैरी नै जीपै, घणा प्रकार रा भोग पामीजै चतुरंग लक्ष्मी पामीजै, मनवंछित दीए ८।

जिको मोहरो नीली छवि होए अथवा नीला टवका होए, सूर्य ऊगता सारिखो वर्ण छवि होए, अथवा काईक वीजली सारिखो होए विच-विच रूपा सारिखो होए, धवली रेखा होए, मोहरो वाटुलो होय, वाटुला टवका होए तिको मोहरो हाथ

जिको मोहरो धवले पीले ही वर्ण होए, इन्द्रधनुष सारिखा नीली एवेही रेखा होए तिणथी आंख्यां रा रोग वेग पाणी विकार पाण छाह मुरछा आंख सूल ए रोग जाय ॥१५॥

जिको मोहरो कालो अथवा हस्यौ वर्ण होए माहे धवली रेखा होए पीली रेखा होए तिको निकेवल विष रे काम आवै ॥१६॥

जिको मोहरो पीली छाया होए गिहुं रे वरणे होए हाथी रीं आंखे सारिखा धवला बिन्दु होए, तिको मोहरो लुति रे काम आवै कुलाइन डारो विष नासै अरुचि अजीर्ण आफरो समाधि होए ॥१७॥

जिको मोहरो पंच वर्ण होय अने करमाहे भांत होय महा तेजवंत होय तिण थी निकेवल विष जाय समाधि होय ॥१८॥

जिको मोहरो सूर्य सारिखो ऊजलो होय विच काइ एक राती पीली छाय होय, तिण थी विछु रो विष नासै अने वले घरे सर्व सिद्धि होय ॥१६॥

जिको मोहरो राते वर्ण होय, काइक पीली छाया होय, माहे धवला बिन्दु होय अथवा जिको मोहरो चिरमी सारिखो रातो होय मांहे बिच-विच धवली रेखा होया ३ बिन्दु वले माहे होय अणविधी होय तिको मोहरो जीमणे हाथ बाध्यो होय तो जगत्र पृथ्वी तिण रै वसि होए ॥२०॥

जिको मोहरो हींगलु अथवा चिरमी सरिखो रातो होय विचै पीले वर्णो होय, ऊपर वले रातो होए जिको मोहरो मणि

कहीजें लोहीठाण सूल आंख री सूल आखै रोग एता रोग जाय ॥२१॥

जिको मोहरो मजोठ सारिखो रातो होए अथवा मजीठ रा रंग सारिखो होए विच विच नीले वण होवै पंच वर्णा विन्दु होए तिको मोहरो सर्व रोग हरे सर्व काम ऊपर चालै ॥२२॥

जिको मोहरो आधो रातो होए आधो कालो होए माहे धवली रेखा होए धवलाविन्दु होए एहवा मोहरा थकी साप रो विस नासे ॥२३॥

जिको मोहरो धूंवा रै वर्ण होए अथवा आभं रे वर्ण होए, तेजवंत होए, पंचवर्णा अथवा बीजाइ प्रकार रा विन्दु होए, तिण थी सगलाई प्रकार रा दोप जाय भूत प्रेत व्यतर मोगो सीकोतरी शाकनी डाकिनी झोटिंग ए सर्व दोप जाए वले सिद्ध दाता होए ॥२४॥

जिको मोहरो पीले वर्ण होए, माहि पीली रेखा होए मांहे भल-भल सोभाग मा तेजवंत विन्दु होए तिण थी साप रो विप जाय ॥२५॥

जिको मोहरो पीलो छवि होए, विच-विच काले वर्ण होए अथवा पीली रेखा होवै अथवा चिरमी सारिखी घणी राती रेखा होवे तिको मोहरो जिण रे घरे होए दूध गाय रा नुं [illegible] ने घरे राखीजे सुपन ऊपर छांटा नाखीजे सर्व रोग जाए शुभसाती होए रोग घरे नाव ॥२६॥

जिको मोहरो रूपा वर्ण होए धवली रेखा होवै तेजवंत मनोहर होए निर्मलो पाणी होए तिको मोहरो ६ गुण करै अमोलक कहीजै मोती समान गुण मोल लहै ॥२७॥

जिको महरो कोइला रा फूल सारिखो वर्ण होए नीली मोज होए भला भला बिन्दु होए तेजवंत बिंदु होए तिको मोहरो सर्व व्याधि हरे समस्त विष हरे ॥२८॥

जिको मोहरो ममोलिया सारिखो रातो होए भला प्रकार रा मांहे बिंदु होवइ तेजवंत रूपवंत होए तिको मोहरो सघलाइ प्रकार रा विप नासै ॥२९॥

जिको मोहरो दही सारिखो ऊजलो होए तेजवंत होवै कुंकम सारिखी मांहे रेखा होए, तिण मध्ये आंखे होवै मांहे त्रिशूल होए तिको मोहरो शूल रोग हरै पेट दुखतो रहै ॥३०॥

जिको मोहरो तावा रै वर्ण होए, माहे बिन्दु होए ३।४ आंखै होवै तेजवंत होए, मांहे त्रिकोणा होए तिको मोहरो राजमान करै राजावसि सदा सर्वदा सुखी होए ॥३१॥

॥ इतिश्री ३१ मोहरां री पारिख्या समाप्त ॥

अथ २८ जात रा मोहरां रा नाम लिख्यते :—

१ पद्मराग २ पुष्पराग ३ मरकत ४ कर्केतन ५ वज्र ६ वंडूर्ज ७ सूर्यक्रान्त ८ चन्द्रक्रान्त ९ जलक्रान्त १० नील ११ महानील १२ इन्द्रनील १३ शूलहर १४ विभवकर १५ रूपमणि १६ गरूड़मणि १७ चूनी १८ लोहिताख्य १९ मसारगलल २० हंसगर्भ २१ पुलक २२ चिंतामणि २३ खोर २४ गंगोदक २५ मुक्ताफल

२६ रगेगहर २७ विद्रम (परवालो) २८ विपहर २६ प्राबुहर ३० मल्लरत्न ३१ सोगंधिक रत्न ३२ ज्योतिरस रत्न ३३ अंजन रत्न ३४ सुभग रूप ३५ वैरोचन ३६ आजन पुलकरत्न ३७ जाति-रूप रत्न ३८ अंक रतन ३६ फटिक रतन ४० अरिष्ट रतन ४१ होरो। इति श्री ४१ मोहरा रत्ना रा नाम सम्पूर्णम्

१—तथा दूध नें सन्ध्या रे वखत कोरी तावणी में मोहरो घात जमावै प्रभाते दिन पोहर १ चढ्या दूधरो रंग जोईजे जो राते वर्ण दूध होव तो रण संग्राम कटक मे जीत होए आप रै पास राखीजै १

२—जो दूध काले वर्ण होय तो सरप रो जहर जावै तथा वीजाइ जहर जावं खोल पाइजै २

३—जो दूध पीले वर्ण होय, पीलीयो वाव कमलीवा वाव जाय ३

४—जो दूध वीतरै तो पेट पीड़ा सूल निजर चाख जाय ४

५—जो दूध काच सारिखो होय थण वले तो लाग वाव गोलो छणि जाय ५

६—जो दूध स्त्री रे थण सरीखो होय ओ मोहरो पास राखीजै, राज दरबार में महात्मपणो पामइ ६

७—जो दूध हर्या रंग होवै तो ताप सप गमावै ७

इति परीक्षा संपूर्णम्

संवत् १६०३ मिती आषाढ शुक्ल पक्षे पंचम्यां तिथौ गुरु-वासरे लिखितं बिक्रमपुरे मगनीरामेन ॥ शुभं भवतु ॥ श्रीरस्तु:॥

मोहरा परीक्षा

श्वेत पीत समायुक्ता इन्द्रनील सम द्यु तिः।
अक्षि रोगं च शूलं च जल पानात् व्यतोहते १
हरिद्र वर्णो भवेद्यस्तु श्वेत रेखा समन्वितः।
पीत रेखा ममायुक्तो निर्विष शेष विषापहः २
यस्तु गोधूम वर्ण स्यात् गज नेत्राकृतिः शुभः।
श्वेत बिन्दु धरो नित्यं भूताजीर्ण विनाशकः ३
रक्तांग श्वेत रेखं च बिन्दुत्रय समन्वितं।
अविद्धं बंधयेद्धस्ते गजवश्य विधायकः ४
गज नेत्रा कृतिर्यस्य बिडालाक्षि सम प्रभ।
तार्क्ष्य तेजो महातेजं तेजश्वी जन वल्लभः ५

॥ इति मोहरा परीक्षा ॥

परिशिष्ट ३

कृत्रिम रत्न

अमेरिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट 'इण्डस्ट्रियल एण्ड इंजिनियरिंग कैमिस्ट्री', में बताया गया है कि कृत्रिम ढंग पर तैयार किये गये नीलम और माणिक के पत्थर प्राकृतिक निलम और माणिक के पत्थरों से अधिक शुद्ध, स्वच्छ, बड़े तथा अपनी भौतिक एवं विद्युदाणविक विशेपताओं की दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं।

साथ ही, कृत्रिम नीलम और माणिक मणियाँ आभूषण के रूप मे अधिक मूल्यवान मानी जाती हैं, क्योंकि उनकी चमक प्राकृतिक रत्नों और मणियों से अधिक स्पष्ट होती है।

इस समय कृत्रिम नीलम का सबसे अधिक प्रयोग चश्मों के उद्योग में होता है। कृत्रिम माणिक की सहायता से वैज्ञानिक 'मेसर' के नवीन संसार मे पहुँचने में सफल हुए है। मूलतः 'मेसर' ऊर्जा-लहरियों को विस्तारित करने मे बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। ये लहरियाँ रेडियो या प्रकाश लहरियाँ हो सकती हैं। मेसर का उपयोग रेडियो-विज्ञान के अन्तर्गत दूरवर्ती नक्षत्रावलियों से सम्पर्क स्थापित करने में किया जाता है।

कृत्रिम रत्न बनाने की विधि का प्रारम्भ १९०४ से हुआ, जब आगस्ट विक्टर लुई नामक एक फ्रांसीसी रसायनशास्त्री ने एल्यूमिनियम आक्साइड और क्रोमियम आक्साइड के प्रकाश पुंजों को सम्मिलित करके कृत्रिम माणिक का निर्माण किया। आजकल यूनियन कारबाइड की लिण्डे कम्पनी एक जटिलतर विधि का प्रयोग करके विद्युदाणविक उपकरणों, चश्मों और आभूषणों के लिये नीलम के बड़े-बड़े मनके तैयार करती है।

(विज्ञान मार्च, १९६२)

नवरत्न रस

यह नवरत्न रस हीरा, पन्ना, मोती, माणिक, आदि नव-रत्नों की भस्म और सुवर्ण आदि के संयोग से तैयार किया

जाता है। यह अनेक कष्टसाध्य व्याधियों में अत्युत्तम सिद्ध हुआ है। शरीर में स्थित रस, रक्त आदि धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि, शुद्धि ओर पुष्टि करता है। पुष्टि मिलने से निर्बलता दूर होकर शरीर नवयौवन प्राप्त करता है।

स्त्रियों के गर्भावस्था होनेवाले पांडु, रक्त की कमी, हाथ और पैरों में शोथ तथा श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है। अल्प-सत्वयुक्त प्रजा होती हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो तो नवरत्न रस प्रथम मास से प्रसवकाल तक सेवन करने से प्रसव सुखपूर्वक होता है। बालक भी तन्दुरुस्त जनमता है। अकालप्रसूति और रक्त-स्राव नहीं होता। बालकों के लिये भी महौषध है। इससे बालक हृष्ट-पुष्ट बनता है।

—आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(मई १९६२)